...1008 महावीर स्वामी जी की 2600 वीं जन्म जयन्ती
...ीत अवसर पर निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला की नवीन प्रस्तुति

श्री रामचन्द्र 'मुमुक्षु, विरचित-

# पुण्यास्रव कथाकोश

भाग-2

निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

उपाध्याय मुनि निर्णय सागर

संस्करण : प्रथम - सन् 2002
I.S.B.N. No. : 81-878280-65

पुण्यास्रव कथाकोश-2
श्री रामचन्द्र 'मुमुक्षु' विरचित

*पावन आशीष :* राष्ट्रसंत आचार्य श्री 108 विद्यानन्द जी महाराज

*सम्पादक :* उपाध्याय मुनि निर्णय सागर

*सहयोगी :*
ऐलक श्री 105 विमुक्त सागर जी
क्षुल्लक श्री 105 विशंक सागर जी

*प्रकाशक :*
निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

*मुद्रक :*
अनिल कुमार जैन
चन्द्रा कॉपी हाउस,
होस्पीटल रोड, आगरा (उ.प्र.)
✆ 360195, 260938

*@ सर्वाधिकार सुरक्षित :* प्रकाशकाधीन

*मूल्य :* स्वाध्याय

*शास्त्र प्राप्ति स्थान :*

- 1. चन्द्रा कॉपी हाउस, हॉस्पीटल रोड, आगरा (उ0प्र0)
- 2. श्री दि0 जैन लाल मंदिर, चाँदनी चौक, नई दिल्ली
- 3. अ0 भा0 सम्यग्ज्ञान शिक्षण समिति शाखा हटा, दमोह (म0प्र0)
- 4. धर्म जाग्रति संगठन व महावीर संगठन, फिरोजाबाद (उ0प्र0)
- 5. वास्ट जैन फाउन्डेशन, 59/2 बिरहाना रोड, कानपुर (उ0प्र0)

सत्यमेव जयते

राष्ट्रपति सचिवालय,
राष्ट्रपति भवन,
नई दिल्ली–110004,

President's Secretariat,
Rashtrapati Bhavan,
New Delhi-110004.

विशेष कार्य अधिकारी
OFFICER ON SPECIAL DUTY

सं : 8 एम.एच/2001

दिनांक : 08 जनवरी, 2002

प्रिय श्री जैन जी,

भारत के राष्ट्रपति श्री के.आर. नारायणन् जी को यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि भगवान महावीर स्वामी की 2600वीं जयंती के अवसर पर पूर्व दिगम्बर जैनाचार्यों द्वारा प्रणीत व उपाध्याय श्री निर्णय सागर जी महाराज द्वारा सम्पादित एवं रचित 26 धार्मिक ग्रंथों का प्रकाशन आरम्भ किया जा रहा है।

राष्ट्रपति जी इन प्रकाशनों की सफलता के लिए अपनी शुभकामनाएं प्रेषित करते हैं।

सादर,

आपका,

(प्रेम प्रकाश कौशिक)

श्री राजेन्द्र प्रसाद जैन,
मंत्री,
श्री पार्श्वनाथ दि. जैन मंदिर,
एन-10, ग्रीन पार्क एक्स.,
नई दिल्ली-110016

# पुण्यार्जक श्रावक


श्रीपाल जैन

144-S, पीला मन्दिर शालीमार पार्क

शाहदरा, दिल्ली-110032

✆-211407, 2434807

(1000 प्रति)

चन्द्रा कॉपी हाउस, आगरा

(200 प्रति)

卐 卐 卐

# सम्पादकीय

श्री जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रणीत जिनागम चार अनुयोगों में विभक्त है, जिस प्रकार गाय के चारों स्तनों में दूध समान वर्ण, शक्ति, स्वाद, स्पर्श व उपयोगिता से युक्त होता है उसी प्रकार पुष्प की चार पंखुड़ी की तरह ही प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग ये जिनवाणी के चार अनुयोग हैं। जिनवाणी का प्रत्येक शब्द प्राणी मात्र का कल्याण करने में समर्थ है, यदि हम उस शब्द का सही अर्थ समझने का प्रयास करें तो। जैन दर्शन में सभी कथन सापेक्ष हैं निरपेक्ष कथन तो अकल्याणकारी ही होता है। जिन वचन ही समस्त भव रोगों के लिए परमौषधि के समान है। इन्हीं का (जिन वचनों का) समीचीन आश्रय/अवलम्बन भव्य जीवों को भव वारिधि से तारने के लिए समुचित व समर्थ नौका के समान है। जिन वचनों की महिमा के बारे में आचार्य भगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी जी कहते हैं-

*जिण वयण मोसह मिणं, विसय सुह विरेयणं अमिद भूयं।*
*जर मरण वाहि हरणं, खय करणं सव्व दुक्खाणं॥17॥द. पा.*

जिनेन्द्र भगवान के वचन रूपी यह औषधि विषय सुखों का विरेचन करने वाली तथा अमृतभूत है। जन्म, जरा, मृत्यु रूपी रोगों की परिहारक एवं सर्व दुखों का क्षय करने वाली है। उस परमौषधि का सेवन हमें अपनी पात्रता के अनुसार करना है। जिस प्रकार कुशल वैद्य रोगी की वय, रोग, शक्ति, प्रकृति, मौसम का प्रभाव देखकर, औषधि की मात्रा, सेवन की विधि व पथ्यापथ्य की बातों का समीचीन विचार करके ही रोगी को औषधि का सेवन कराता है, उसी प्रकार परम पूज्य श्री दिगम्बर जैनाचार्य रूपी कुशल वैद्यों के निर्देशानुसार हम सभी को भी क्रमशः जिनागम का स्वाध्याय करना है तभी हम जन्म, जरा, मृत्यु जैसे रोगों से मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। यदि हमने कुशल वैद्य के निर्देशों व सुझावों की उपेक्षा करके स्वेच्छाचारिता पूर्वक (मनमाने ढंग से) औषधि का सेवन किया तो हो सकता है रोग नष्ट होने की बजाय बढ़ भी सकता है। तथा साथ में अन्य भी कई रोग पैदा हो सकते हैं अतः जिनागम (जिनेन्द्र भगवान या आप्त प्रणीत, गणधर भगवन्तों द्वारा संग्रहीत एवं दिगम्बर मुनियों द्वारा लिपिबद्ध शास्त्रों को ही जिनागम कहते हैं) का प्रत्येक अक्षर, शब्द, पद, वाक्य श्रद्धान के योग्य हैं। जिनवाणी का कोई भी अंश/अंग उपेक्षणीय नहीं है। आचार्य भगवन् श्री शिव कोटि महाराज कहते हैं -

*पद मक्खरं च एक्कंपि जो ण रोचेदि सु णिदिट्ठं।*
*सेसं रोचंतो वि हू मिच्छा दिट्ठी मुणेयव्वा ॥ (मूलाराधना)*

जो जिनागम में प्रणीत एक भी अक्षर, शब्द, वाक्य या गाथा की श्रद्धा न करे और समस्त आगम को माने या उस पर श्रद्धा करे तो भी वह मिथ्या दृष्टि है अतः कोई

भी अनुयोग कभी अकल्याणकारी नहीं होता अपनी पात्रता के अनुसार सभी का स्वाध्याय करना चाहिए।

प्रथमानुयोग के ग्रंथों में त्रेसठ शलाका के महापुरुषों का जीवन चरित्र दर्शाया गया है "उन्होंने जीवन में जो शुभाशुभ क्रियायें की, पुण्य पाप का बंध किया उसका क्या फल प्राप्त हुआ" का वर्णन है। एवं कर्म सिद्धान्त को प्रत्यक्ष दूरदर्शन (चलचित्र) पर चल रहे चित्रों की तरह दिखाया गया है। प्रथमानुयोग के शास्त्रों का प्रारम्भिक दशा में (स्वाध्याय के क्रम में) स्वाध्याय अत्यन्त आवश्यक है। इस अनुयोग का स्वाध्याय करने से पापों से भीति, जिनेन्द्र भगवान में प्रीति, सच्चे देव, शास्त्र, गुरु व जिनधर्म में अनुराग व रुचि, संयम प्राप्ति की प्रबल भावना, संसार शरीर भोगों से उदासीनता/विरक्ति, रत्नत्रय में अनुरक्ति की भावना जागृत होती हैं। आचार्य भगवन् समन्तभद्र स्वामी जी कहते हैं –

*प्रथमानुयोग मर्थाख्यानं चरितं पुराण मपि पुण्यम्।*
*बोधि समाधि निधानं बोधति बोधः समीचीनः ॥43॥ र. श्रा.*

प्रथमानुयोग पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादक है। पुराण/पौराणिक पुरुषों के पुण्य चरित्र का कथन करता है यह बोधि (रत्नत्रय - सम्यक दर्शन, ज्ञान, चारित्र) एवं समाधि- निर्विकल्प ध्यान की अवस्था (जो अभेद रत्नत्रय के प्राप्त होने पर शुद्धोपयोगी मुनि के आत्मा में लीन होने पर प्राप्त होती है जिसे आत्मानुभूति भी कहते हैं इसका प्रारंभ सातवें अप्रमत्त गुणस्थान से होता है इसके पूर्व शुद्ध आत्मा की प्रत्यक्षानुभूति कदापि संभव नहीं है। अर्थात् असम्भव है) का खजाना हैं ऐसे समीचीन बोध को देने वाला प्रथमानुयोग/कथानक है अपितु उनमें श्रावक धर्म व मुनि धर्म का कथन करने वाला चरणानुयोग भी उपलब्ध होता है। गुणस्थानों, मार्गणा स्थानों, दस प्रकार के करणों एवं त्रिलोक संबधी कथन होने से करणानुयोग, जीव की स्थिति तथा जीवादि द्रव्यों के स्वभाव, शुद्ध गुण, पर्याय का कथन भी प्रथमानुयोग में मिलने से द्रव्यानुयोग भी दृष्टिगोचर होता है। प्रथमानुयोग में भी संक्षेप रूप से चारों अनुयोगों का कथन मिल जाता है ऐसा कहना भी कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

स्वाध्याय से विमुख या एकान्तवाद की पंक में लिप्त जो अज्ञ महानुभाव प्रथमानुयोग को कथा कहानी कहकर उसकी उपेक्षा करते ही हैं वे अपने जीवन के साथ खिलवाड़ तो करते हैं साथ ही जिनागम की अवहेलना कर अन्य भव्य जीवों के पतन में भी कारणरूप से सहभागी हो जाते हैं।

अतः मन्द कषायी, भद्र परिणामी, प्रशम, संवेग भावयुक्त उन समस्त स्वाध्याय प्रेमी, सत् श्रद्धालु धर्मस्नेही, आत्महितेच्छुक, पाप भीरु महानुभावों के लिए विनम्र सुझाव/निर्देश है कि वे जिनेन्द्र भगवान की वाणी का अपलाप करके पाप के भागीदार न बनें, अपितु समीचीन शास्त्रों का समीचीन विधि से स्वाध्याय करके स्वपर के कल्याण में सहयोगी बनें। सम्यक्ज्ञान रूपी नेत्र के बिना जीव कभी भी अपना कल्याण नहीं कर

सकता है अतः यथाशक्ति नित्य विनय पूर्वक विशुद्ध भावों से स्वाध्याय करने का समीचीन प्रयास करें।

इस ग्रंथ के पुनः प्रकाशन का उद्देश्य यही है कि अधिक से अधिक भव्य जीव स्वाध्याय के लिए प्रेरित हों। वर्तमान में स्वाध्याय की परम्परा मंद होती चली जा रही है क्योंकि जो स्वाध्याय करना चाहते हैं वे (प्रारम्भिक स्वाध्यायार्थी) बड़े-ग्रंथों को देखकर ही अपना साहस खो बैठते हैं। तथा प्रथमानुयोग के ग्रंथ सर्वत्र सहज सुलभ भी नहीं हो पा रहे हैं अधिकांशतः एकान्तवाद से दूषित साहित्य दृष्टिगोचर हो रहा है जिससे प्राणी मिथ्यात्व रूपी अंधकार में भटकते हुए भव भ्रमण की वृद्धि ही कर रहे हैं अतः प्रथमानुयोग के लघु शास्त्रों का प्रकाशन इस युग की आवश्यकता की पूर्ति में सहयोगी सिद्ध होगा।

इस ग्रंथ के सम्पादन में मुझ अल्पज्ञ साधक के द्वारा जो त्रुटि रह गई हों तो सकल संयमी विज्ञजन मुझे क्षमा करते हुए भूल सुधारने हेतु संकेत देने का कष्ट करें, इसमें जो त्रुटि हैं वे सब मेरी अल्पज्ञता की द्योतक हैं, तथा जो भी अच्छाई हैं वे सब परम पूज्य आचार्य भगवन्तों का सुप्रसाद ही हैं। अतः गुणग्राही बन कर गुण ग्रहण करें।

''अलमति विस्तरेण''

*कश्चिदल्पज्ञ श्रमणः*
*जिन चरण चञ्चरीक*
*टूंडला (3.12.2000)*

❋❋❋

तीर्थंकर भगवान श्री 1008 महावीर स्वामी जी का

# जीवन परिचय

| | | |
|---|---|---|
| *नाम* | : | श्री महावीर स्वामी |
| *माता का नाम* | : | प्रियंकारिणी/त्रिशला |
| *पिता का नाम* | : | श्री सिद्धार्थ |
| *चिन्ह* | : | सिंह |
| *आयु* | : | 72 वर्ष |
| *अवगाहना* | : | 7 हाथ |
| *गर्भ तिथि* | : | आषाढ़ शु. 6 |
| *जन्म तिथि* | : | चैत्र शु. 13 |
| *दीक्षा तिथि* | : | मार्ग कृष्ण 10 |
| *केवलज्ञान तिथि* | : | वै. शु. 10 |
| *निर्वाण तिथि* | : | कार्तिक कृ. 15 |
| *यक्ष* | : | गुह्ययक |
| *यक्षिणी* | : | सिद्धायिनी |
| *वैराग्य का कारण* | : | जातिस्मरण |
| *दीक्षा वन* | : | नाथ |
| *दीक्षा वृक्ष* | : | साल |
| *सहदीक्षित* | : | एकाकी |
| *छदमस्थ काल* | : | 12 वर्ष |
| *कुल गणधर* | : | 11 |
| *मुख्य गणधर* | : | इन्द्रभूति |
| *मुख्य श्रोता* | : | श्रेणिक |
| *मुख्य आर्यिका* | : | चन्दना |
| *प्रथम आहार दाता* | : | चन्दना |
| *सर्व ऋषि* | : | 14000 |
| *सर्व आर्यिका* | : | 36000/35000 |
| *श्रावक* | : | 1,00,000 |
| *श्राविका* | : | 3,00,000 |
| *केवली काल* | : | 30 वर्ष |
| *तीर्थकाल* | : | 21042 वर्ष |
| *वंश* | : | नाथ |
| *देवगति से पूर्व भव का नाम* | : | नन्द/सुनन्द/नन्दन |

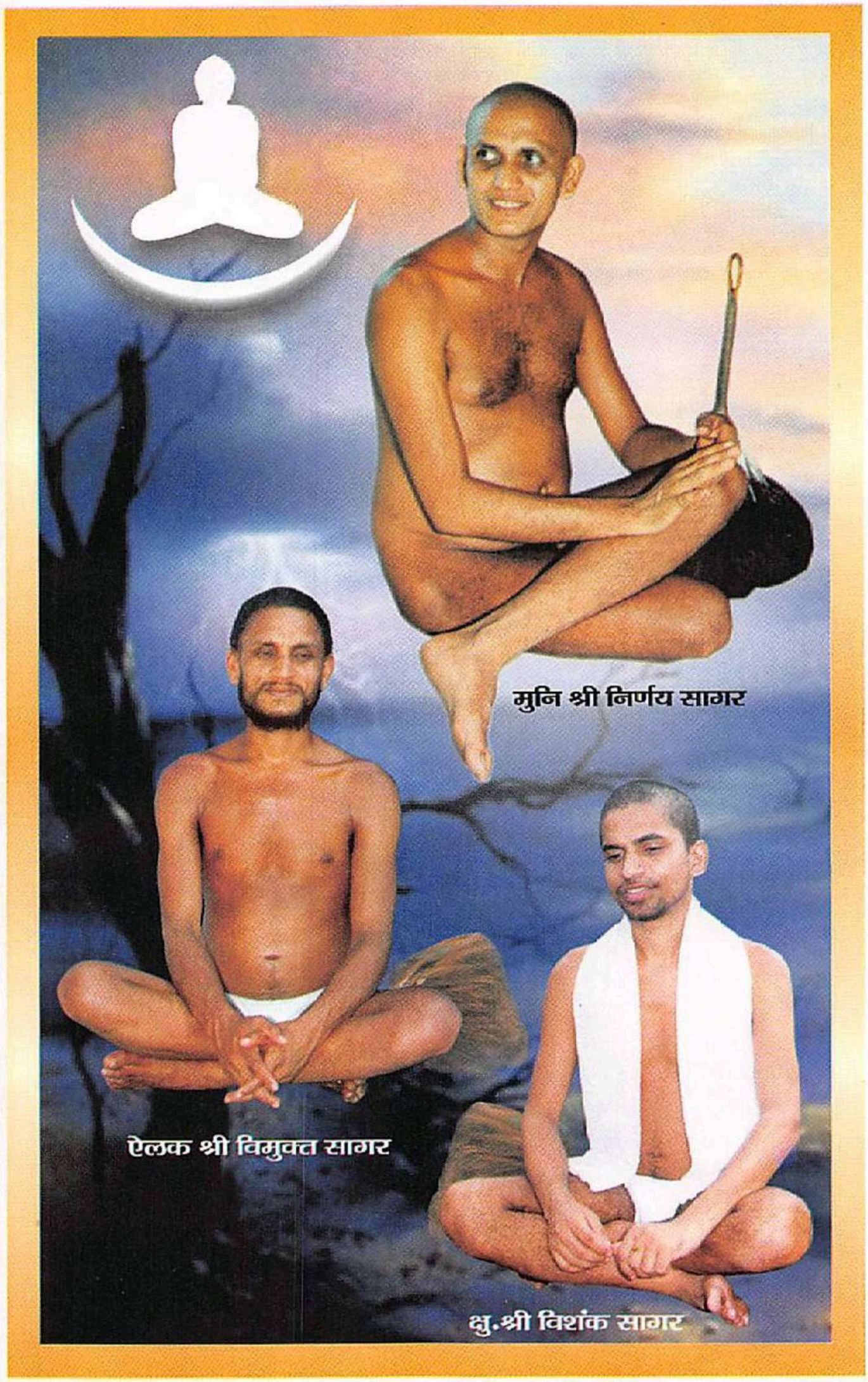
मुनि श्री निर्णय सागर
ऐलक श्री विमुक्त सागर
क्षु.श्री विशंक सागर

भगवान श्री 1008 महावीर स्वामी के 2600 वें
जन्म कल्याणक महोत्सव एवं अहिंसा वर्ष
के पुनीत अवसर पर

# निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

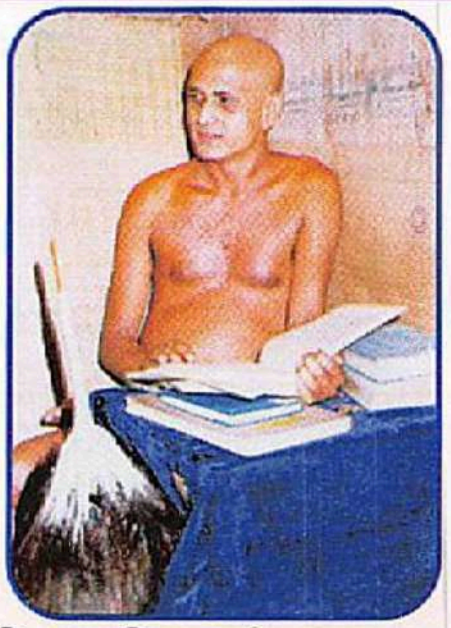

जिनागम के अनुपलब्ध ग्रंथों
की अद्भुत खोज एवं प्रकाशन
प्रथमानुयोग के ग्रंथों की विशेष श्रंखला

**मुनि श्री निर्णय सागर जी द्वारा रचित एवं संपादित साहित्य की एक झलक**

**प्राप्ति स्थानः- चन्द्रा कापी हाउस, हॉस्पीटल रोड, आगरा**

# भगवान महावीर स्वामी और उनके सिद्धान्त

भगवान महावीर स्वामी जैन धर्म के चौबीसवें/अंतिम तीर्थंकर थे, किंतु जैन ऐतहासिक परम्परानुसार वे जैन धर्म के न तो आदि प्रवर्तक थे और न ही सदा के लिए अंतिम तीर्थंकर। जैन धर्म की स्थापना किसी व्यक्ति विशेष के माध्यम से नहीं हुई क्योंकि यह जैन धर्म 'वस्तु के स्वभाव को ही धर्म कहता है'। संसार में विद्यमान समस्त पदार्थ अनादि निधन हैं यह सृष्टि भी अनादि-निधन है अतः पदार्थों का कभी अभाव नहीं होता। यथा जल का स्वभाव शीतलता व अग्नि का स्वभाव उष्णता है। ये स्वभाव अनादि-निधन हैं। इन्द्रिय व कर्म विजेता जिनधर्म प्रवर्तक जिनेन्द्र भगवान व तीर्थंकर अनादि काल से होते आ रहे हैं और अनंत काल तक होते रहेंगे। तीर्थंकर महापुरुषों द्वारा उपदिष्ट धर्म में अपने अपने युग के अनुसार विशेषताएँ भी रहती हैं और उनके मौलिक स्वरूप में तालमेल भी बना रहता है।

वर्तमान युग में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव हुए, जिनका वर्णन न केवल जैन पुराणों में अनिवार्यतः आता है, अपितु भारत के प्राचीन ग्रंथों ऋग्वेद आदि में भी बाहुल्यतः मिलता है। यथा-ऋग्वेद के 10 वें पर्व की 102 व 10 वीं ऋचा में, इसी पर्व की 136, 166, 233 ऋचाओं में; इसके अतिरिक्त भाग 0 पुराण 5, 6 में व विष्णु पुराण के 3, 18 में भी वृषभनाथ के केशी, वातरसना, ऋषभनाथ आदि नाम ध्यान देने योग्य हैं।

उन वृषभदेव से लेकर महावीर भगवान पर्यंत 24 तीर्थंकरों के चरित्र का विधिवत् वर्णन जैन पुराणों में है।

धार्मिक, सैद्धान्तिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, आगमिक दृष्टियों से उनमें एक रूपता तथा एक आत्मा की व्याप्ति प्रकट करने के लिए महावीर स्वामी के पूर्व जन्म की परम्परा भगवान वृषभदेव से जुड़ी हुई है।

## *पुरुरवा भील से मारीचि तक*

पुरुरवा भील जिसने जंगल में शिकार करते समय 'सागरसेन' मुनिराज के दर्शन करने मात्र से कौए के मांस का त्याग किया था। इस नियम का उसने विषम परिस्थितियों में भी पालन किया। वही पुरुरवा भील मृत्यु के उपरांत सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। वहां से प्रथम तीर्थंकर वृषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती (जिसके नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा) का पुत्र मारीचि कुमार हुआ। 'भरत चक्रवर्ती के नाम से इस देश का नाम भारत पड़ा' यह कथन वैदिक पुराणों में भी एक मत से स्वीकार किया गया है यथा-

| | |
|---|---|
| भागवत पुराण | 5, 4, 9, 11, 2 |
| विष्णु पुराण | 2, 1, 31, |
| वायु पुराण | 33,52 |
| अग्नि पुराण | 107,11,12 |
| ब्रह्माण्ड पुराण | 14,5,62 |

| | |
|---|---|
| लिंग पुराण | 1,47,23 |
| स्कन्द कुमार खण्ड | 37,57 |
| मार्कण्डय पुराण | 50, 41 |

इत्यादि पुराणों आदि में उपरोक्त कथन का स्पष्टत: उल्लेख है।

## *मारीचि से सिंह पर्याय तक*

मारीचि ने वृषभदेव के चरणों में जिनदीक्षा अंगीकार कर ली, किंतु वह आदि तीर्थंकर द्वारा निर्दिष्ट कठोर मुनिव्रतों का पालन नहीं कर सका अत: वह मुनि पद से भ्रष्ट हो गया मात्र अल्प काल ही मुनि रहा। इस पद से भ्रष्ट होने के बावजूद भी उसमें धर्म का बीजारोपण तो हो ही चुका था अतएव वह परिव्राजक साधु बन गया। भगवान वृषभदेव से अपने बारे में 'यह तीर्थंकर होगा' यह सुनकर अहंकार से जिनमत को छोड़कर 363 मिथ्यामतों की स्थापना करने वाला हुआ। दुर्धर कुतप करने से एवं अज्ञानतापूर्वक चारित्र का परिपालन करने से वह देव हुआ। पुन: अनेक बार देव, मनुष्य, तिर्यञ्च, नारकी पर्याय में मारीचि ने भ्रमण किया। असंख्यात् भवों को धारण कर कुछ कम एक कोड़ा-कोड़ी सागरोपम काल तक उसने परिभ्रमण किया।

अन्यत्र यह लिखा है कि सौधर्म स्वर्ग से आकर अग्निसह ब्राह्मण हुआ। पुन: स्वर्ग गया। वहां से च्युत होकर अग्निमित्र परिव्राजक बना। पश्चात् माहेन्द्र स्वर्ग गया वहां से च्युत हो भारद्वाज ब्राह्मण हुआ। पुन: परिव्राजक बन कर माहेन्द्र स्वर्ग गया वहां से निकलकर उसने तिर्यञ्च गति में व अधोगति में परिभ्रमण किया पुन: मारीचि का जीव सागरोपम काल के लिये इतर निगोद गया इसके अनन्तर उसने इन भवों को धारण किया-

| | |
|---|---|
| 1000 (एक हजार) | आक के वृक्ष के भव |
| 80,000 (अस्सी हजार) | सीप के भव |
| 20,000 (बीस हजार) | नीम के भव |
| 90,000 (नब्बे हजार) | केलि के भव |
| 3,000 (तीन हजार) | चन्दन के भव |
| 5,00,00,000 (पांच करोड़) | कनेर के भव |
| 60,000 (साठ हजार) | वेश्या के भव |
| 5,00,00,000 (पांच करोड़) | शिकारी के भव |
| 20,00,00,000 (बीस करोड़) | हाथी के भव |
| 60,00,00,000 (साठ करोड़) | गधा के भव |
| 30,00,00,000 (तीस करोड़) | श्वान के भव |
| 20,00,00,000 (बीस करोड़) | नारी के भव |
| 8,00,00,000 (आठ करोड़) | घोड़ा के भव |
| 20,00,00,000 (बीस करोड़) | बिल्ली के भव |

| | |
|---|---|
| 80,00,000 (अस्सी लाख) | देव पद के भव |
| 60,00,000 (साठ लाख) | नपुंसक के भव |
| 90,00,000 (नब्बे लाख) | धोबी के भव |
| 60,00,000 (साठ लाख) | अकाल मरण,गर्भपात के भव |
| 50,000 (पचास हजार) | राजा के भव |

अनेक भव सुपात्र को दान देने से भोगभूमि के व कुपात्र को दान देने से कुभोग भूमि के प्राप्त किये।

तदनन्तर जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड के मगध देश के राजगृह नगर में वेद पारंगत शांडिल्य ब्राह्मण की पाराशरी ब्राह्मणी से 'स्थावर' नामक पुत्र हुआ। पुनः वेद पारंगत होकर परिव्राजक बन माहेन्द्र स्वर्ग में सात सागर की आयु का धारक देव हुआ। वहां से चयकर इसी राजगृह नगर में विश्वभूति नामक राजा की जैनी नामक रानी से विश्वनंदी नामक पुत्र हुआ। इसी विश्वभूति राजा का भाई विशाखभूति था। एक दिन अपने विश्वभूति राजा विरक्त हो अपने छोटे भाई को राज्य पद व अपने पुत्र को युवराज पद देकर जैनेश्वरी दीक्षा लेकर कठिन तप करने लगा।

किसी दिन विश्वनंदी युवराज के मनोहर नामक बगीचे को देखकर चाचा के पुत्र विशाखनंदी ने अपने पिता से उसकी याचना की। विशाखभूति राजा ने भी मायाचारी से विश्वनंदी को शत्रुओं पर आक्रमण के लिए भेजकर वह उद्यान अपने पुत्र के लिए दे दिया। विश्वनंदी को इस बात का पता लगाते ही उसने वापिस आकर विशाखनन्दी को पराजित कर दिया और उसको भयभीत देख विरक्त होकर उसको उद्यान सौंप कर आप स्वयं दैगम्बरी दीक्षा लेकर तप करने लगा।

घोर तपश्चरण करते हुए अत्यन्त कृश शरीरधारी विश्वनंदी मुनिराज एक दिन मथुरा नगरी में आहार के लिए आये। व्यसनों से भ्रष्ट यह विशाखनन्दी उस समय किसी राजा का दूत बनकर वहां आया हुआ था और एक वेश्या के भवन की छत पर बैठा मुनि को देख रहा था। दैवयोग से वहां एक गाय ने मुनिराज को धक्का देकर गिरा दिया। उन्हें गिरता देख क्रोधित हुआ विशाखनंदी बोला कि 'तुम्हारा पराक्रम हमें मारने को पत्थर का खम्भा तोड़ते समय देखा गया था वह आज कहां गया? इस प्रकार खोटे वाक्यों को सुनकर मुनिराज के मन में भी क्रोध आ गया और बोले कि इस हंसी का फल तुझे अवश्य मिलेगा। और अंत में निदान सहित सन्यास से मरण कर मुनिराज महाशुक्र स्वर्ग में देव हुए और विशाखभूति राजा (चाचा) का जीव भी वहां पर तप पूर्वक मरण करके देव हुआ। चिरकाल तक सुख भोगकर वे दोनों वहां से च्युत होकर सुरम्य देश के पौदनपुर नगर में प्रजापति महाराज की जयावती रानी से विशाखभूति का जीव 'विजय' नामक बलभद्र पदवी धारक पुत्र हुआ और उन्हीं की दूसरी मृगावती रानी से विश्वनंदी का जीव नारायण पद धारक त्रिपृष्ठ नामक पुत्र हुआ एवं विशाखंनदी का जीव चिरकाल तक संसार में परिभ्रमण कर विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी के उलकापुर नगर में मयूरग्रीव विद्याधर की नीलाञ्जना रानी

से अश्वग्रीव का नाम प्रतिनारायण पद का धारक पुत्र हुआ। पूर्व जन्म के संस्कार से त्रिपृष्ठ नारायण ने अश्वग्रीव प्रतिनारायण को मारकर चक्र रत्न प्राप्त किया। चिरकाल तक राज्य सुख को भोगकर अंत में भोगासक्ति से मरकर सांतवें नरक को प्राप्त किया। वहां के दुखों को सागरों पर्यंत सहकर उसी भरत क्षेत्र की गंगा नदी के तट के समीपवर्ती वन में सिंहगिरि पर्वत पर सिंह हुआ, वहां भी तीव्र पाप से पुनः प्रथम नरक को प्राप्त किया। वहां एक सागर तक दुख भोग कर जम्बूद्वीप में सिंहकूट की पूर्व दिशा में हिमवन पर्वत के शिखर पर सिंह हो गया।

*सिंह का उत्थान*

किसी समय यह सिंह किसी हरिण को पकड़ कर खा रहा था। उसी समय अतिशय दयालु 'अजितंजय' नामक चारण मुनि अमितगुण नामक चारणमुनि के साथ आकाश में जा रहे थे। उन्होंने उस सिंह को देखा, देखते ही वे तीर्थंकर के वचनों का स्मरण कर दयावश आकाशमार्ग से उतरकर उस सिंह के पास पहुंचे और शिलातल पर बैठकर उच्च स्वर से सम्बोधन कर धर्ममय वचन कहने लगे। उन्होंने कहा कि हे मृगराज! तूने पहले त्रिपृष्ठ नारायण के भव में इन्द्रियों में आसक्त होकर मरकर नरक पर्याय प्राप्त की। वहां के दुख भोगकर वहां से निकलकर सिंह पर्याय पाकर क्रूरकर्मी होकर पुनः नरक गया अब वहां से निकलकर पुनरपि सिंह पर्याय को प्राप्त हुआ है। अरे मृगराज !

अब इस भव से तू दशवें भव में अन्तिम तीर्थंकर होगा। यह सब मैंने श्रीधर तीर्थंकर के मुख से सुना है। हे बुद्धिमान! अब तू आज से संसार रूपी अटवी में गिराने वाले मिथ्यामार्ग से विरत हो और आत्मा का हित करने वाले मार्ग में रमण कर।

इस प्रकार उस सिंह ने मुनिराज के वचन हृदय में धारण किये तथा उन दोनों मुनिराजों की भक्ति के भार से नम्र होकर बार-बार प्रदक्षिणाएं दीं बार-बार प्रणाम किया। शुभ निमित्त के मिल जाने से शीघ्र ही तत्व श्रद्धान धारण किया और मन स्थिर कर श्रावक के व्रत ग्रहण कर लिये।

इस प्रकार संयमासंयम के व्रतों का पालन करते हुए सिंह अन्त में सन्यास धारण करके एकाग्रचित्त से मरा अंत में सौधर्म स्वर्ग में सिंहकेतु नामक देव हुआ। वहां दो सागर तक सुखों को भोग कर वहां से च्युत होकर धातकीखंड के पूर्व विदेह की मंगलावती देश के विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी के कनकमाला नगर के राजा कनकपुंख विद्याधर और कनकमाला रानी के गर्भ से कनकोज्ज्वल नामक पुत्र हुआ। किसी समय मंदर पर्वत पर 'प्रियमित्र' मुनिराज से दीक्षा लेकर अंत में समाधि से मरणकर सांतवे स्वर्ग में देव हुआ। वहां से च्युत होकर इसी अयोध्या नगरी के राजा वज्रसेन की शीलवती रानी से हरिषेण नामका पुत्र हुआ। पुनः राज्य भार को छोड़कर श्रुतसागर मुनि से दीक्षा लेकर आयु के अंत में महाशुक्र स्वर्ग में देव हुआ। वहां से च्युत होकर धातकीखंड के पूर्व विदेह की पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरी के राजा सुमित्र और उनकी मनोरमा रानी से प्रियमित्र पुत्र हुआ। इस प्रियमित्र ने चक्रवर्ती के वैभव को प्राप्त किया था।

अनन्तर क्षेमंकर तीर्थंकर से दीक्षा लेकर आयु के अंत में सहस्रार स्वर्ग में देव सुख का अनुभव कर जम्बूद्वीप के छत्रपुर नगर में नन्दिवर्धन महाराजा की वीरवती महारानी से नन्द नामक पुत्र हुआ। यहां पर भी अभिलक्षित राज्य सुख को भोग कर प्रोष्ठिल नाम के गुरु के पास दीक्षा लेकर उग्र तपश्चरण करते हुए ग्यारह अंगों का ज्ञान प्राप्त कर लिया और दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं का चितंवन कर तीर्थंकर नमकर्म का बंध किया। आयु के अंत में सब प्रकार की आराधनाओं को प्राप्त कर अच्युत स्वर्ग के पुष्योत्तर विमान में श्रेष्ठ इन्द्र हुआ।

जब इस इन्द्र की आयु 6 महीने शेष थी तब इस भरत क्षेत्र के विदेह नामक देश सम्बन्धी कुण्डलपुर नगर के राजा सिद्धार्थ के भवन के आंगन में इन्द्र की आज्ञा से कुबेर के द्वारा की गयी प्रतिदिन साढ़े दश करोड़ या चौदह करोड़ रत्नों की मोटी धारा बरसने लगी।

श्री शुभमिती आषाढ़ शुक्ला षष्ठी, शुक्रवार 17 जून ईसवी सन् से 599 वर्ष पूर्व की रात्रि के पिछले प्रहर में सिद्धार्थ महाराज की रानी प्रियकारिणी ने सोलह स्वप्न देखे एवं प्रभात में अपने पतिदेव से उन स्वप्नों का फल सुनकर सन्तोष प्राप्त किया। अनन्तर देवों ने आकर भगवान का गर्भ कल्याणक उत्सव मनाते हुए माता-पिता की विधिवत् पूजा की। अर्थात् माता त्रिशला के गर्भ में अच्युतेन्द्र का जीव आ गया।

***जन्म कल्याणक***

नव मास व्यतीत होने पर चैत्र सुदी 13 सोमवार 27 मार्च ईसवी सन् से 598 वर्ष पूर्व माँ त्रिशला ने तीर्थंकर बालक को जन्म दिया। उनके जन्म से तीनों लोको में क्षण भर के लिए शांति की लहर छा गई। उनके जन्म से सर्वत्र सुख शांति, धर्म, लक्ष्मी, यश आदि की वृद्धि हुई थी। इसलिये उनका नाम वर्धमान रखा गया। सौधर्म इन्द्र ने मेरु पर्वत की पांडुक शिला पर असंख्यात देव समूह के साथ उन भगवान बालक का अभिषेक किया।

संजयंत व विजयंत नामक मुनिराजों का संशय उनको देखने मात्र से दूर हो गयाथा। अत: उन्होंने उनको 'सन्मति' कहकर सम्बोधित किया। बाल्यावस्था में ही संगम देव द्वारा ली गई परीक्षा में वे सफल हुए। संगम देव इनकी शक्ति व निर्भयता देखकर दंग रह गया, उसने नम्रीभूत होकर उनकी 'महावीर' नाम से स्तुति की।

भगवान महावीर पांचवे बालयति तीर्थंकर थे। इनके पूर्व वासुपूज्य भगवान, मल्लिनाथ भगवान, नेमिनाथ भगवान, पार्श्वनाथ भी बाल ब्रह्मचारी तीर्थंकर थे। इन्होंने स्वेच्छा से शादी नहीं रचायी। सकल विषय वासनाओं को जीतकर तीस वर्ष की वय में इन्होंने मंगसिर वदी 10 सोमवार 20 दिसम्बर सन् ईसवी सन् से 569 वर्ष पूर्व में दिगम्बर जिन दीक्षा ग्रहण की।

बारस वर्ष की कठोरतम मौन व्रत एवं संयम साधना व आतम ध्यान के फल स्वरूप जृम्भिका ग्राम के समीप, ऋजुकूला नदी के किनारे मनोहर नामक वन में भगवान महावीर स्वामी को वैशाख सुदी 10 रविवार 26 अप्रैल ईसवी सन् से 537 वर्ष पूर्व को चार घातिया कर्मों को

क्षय कर केवलज्ञान को प्राप्त किया। योग्य श्रोता/ गणधर के अभाव में भगवान की दिव्यध्वनि 66 दिन तक नहीं खिरी। अर्थात् धर्मोपदेश नहीं हुआ। महावीर स्वामी का प्रथम धर्मोपदेश श्रावण कृष्णा 1, वीर शासन जयंती 1-1-1 को अथवा ईसवी सन् से 557 वर्ष पूर्व प्रारंभ हुआ था।

30 वर्ष तक भगवान महावीर स्वामी ने केवली अवस्था में अनेकों देशों में विहार कर धर्म का उपदेश भव्य जीवों को दिया। उनके समवशरण में अंसख्यात देव देवियां, लाखों मनुष्यों/श्रावकों व लाखों श्राविकाएं, हजारों दिगम्बर मुनि व हजारों साध्वीयां/आर्यिका माताएं थीं। प्राणी मात्र को कल्याण का उपदेश देने वाले भगवान महावीर स्वामी ने लगभग 72 वर्ष की उम्र में शेष चार अघातिया कर्मों को भी क्षय करके कार्तिक वदी 14 की रात्रि के अंतिम पहर या कार्तिक वदी अमावस्या के प्रातः काल मंगलवार 15 अक्टूबर ईसवी सन् से 527 वर्ष पूर्व को मोक्ष प्राप्त किया।

भगवान महावीर स्वामी द्वारा प्रतिपादित/प्रचारित सिद्धान्तों को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है। प्रथम ज्ञेय सिद्धान्त, द्वितीय आचरणीय सिद्धान्त।

## *I. ज्ञेय सिद्धान्त*

अर्थात् जानने योग्य सिद्धान्त। वस्तु तत्व को यथार्थ रूप से समझने के लिए जिनमत के रहस्य मयी सूत्रों को आत्मसात करने के लिए, आत्मा को परमात्मा बनाने की कला सीखने के लिए, विश्व के प्रत्येक प्राणी की मनोभावना व वाच्य सिद्धांतो को समझने के लिए भगवान महावीर स्वामी के ज्ञेय सिद्धान्तों को जानना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। उन ज्ञेय सिद्धान्तों को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है-प्रथम अनेकान्तात्मक सिद्धान्त या अनेकान्तवाद, द्वितीय स्याद्वाद।

### *1. अनेकान्तवाद*

प्रत्येक द्रव्य में अनन्त धर्म विद्यमान हैं या प्रत्येक द्रव्य में अनेक गुण, स्वभाव या लक्षण पाये जाते हैं। अनेकान्त का शब्दिक अर्थ है-अनेक है अंत जिसके, अर्थात् जिसमें अनन्त धर्म हैं। अनेकान्तात्मक दृष्टि से वस्तु तत्व को जानने वाला वाद ही अनेकान्त वाद है। यथा-राम एक होते हुए भी अनन्त धर्मा हैं, उनमें पितृत्व, पुत्रत्व, भ्रातृत्व, पतित्व, पौत्रत्व, प्रपौत्रत्व, पितामहत्व, प्रपितामहत्व, मानवता, जीवन्त, भव्यत्व, नित्यत्व, अनित्यत्व, एकत्व, अनेकत्व, भेदत्व, अभेदत्व इत्यादि धर्म हैं। इन परस्पर विरोधी सर्व धर्मों को बिना विरोध के जो ग्रहण करता है वही अनेकान्त वाद है।

### *2. स्याद्वाद*

श्री महावीर प्रभु का वस्तु तत्व को जानने वाला दूसरा प्रमुख सिद्धान्त है-स्याद्वाद। यह शब्द दो शब्दों के मेल से बना है-पहला शब्द है-स्याद व दूसरा शब्द है-वाद। इनमें 'स्याद' का

अर्थ कथञ्चित् है तथा 'वाद' शब्द का अर्थ कथन, वचन, वक्तव्य है। स्याद्वाद का अर्थ हुआ कि कथञ्चित् किसी बात को स्वीकार करना। द्रव्य में विद्यमान अनंत धर्मों का कथन एक साथ संभव नहीं है तथा वे धर्म परस्पर विरोधी भी हो सकते हैं। इन विरोधी धर्मों को भी जो कथंचित् (किसी अपेक्षा से यह भी सत्य है) सत्य कहता है वही है स्याद्वाद। स्याद्वाद समस्त विवादों को निबटाने व वस्तु तत्व का यथार्थ बोध कराने वाला अनुपम हेतु है।

## *II. भगवान महावीर स्वामी द्वारा प्रतिपादित आचरणीय सिद्धान्त-*

आचरण ही किसी धर्म की अंतर्चेतना हो सकती है, बिना आचरण के धर्म मुर्दा शरीर के बराबर है मुख्य रूप से भगवान महावीर स्वामी द्वारा उद्घोषित पांच सिद्धान्त सूत्र हैं। इनमें भी आत्म कल्याण व शांति का रहस्य छिपा हुआ है।

### *1. अंहिसा व्रत*

मन, वचन, काय से किसी जीव को कष्ट नहीं पहुंचाना, न कष्ट देने हेतु किसी को प्रेरित करना, किसी हिंसा करने वाले की अनुमोदना न करना अहिंसा का स्थूल स्वरूप है। यथार्थता में तो किसी जीव के प्रति हिंसा के परिणाम भी न होना अथवा किसी भी पर पदार्थ के प्रति हिंसा के परिणाम भी न होना अथवा किसी पदार्थ के प्रति राग द्वेष का नहीं होना, अपनी आत्मा में लीन रहना ही परम अहिंसा है। इस अंहिसा की ही पूर्णता के लिए शेष चार सिद्धान्त रक्षा कवच की तरह हैं। यह अंहिसा ही जगज्जननी है, प्राणी मात्र का प्राणों से प्रिय धर्म है, यह आत्म-स्वभाव है, लक्षण है, धर्म है ,नियति है, चरम साध्य लक्ष्य है।

### *2. सत्य व्रत*

मन, वचन, काय से सम्पूर्ण असत्य का त्याग करना, न वचन से असत्य बोलना, न शरीर से असद् चेष्टा करना और न ही मन में असद् विचार करना। असत्य के लिए प्रेरित करना तथा असत्यवादी असत्यार्थी असत्यासक्त की प्रशंसा नहीं करना, उसकी क्रिया की अनुमोदना नहीं करना, उसकी चेष्टाओं से सहमत नहीं होना ही सत्य व्रत है। पर भावों का सर्वथा त्याग कर निजात्मा में लीनता ही निश्चय से सत्य व्रत है।

### *3. अचौर्य व्रत*

किसी की भूली हुई, पड़ी हुई, गिरी हुई, वस्तु को उस स्वामी की अनुमति के बिना ग्रहण करना या ग्रहण करने का भाव करना भी चोरी है, यह चोरी का स्थूल लक्षण है। सूक्ष्म रूप से; दूसरे के विचार, आशय, ज्ञान, यश, सुख, शांति छीनता भी चोरी है। जिस वस्तु का अधिकारी किसी और को होना चाहिए यदि आप उसके अधिकारी अवैध रूप से बन गये है तो वह भी चोरी है। निश्चयापेक्षा से तो पर पदार्थों का ग्रहण, आत्मा लीनता का अभाव चोरी है। स्वात्म लीनता ही निश्चय से अचौर्य व्रत है।

### *4. ब्रह्मचर्य व्रत*

अपनी ब्रह्म स्वरूप आत्मा में लीन होना, किसी भी स्त्री के साथ काम सेवन, या इन्द्रिय विषय में प्रवृत्ति नहीं करना ही ब्रह्मचर्य व्रत है। यह व्यवहार ब्रह्मचर्य अणुव्रत है। स्त्री मात्र के साथ मैथुन का मन, वचन, काय से त्याग करना ब्रह्मचर्य व्रत है।

### *5. अपरिग्रह व्रत*

चेतन व अचेतन के भेद से परिग्रह के दो भेद हैं। इसके भी अंतरंग व बहिरंग के भेद से दो भेद हैं। उनके क्रमशः 14 व 10 भेद है। समस्त परिग्रह का मन वचन, काय से त्याग करना अपरिग्रह व्रत है। मन, वचन, काय से, कृत कारित अनुमोदना से समस्त वाह्य पदार्थों का त्याग करना, अपनी आत्मा में ही लीन हो जाना निश्चय से अपरिग्रह व्रत है। व्यवहार अपेक्षा से सकल वाह्य परिग्रह का, यथा शक्य अंतरंग परिग्रह का त्याग करना अपरिग्रह व्रत है।

इन पांचों व्रतों का पालन श्रावक एक देश करता है क्योंकि वह गृहस्थ है, उसके व्रत देश व्रत या अणुव्रत कहे जाते हैं तथा साधक को इन व्रतों का सकल देश या सम्पूर्णतया पालन करना चाहिए इन व्रतों के बिना आत्म-कल्याण असंभव ही है। इन पांच व्रतों का पालन करने से हजारों नियमों व संविधान के पालन की आवश्यकता नहीं है। इन्हीं में सभी नियम, कानून, विधान व संविधान का पालन हो जाता है।

★★★★★★

## आद्य वक्तव्य.....

*–उपाध्याय मुनि निर्णय सागर*

इस अखिल विश्व में विद्यमान गतिशील समस्त प्राणी केवल दो ही मार्गों के पथिक हैं, क्योंकि इन दो मार्गों के अतिरिक्त तीसरा कोई मार्ग ही नहीं है। जिसमें प्रथम मार्ग है प्रवृत्ति प्रधान मार्ग और दूसरा मार्ग है निवृत्ति प्रधान मार्ग।

प्रथम मार्ग जो प्रवृत्ति प्रधान है वह संसार में परिभ्रमण कराता है, कदाचित् मोक्ष मार्ग में सहयोगी हो जाता है। जबकि दूसरा मार्ग जो कि निवृत्ति प्रधान मार्ग है, वह नियम से मोक्ष का कारण है। यह निवृत्ति प्रधान मार्ग रागद्वेष से रहित, निश्चय रत्नत्रय धारी सकल संयमी जनों के ही शुद्धोपयोग की दशा में ही होता है। शुभोपयोग की दशा में तो सकल संयमी श्रमण भी प्रवृत्ति मार्ग का ही अनुसरण करते हैं। जो प्रवृत्ति प्रधान मार्ग है, उसके दो भेद हैं—प्रथम रागद्वेष से मुक्त अशुभोपयोगमय प्रवृत्ति और दूसरा धर्मानुराग युक्त शुभोपयोगमय प्रवृत्ति।

अशुभोपयोगमय प्रवृत्ति नियम से भववर्द्धक है, दुःखान्वित है प्रचुर मात्रा में पापास्रव कराने का कारण है, सम्यक्त्व का घातक है, बोधि व समाधि का प्रणाशक है, दुर्गतियों का उद्घाटक है, भव कूप में पतित करने वाला है। सम्यग्ज्ञान, सम्यक्वैराग्य, सम्यक् संयम व आत्मीय गुणों का विध्वसंक है। अशुभोपयोग कभी भी मोक्ष, मोक्षमार्ग या उसकी साधनभूत सामग्री में भी सहायक नहीं बनता। अतः अशुभोपयोगमय प्रवृत्ति निकृष्ट पापों की जनक होने से आत्म कल्याणेच्छुकों को सर्वथा ही हेय है।

जो द्वितीय मार्ग धर्मानुरागमय शुभोपयोगमय प्रवृत्ति का मार्ग है। वह भी यदि निदान और आकांक्षा से युक्त होता है तब यह भी प्रचुर मात्रा में इन्द्रियों के विषयों की पूर्ति हेतु भोगोपभोग की सामग्री उपलब्ध कराता है। तथा उसी में आसक्ति पैदा करने वाला होने से मोक्ष का कारण नहीं कहा जा सकता। अपितु तृतीय भव में नरकादि दुर्गति का ही हेतु बन जाता है।

जो धर्मानुरागमय या शुभोपयोग युक्त (पंचपरमेष्ठी की उपासना, भक्ति, अर्चना, पूजा, वंदना अथवा सच्चेदेव, शास्त्र व गुरुओं के प्रति श्रद्धा समर्पण व पूजा भक्ति का मार्ग, ब्रह्मचर्यादि व्रतों का पालन, उपवास, पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्तियों का पालना, स्वाध्याय, ध्यान–चिन्तन–मनन एवं उत्तम क्षमादि दश धर्मों का पालन करने रूप जो मार्ग है व प्रवृत्ति परक प्रधान होते हुए भी निश्चय से मोक्ष का मार्ग है। व्यवहारिक धर्म/रत्नत्रय भी निश्चय से मोक्ष का मार्ग है। व्यवहार/सराग रत्नत्रय भी सर्वदा प्रवृत्ति मार्ग में गतिशील श्रमणों को

भी ग्राह्य है। श्रावकों के जीवन में मात्र एक प्रवृत्ति मार्ग ही होता है। श्रावक निवृत्ति मार्ग का पथिक गृहस्थी में रहते हुए कभी नहीं बन सकता। सातिशय पुण्यास्रव का हेतु भी नियम से परम्परा से मोक्ष का ही कारण है।

प्रस्तुत ग्रंथ आध्यात्म योगी, परम तपस्वी पूज्य श्री केशवनन्दी मुनिराज के शुभाशीष का ही प्रतिफल है, इस ग्रंथ को संस्कृत भाषा में लिपिबद्ध किया है **श्री रामचन्द्र मुमुक्षु जी ने**। संभव है ये भी संसार, शरीर व भोगों से विरक्त आगम वेत्ता मुनि अथवा संवेगी उत्कृष्ट श्रावक रहे हों। यद्यपि **'मुमुक्षु'** शब्द का प्रयोग श्रमण के लिये ही किया जाता है। रामचन्द्र जी श्रमण थे या श्रावक, उनके लिये मुमुक्षु शब्द का प्रयोग विचारणीय है।

प्रस्तुत ग्रंथ **पुण्यास्रव कथा कोश** में छह अधिकारों के माध्यम से पुण्यास्रव के छह कारणों का ही वर्णन है। 1. जिनेन्द्र पूजन, 2. णमोकार मंत्र का माहात्म्य, 3. श्रुतोपयोग/स्वाध्याय करने का फल, 4. शीलव्रत का फल, 5. उपवास करने का फल, 6. दान का फल।

इन छह अधिकारों में (क्रमशः 8+8+8+8+9+16) 57 कथायें लिपिबद्ध हैं जिन जिन भव्य जीवों ने उक्त पुण्य कार्यों से पुण्यास्रव करके अपने जीवन को महान बनाया/आत्म कल्याण को प्राप्त किया उनकी कथायें ही इसमें वर्णित हैं।

उक्त छह कार्य सातिशय पुण्यास्रव के हेतु तो हैं ही साथ ही पाप/अशुभ योग्य का संवर, पूर्वबद्ध कर्मों की उदीरणा, संक्रमण अथवा अपकर्षण करने में भी कारण हैं। इतना ही नहीं अपितु इन शुभ कार्यों से पाप कर्मों की निर्जरा भी होती है।

**1. जिनेन्द्र पूजन**–संसारी प्राणी को भवोदधि से पार करने वाली यह एक अनुपम नौका है, कर्म प्रक्षालन में समर्थ साबुन है, भव कूप से निकालने वाली सुदृढ़ रज्जू है, यह शिव सुख का कारण है, इसके समान स्वर्ग व अपवर्ग का प्रदाता दूसरा कोई उपाय नहीं है। पूजन में कहा है–

*यह भव समुद्र अपार तारण के निमित्त सुविधि ठई।*
*अति दृढ़ परम पावन जथारथ भक्ति वर नौका सही ॥दे.शा.गु.प.*

*यह संसार अपार महासागर जिन स्वामी।*
*तातैं तारे बड़ी भक्ति नौका जग नामी ॥वि.बी.ती.पू.*

*और भी कहा है–*

*जिन पूजा तैं सब होय, जिन पूजा सम अवर न कोय।*
*जिन पूजा तैं स्वर्ग विमान, अनुक्रम तैं पावैं निर्वाण ॥*

जिन पूजा के समान पुण्य का कोई दूसरा मार्ग नहीं है, कहा भी है–

*जिन पूजा सम पुण्य न दूजा कथित तत्व आगम वरनी।*
*कोटि कार्य छोड़ि के मोकूँ जिनवर की पूज़ा करनी॥*

जो जिनेन्द्र भगवान की पूजा करते हैं, वे इन्द्र के समान कहे जाते हैं, तथा उनकी पूजा के फल से उन्हें त्रैलोकपूज्यता/परमात्म पद की प्राप्ति भी नियम से होती है। कहा भी है—

*जो नर पूजा करत हैं, सो नर इन्द्र समान।*
*मनुज मजूरी देत है क्यों न देय भगवान॥*

जिनेन्द्र भगवान की भक्ति के सम्बन्ध में कलिकाल सर्वज्ञ आ. भगवन् वीरसेन स्वामी कहते हैं—

*विघ्नाः प्रणश्यंति भयं न जातु, न दुष्ट देवाः परिलंघयंति।*
*अर्थान् यथेष्टांश्च सदा लभन्ते, जिनोत्तमानां परिकीर्तिनेन॥*

**अर्थ**—जिनेन्द्र भगवान की भक्ति करने से विघ्नों का नाश होता है, किसी प्रकार का भय नहीं रहता, एवं यथेष्ट पदार्थों की प्राप्ति होती है। आचार्य भगवान कुन्द-कुन्द स्वामी जी ने जिनेन्द्र भक्ति को कर्म निर्जरा का कारण बताते हुए कहा है—

*भत्तीए जिणवराणं खीयदि जं पुत्व संचियं कम्मं।*
*आइरयि पसाएण, विज्जा मंताय सिज्झंति॥मूलाचार*

जिनवरों की भक्ति करने से पूर्व संचित कर्मों का क्षय होता है, एवं आचार्यों के प्रसाद से विद्या व मंत्रों की सिद्धि होती है। पंच परमेष्ठी की भक्ति को प्रायः कर सभी दिगम्बर जैनाचार्यों ने सातिशय पुण्यास्रव व परम्परा से मोक्ष का हेतु कहा है।

पुण्यास्रव कथा कोश के प्रथम अधिकार में कुसुमावती-पुष्पलता, प्रीतिंकर ब्राह्मण, मेंढक, धनदत्त ग्वाला, बंधुमती, प्रभावती, श्रेणिक, वज्रदंत चक्रवर्ती व ब्राह्मण पुत्र की कथायें हैं। इस कथाष्टक में जिन पूजा के माहात्म्य को प्रकाशित किया है।

**2. णमोकार माहात्म्य**—द्वितीय अधिकार में महामंत्र की महिमा के सम्बन्धी कथायें वर्णित हैं, यह पंच नमस्कार मंत्र द्वादशांग का सार है, जीवमार्ग का उद्धारक है, सर्व पापों को नष्ट कर सम्पूर्ण सुखों को देने वाला है यह विश्व के सभी मंगलों में प्रथम मंगल है। जिनागम में कहा भी है—

*एसो पंच णमोयारो सव्व पावप्पणासणो।*
*मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं॥*

आ. भगवन शुभचन्द्र स्वामी जी ने ज्ञानार्णव ग्रंथ में कहा है—

*कृत्वा पाप सहसाणि, हन्त्वा जन्तु शतानि च।*
*अमुं मंत्रं समाराध्य, तिर्यञ्चोऽपि दिवंगताः॥ज्ञानार्णव*

इस मंत्र की आराधना से हजारों पापों को करके व सैकड़ों प्राणियों का हनन करने वाले तिर्यंच भी देव गति को प्राप्त हुए। जीवन के अंतिम क्षणों में भी यदि किसी जीव ने इस मंत्र का श्रवण, ध्यान, चिंतन मनन किया है, वह भी देवत्व को प्राप्त हुआ। णमोकार मंत्र की महिमा के बारे में जिनागम में सहस्रों दृष्टांत व कथानक आज भी विद्यमान हैं। णमोकार महामंत्र समस्त मंत्रों का जन्म दाता है, इसमें चौरासी लाख मंत्रों का समावेश है। यह मंत्र मूलमंत्र, मंत्र राज, अपराजित मंत्र, अनादि-निधन मंत्र, सर्व कर्म निर्मूलन मंत्र, संकट मोचक मंत्र, सर्व विघ्नहर मंत्र, महामंत्र, पंच नमस्कार मंत्र एवं परमेष्ठी मंत्र आदि नामों से जाना जाता है।

इस महामंत्र की महिमा दर्शाने के लिये रामचन्द्र जी ने द्वितीय अध्याय में निम्नलिखित आठ कथायें कहीं हैं। इस महामंत्र के श्रवण से बैल, बन्दर, विजय श्री, बकरा, रसकूप में पड़ा मनुष्य, दृढ़सूर्य चोर, सुभग नामक ग्वाला, नाग-नागिनी व हथिनी आदि जीव देवत्व को प्राप्त कर पुनः परम्परा से मोक्ष को प्राप्त हुए अथवा होवेंगे।

**3. श्रुतोपयोग फल**--इस अध्याय में श्रुतोपयोग/स्वाध्याय के फल के बारे में कथाओं के माध्यम से बताते हुए स्वाध्याय की प्रेरणा दी गई है। स्वाध्याय मन को एकाग्र करने का, अशुभ परिणामों को शुभ में बदलने का, वैराग्य भाव व संयम साधना की वृद्धि का एवं सातिशय पुण्यास्रव का भी कारण है। स्वाध्याय से सम्यक्त्व में दृढ़ता, ज्ञान में वृद्धि/परिपक्वता एवं संयम में निर्मलता भी आती है। यह रत्नत्रय संवर व निर्जरा का साक्षात् एवं मोक्ष का हेतु है। स्वाध्याय से किंचित कर्म निर्जरा भी होती है, इसलिये स्वाध्याय को परम तप कहा है। किन्तु यह परम तप की संज्ञा दिगम्बर संत के चिन्तन या अनुप्रेक्षात्मक स्वाध्याय के लिये ही है, किसी गृहस्थ या श्रावक के वाचनादि स्वाध्याय को नहीं। इसका कारण भी यह है कि परम तप तपस्वी के ही होता है, विराधक या आरम्भ परिग्रह में आकण्ठ डूबे प्रमादी गृहस्थ के नहीं।

आ. भगवन् श्री सकल कीर्ति महाराज ने कहा भी है--

*ज्ञानाभ्यास परो जीवः त्रिगुप्तेन्द्रिय संवरः।*
*भवेदेकाग्र चित्तस्य स्वाध्यायः परमं तपः ॥सु. रत्ना.*

ज्ञानाभ्यास से युक्त श्रमण जब तीन गुप्तियों का पालन व पंचेन्द्रियों का निग्रह करते हैं, तब उनका मन एकाग्र होता है, उन्हीं के वह स्वाध्याय परम तप कहा जाता है, उस समय संवर व निर्जरा दोनों ही होते हैं।

आ. भगवन् कुन्द-कुन्द स्वामी जी ने कहा भी है--

*"णवि अत्थि णवि य होहदि, सज्झाय समं तपो कम्मं।"10/80 मू.*

*स्वाध्याय तप के समान दूसरा कोई कार्य न है और न होगा।*

आ. भगवन् नरेन्द्र सेन जी ने भी सिद्धांत सार दीपक में कहा है–

*सर्वेभ्यो यद् व्रतं स्वाध्यायः परमं तपः।*
*यतः सर्व व्रतानां हि स्वाध्यायो मूलमादितः ॥20॥11॥ सि.सा.दी.*

समस्त व्रतों का मूल व्रत स्वाध्याय ही है, यह परम तप है एवं सम्पूर्ण

और भी कहा है–

*स्वाध्यायाज्जायते ज्ञानं, ज्ञानात्तत्वार्थ सग्रहः।*
*तत्वार्थ संग्रहादेव श्रद्धानं तत्व गोचरम् ॥21॥11॥ सि.सा.दी.*

स्वाध्याय से ज्ञान प्रकट होता है, ज्ञान से जीवादि तत्वों का संग्रह होता है, और उससे तत्व विषयक श्रद्धान होता है।

*प्रशस्ताध्यवसायाय स्वाध्यायोवृद्धिकारणम्।*
*तेनेह प्राणिनां निन्द्यं संचित कर्म नश्यति ॥23॥11॥ सि.सा.दी.*

स्वाध्याय प्रशस्त परिणामों की वृद्धि में कारण है, उन प्रशस्त परिणामों से प्राणियों का निदंनीय संचित कर्म क्षय को प्राप्त हो जाता है।

*स्वाध्याययेव समं किंचिन्न कर्म क्षपण क्षमम्।*
*यस्य संयोग मात्रेण नरो मुच्येत् कर्मणा ॥25॥11॥ सि.सा.दी.*

स्वाध्याय के समान कर्म निर्जरा के लिये अन्य कोई साधन नहीं है, जिसके संयोग मात्र से मनुष्य कर्म से मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

प्रस्तुत ग्रंथ के तृतीय अधिकार में स्वाध्याय के फल को दर्शाने वाली हरिण (अनंत बल/बलि मुनि), हंस (भामण्डल), यमराज (केवली यम मुनि), सूर्यमित्र (केवली), चाण्डाल पुत्री (सुकुमाल मुनि) चाण्डाल पुत्र (भीम केवली) सोमदेव चाण्डाल (देव) सहदेवी–व्याघ्री (देव) की ये आठ कथायें वर्णित हैं।

**4. ब्रह्मचर्य/शीलव्रत फल**–प्रस्तुत अधिकार में ब्रह्मचर्य व्रत के महत्व को दर्शाने वाली आठ कथायें हैं। ब्रह्मचर्य चेतना का भोग है, आत्मा का परम विशुद्ध परिणाम है, समस्त व्रतों का राजा है, त्रिलोक पूज्यता का जनक है, शारीरिक वाचनिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्ति का कोश है, मोक्ष महल की नींव है, संयम का प्राण है, निजात्मानुभूति का साधन है, आत्मा में रमण करने की विधि है, इस व्रत में जीवन में वही महत्व है जो महत्व शून्यों के मध्य अंकों का होता है। किसी कवि ने कहा भी है–

*घने बिन्दु जहँ दीजिये, अंक एक नहिं होय।*
*वैसे हि निष्फल जानिए, शील बिना सब कोय॥*

इस शीलफल नामक अधिकार में जयकुमार–सुलोचना, सेठ कुबेर प्रिय, सती सीता, प्रभावती, वज्रकर्ण, नीलीबाई, एवं चाण्डाल की ब्रह्मचर्य सम्बन्धी आठ कथायें हैं। ब्रह्मचर्य व्रत के प्रभाव से ही इन भव्य जीवों ने देवों द्वारा पूजा को, देवत्व तथा परम्परा से मोक्ष को प्राप्त किया/करेंगे।

वर्तमान समय में युवा पीढ़ी को धर्म में संलग्न करने हेतु तथा कुसंगति से बचाने में उक्त कथायें डूबते को तिनके के सहारे के समान कार्यकारी हैं।

**5. उपवास का फल**–प्रस्तुत ग्रंथ के पंचम अधिकार में उपवास करने के फल को दर्शाया गया है। उपवास शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक स्वस्थता का एक साधन है, इससे आत्मा की स्वाभाविक शक्ति जागृत होती है। इससे परिणामों में निर्मलता तो आती ही है साथ ही यह सातिशय पुण्यास्रव, पाप कर्मों के संवर व उदीरणा में भी हेतु है। उपवास करने से प्रचुर मात्रा में पाप कर्मों का पुण्य में संक्रमण व निर्जरा भी होती है। तीन लोक में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो उपवास/तप के द्वारा प्राप्त न की जा सके। तप ही मोक्ष का साक्षात् हेतु है। उपवास करने से मनोविकारों का शमन व क्षेपण भी होता है, मन की स्वाध्याय व ध्यान में एकाग्रता भी होती है। मन की एकाग्रता से लौकिक व लोकोत्तर ऋद्धि-सिद्धियाँ स्वतः ही प्राप्त हो जाती हैं।

विषय-कषाय, आरम्भ परिग्रहादि सर्व सावद्य का त्याग करते हुए चार प्रकार (खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय) के आहार का त्याग करना व उक्त समय (1 6 पहर तक) को ज्ञान, ध्यान, तप, व संयम साधना अथवा जिनाराधना या पंच परमेष्ठी भक्ति में संलग्न रहकर व्यतीत करना ही यथार्थ उपवास है। अथवा उपवास अर्थ है बाह्य पदार्थों से ममत्वादि भाव छोड़कर निजात्मा के समीप में वास करना। मात्र आहार छोड़कर विषय, कषाय आरम्भ परिग्रहादि में संलग्न रहना उपवास नहीं वह तो मात्र लंघन ही कहा जायेगा।

इस अधिकार में वैश्य पुत्र-नागकुमार, पूतिगंधा-भविष्यदत्त, अतिशय दुर्गंध कुमार-अशोक, नंदिमित्र-चन्द्रगुप्त, बंधुयशा-जामवती-देव, ललित घट व चाण्डालादि की कथायें हैं। जिन्होंने उपवास के फल से उत्तम देवावस्था अथवा मोक्ष को प्राप्त किया। यह उपवास नामक सत्कर्म या तप प्रत्येक श्रावक व श्रमण को अपनी शक्ति के अनुसार अवश्य ही करना चाहिए।

**6. दान का फल**–दान का अर्थ है देना या त्याग करना अथवा स्व-परोपकार के निमित्त अपने न्यायोपार्जित धन का सत् कार्यों में खर्च करना। अथवा सत्पात्रों के लिये नवधा भक्ति पूर्वक स्व-परकल्याणक के निमित्त से या धर्म प्रभावना के लिये अपने द्रव्य का त्याग करना दान कहलाता है। त्याग में पर कल्याण की एवं नवधा भक्ति की आवश्यकता नहीं किन्तु दान में स्व-पर कल्याण दोनों ही अपेक्षित हैं।

दान वही उत्तम कहा जा सकता है जो उत्तम रीति से उत्तम पात्रों को उत्तम दाता द्वारा दिया जाता है। दान में दी गई वस्तु की कीमत अधिक होने मात्र से दान में विशेषता नहीं आती, किन्तु दाता, पात्र, देय वस्तु, दान की विधि व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की विशेषता से दान में विशेषता आती है।

श्रावक गृहस्थावस्था में अहर्निश गृहकार्य करते हुए निरन्तर पापास्रव में ही संलग्न रहता है, उस पापार्जन रूपी रक्त के दाग को धोने में दान रूपी निर्मल जल ही समर्थ है। उत्तम पात्रों को परमोत्तम भावना से दिया गया एक कवल (ग्रास) का दान या उसकी अनुमोदना भी उत्तम भोग भूमि या स्वर्ग को प्रदान करने में समर्थ है। उस दान क्रिया की पूर्ति अन्य किसी पुण्य कार्य में संभव नहीं है।

जिनागम में मुख्य रूप से आहार दान, औषधि दान, शास्त्र दान, वसतिका या उपकरण दान ये चार भेद कहे हैं। यद्यपि चारों दानों का अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है फिर भी आहार दान को सबसे श्रेष्ठ माना गया है। कथंचित् आहार दान में चारों दानों का समावेश भी सम्भावित है, इसलिये आहार दान के समान अन्य कोई दान न तो है, न था, न हो सकेगा। आहार देने वाला चारों दान भी दे सकता है/ देता है।

*(आहार दान के सम्बन्ध में विशेष कथन सम्पादक द्वारा लिखित—*
*"आहार दान" एवं "दान के अचिन्त्य प्रभाव" नामक कृतियों से जानें।)*

आहार दान की महत्ता के सम्बन्ध में आ. भगवन् तिरुवल्लुवर स्वामी ने तिरुक्कुरुल (कुरलकाव्य) में कहा भी है—

*सद्यः प्रीतिकरं दानं, महाऽतंक विनाशकम्।*
*अन्न तोय समं दानं, न भूतो न भविष्यति॥ आ. तिरुवल्लुवर*

तत्काल में दाता व पात्र में प्रीति का कारण, क्षुधा रूपी महाऽतंक का विनाशक आहार व जल के दान के समान न कोई दान था, न है, न होगा।

इस दान को देने से आ. भगवन् कुन्द-कुन्द स्वामी जी के अनुसार तीर्थंकर पद, चक्रवर्ती पद, महामण्डलेश्वर पद, मंडलेश्वर पद, राजाधिराज के पद, इन्द्र, नरेन्द्र, धरणेन्द्र व अहमिन्द्र का पद भी प्राप्त होता है। दान भी संसार के सम्पूर्ण सुखों को व भोगोपभोग की उत्कृष्ट सर्व सामग्री को प्रदान करने वाला है तथा यह दान परम्परा से मोक्ष का भी कारण है। बिना दान के कभी भी उत्तम भोग, उत्तम ऐश्वर्य-वैभव, क्षायिक ज्ञान, निर्भयता, निरोगता व अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति नहीं होती। चार प्रकार का दान मानो चतुर्गति रूप संसार को नष्ट कर अनंत चतुष्टय को प्रकट करने में समर्थ कारण है।

इस अधिकार में श्रीषेण (शांतिनाथ भगवान्), राजा वज्रजंघ-ऋषभदेव, आहार दान के अनुमोदक बंदर, नेवला, व्याघ्र, शूकर, सेनापति, मंत्री, पुरोहित, व नगर सेठ (जो क्रमशः वीर, सुवीर, अच्युत, अनंत, भरत, वृषभसेन, बाहुबली व अनन्तवीर्य केवली हुए) की कथायें वर्णित हैं। आगे श्रीमती-राजा श्रेयांस, कबूतर-जयकुमार कबूतरी-सुलोचना, शक्ति सेन-कुबेर कान्त केवली, सुकेतु सेठ, आरम्भक ब्राह्मण- सगर चक्रवर्ती, दो मूर्ख ब्राह्मण, नल नील राजकुमार, दो

ब्राह्मण पुत्र–लवणांगद, मदनांकुश, राजा–धारण–राजादशरथ, भामण्डल, यक्षदेवी, विनय श्री, नंदादेवी, विनय देवी (जो कि श्रीकृष्ण की पटरानियाँ हुई) की कथायें, अकृतपुण्य–धन्यकुमार, अग्निला ब्राह्मणी–अम्बिका देवी एवं शुभंकर–प्रभंकर की कथायें लिपिबद्ध हैं।

पुण्यास्रव कथा कोश अत्यंत सरल भाषा में रचा गया प्रथमानुयोग का एक अनुपम ग्रंथ है। प्रारम्भिक स्वाध्यायार्थियों के लिये यह तो अमृतोपमा है ही साथ ही सामान्य स्वाध्यायार्थी, नित्य स्वाध्यायी एवं विद्वत्वर्ग के लिये भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। ये पुण्यास्रव कथा कोश की कथायें पुण्य की जनक तो हैं ही साथ ही पुण्य कार्यों को प्रेरणा भी देने वाली हैं। जो कोई भी भद्र परिणामी, मंद कषायी या प्रथम परिणाम वाला भव्य जीव धर्मानुराग व श्रद्धा पूर्वक इस ग्रंथ को आद्योपांत पढ़ता है, वह कालान्तर में सातिशय पुण्य फलों का भोक्ता एवं मुक्ति रमा का कंत होता है।

प्रारम्भिक स्वाध्यायार्थी ग्रंथ के वृहदाकार को देखकर पढ़ने का साहस खो बैठते हैं, अतः वे भयभीत न हो इसलिये इस ग्रंथ का मात्र हिन्दी भावानुवाद ही दो भागों में प्रकाशित किया जा रहा है।

इस ग्रंथ के प्रकाशन में सहयोगी ऐ. श्री विमुक्त सागर जी, क्षु. श्री विशंक सागर जी को सुसमाधिरस्तु आशीर्वाद, प्रकाशक–निर्ग्रंथ ग्रंथमाला एवं मुद्रक श्री अनिल कुमार चन्द्रा कापी हाउस, आगरा स्वकीय न्यायोपार्जित द्रव्य का सदुपयोग करने वाली सुधी श्रावकों को प्रूफ रीडिंग (संशोधन) में सहायक एवं प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष रूप से सहयोगी उन समस्त महानुभावों को भी वात्सल्य पूर्वक धर्मवृद्धि आशीर्वाद जो नाम की चाहना से दूर हैं किन्तु जिनवाणी की सेवा में निरन्तर संलग्न रहते हैं। उनके द्वारा की गई जिनवाणी की सेवा उन्हें क्षायिक ज्ञान की प्राप्ति में सहायक हो। अस्तु।

इस ग्रंथ के सम्पादन में मुझे छद्मस्थ के द्वारा जो भी त्रुटि रह गई हों तो निश्चय रत्नत्रयधारी, सकल संयमी विज्ञ श्रमण उन्हें संशोधित करते हुए मुझ अल्पज्ञ को क्षमा करें, तथा उन त्रुटियों के सम्बन्ध में संकेत देने का कष्ट करें।

सुधी पाठकगणों को भी हंसवत् गुण ग्राही दृष्टि बनाकर, आत्मकल्याण को लक्ष्य में रखते हुए विनयाचार पूर्वक ग्रंथ का आद्योपांत स्वाध्याय करना चाहिए।

*"अलमति विस्तरेण"*

*चैत्रवदी 13 बुधवार*
*वी.वि.सं. 2528*
*श्री दि0 जैन मन्दिर*
*गुड़गाँव, हरियाणा*

*जिनचरणानुचरः, संयमानुरक्तः,*
*कश्चिदल्पज्ञः श्रमणः*
*10/02/2002 गुड़गाँव (हरियाणा)*

# विषयानुक्रमणिका


| क्रमांक | कथा का नाम | पृष्ठांक |
|---|---|---|
| | **4. शील–फल** | |
| 1–2. | जयकुमार–सुलोचना कथा | 1 |
| 3. | कुबेरप्रिय सेठ कथा | 3 |
| 4. | जनकपुत्री सीता कथा | 8 |
| 5. | राज्ञी प्रभावती कथा | 17 |
| 6. | वज्रकर्ण कथा | 19 |
| 7. | वणिक्पुत्री कथा | 21 |
| 8. | अहिंसाणुव्रती चाण्डाल कथा | 23 |
| | **5. उपवास–फल** | |
| 9. | वैश्यनागदत्त नागकुमार कथा | 26 |
| 10. | भविष्यदत्त वैश्य कथा | 49 |
| 11–12. | धनमित्रपुत्री दुर्गन्धा व दुर्गन्धकुमार कथा | 60 |
| 13. | नन्दिमित्र कथा | 77 |
| 14. | जाम्बवती कथा | 91 |
| 15. | ललितघट श्रीवर्धन कुमारादि कथा | 92 |
| 16. | चण्ड–चाण्डाल कथा | 94 |
| | **6. दान–फल** | |
| 17. | श्रीषेण राजा कथा | 96 |
| 18. | वज्रजंघ राजा कथा | 99 |
| 19–20. | कबूतर–युगल व कुबेरकान्त सेठ कथा | 141 |
| 21. | सुकेतु सेठ कथा | 153 |
| 22. | आरम्भक द्विज कथा | 158 |
| 23. | विप्र इन्धक–पल्लव (नल–नील) कथा | 161 |
| 24. | विप्रपुत्र वसुदेव–सुदेव कथा | 162 |
| 25. | धारण राजा (दशरथ) कथा | 165 |
| 26. | भामण्डल कथा | 167 |
| 27. | ग्रामकूटपुत्री यक्षदेवी कथा | 168 |
| 28. | रुद्रदास पत्नी विनयश्री कथा | 170 |
| 29. | वैश्यपत्नी नन्दा (गौरी) कथा | 171 |
| 30. | राजपुत्री विनयश्री कथा | 172 |
| 31. | अकृतपुण्य (धन्यकुमार) कथा | 174 |
| 32. | अग्निला ब्राह्मणी कथा | 189 |

## उपाध्याय मुनि श्री निर्णय सागर द्वारा रचित एवं सम्पादित ग्रंथावली

सुकुमाल चरित्र
चारुदत्त चरित्र
गौतम स्वामी चरित्र
महीपाल चरित्र
जैन व्रत कथा संग्रह
धन्य कुमार चरित्र
सुलोचना चरित्र
सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
जिन दत्त चरित्र
कुरल-काव्य
पुराण सार संग्रह - 1
पुराण सार संग्रह - 2
चेलना चरित्र
रयणसार
आहार दान
जिन श्रमण भारती
धर्म संस्कार भाग-1
सदार्चन सुमन
तनाव से मुक्ति
धम्म रसायणं
अराधना कथाकोश-1,2,3
तत्वार्थ सार
योगामृत
सार समुच्चय

महापुराण-1
महापुराण-2
चित्रसेन पद्मावती चरित्र
श्री राम चरित्र
अमरसेण चरिउ
नागकुमार चरित्र
सर्वोदयी नैतिक धर्म
पुण्यास्रव कथाकोष भाग-1
पुण्यास्रव कथाकोष भाग-2
करकंड चरित्र

निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

---

यदि यह शास्त्र आपको अच्छा लगे तो आप सभी को पढायें। उत्सव, व्रत, त्यौहार, जन्म दिवस, पुण्य स्मृति के उपलक्ष्य में बाँटने एवं छापने योग्य समझें तो लागत मूल्य पर छपवाइये। ट्रस्ट -न्यास- फाउंडेशन आदि द्वारा छपवाना चाहते हो तो उनके नाम, चित्र, परिचय सहित छपवा सकते हैं।

*प्रकाशक*

॥ ॐ नमो वीतरागाय ॥

श्री-रामचन्द्र-मुमुक्षु-विरचितं

# पुण्यास्रव कथाकोशम्

## शीलफलम्

### 1-2. जयकुमार-सुलोचना कथा

*मेघेश्वरो नाम नराधिनाथो लेभे सुपूजामिह नाकजेभ्यः।*
*शीलप्रभावाज्जिनभक्तियुक्तः शीलं ततोऽहं खलु पालयामि॥1॥*
*विख्यातरूपा हि सुलोचनाख्या कान्ता जयाख्यस्य नृपस्य मुख्या।*
*देवेशपूजां लभते स्म शीलात् शीलं ततोऽहं खलु पालयामि॥2॥*

जिन भगवान् का भक्त मेघेश्वर (जयकुमार) नामक राजा यहाँ शील के प्रभाव से देवों के द्वारा की गई पूजा को प्राप्त हुआ है। इसीलिए मैं उस शील का परिपालन करता हूँ।।1।।

इस जयकुमार राजा की सुलोचना नाम की सुप्रसिद्ध रूपवती मुख्य पत्नी शील के प्रभाव से देवेन्द्रकृत पूजा को प्राप्त हुई है। इसलिए मैं उस शील का परिपालन करता हूँ।।2।।

**1-2. इन दोनों पद्यों की कथा-** एक ही है जो इस प्रकार है- किसी समय सौधर्म इन्द्र अपनी सभा में व्रत व शील के स्वरूप को निरूपण कर रहा था। उस समय रतिप्रभ नामक देव ने उससे पूछा कि हे देव! जम्बूद्वीप के भीतर स्थित भरत क्षेत्र में इस प्रकार निर्मल शील का परिपालन करने वाला वैसा कोई पुरुष है या नहीं? उत्तर में इन्द्र ने कहा कि हाँ, कुरुजांगल देश के भीतर स्थित हस्तिनागपुर के अधिपति मेघेश्वर ने चूँकि पूर्वभव में विद्याओं को सिद्ध किया था इसलिए उसे एक विद्याधरयुगल को देखकर जातिस्मरण हो जाने से वे सब विद्याएँ प्राप्त हो गई हैं। साथ ही उसकी पत्नी सुलोचना को भी वे विद्याएँ प्राप्त हो गई हैं। इस समय उसने सुलोचना के साथ कैलाश पर्वत पर जाकर ऋषभ जिनेन्द्र की वंदना की। तत्पश्चात् उसने समवशरण से निकलकर एक स्थान में सुलोचना के साथ क्रीड़ा की। इस समय सुलोचना को विमान के भीतर नींद आ जाने से जयकुमार वन में क्रीड़ा करता हुआ एक रमणीय शिला को देखकर उसके ऊपर ध्यान में से स्थित है। उधर सुलोचना उठी तो वह भी जयकुमार को न देखकर कायोत्सर्ग से स्थित हो गई है। इन्द्र के द्वारा की गई इस प्रशंसा को सुनकर उस रतिप्रभ देव ने आकर उनके शील की परीक्षा करने के लिए अपनी देवियों को मेघेश्वर के निकट भेजते हुए उनसे कहा कि तुम सब मेघेश्वर के समीप में जाकर उसके शील को नष्ट कर दो। तथा वह स्वयं सुलोचना के पास गया। उन देवियों ने स्त्री के योग्य अनेक प्रकार की चेष्टाओं द्वारा मेघेश्वर के चित्त को विचलित करने का भरसक प्रयत्न किया, फिर भी वह पृथ्वी रूप भवन में स्थित मणिमय दीपक के समान निश्चल ही रहा। उसके चित्त की स्थिरता को देखकर उन देवियों को बहुत आश्चर्य हुआ। इधर रतिप्रभ देव स्वयं भी पुरुष के योग्य अनेक प्रकार की चेष्टाओं के द्वारा सुलोचना के चित्त को चलायमान नहीं कर सका। तब वह देव उन दोनों को एक साथ लेकर हस्तिनागपुर ले गया। वहाँ उसने उन दोनों का गंगा जल से अभिषेक करके स्वर्गीय वस्त्राभरणों

से पूजा की। तत्पश्चात् वह सम्यग्दृष्टि देव स्वर्गलोक को वापिस चला गया। उधर देवों से पूजित वह मेघेश्वर, सुलोचना के साथ सुखपूर्वक स्थित हुआ। इस प्रकार बहुत परिग्रह के धारक होकर, अतिशय अनुरागी भी वे दोनों जब शील के प्रभाव से देवों से पूजित हुए हैं तब निर्ग्रन्थ व वीतराग भव्य जीव क्या न प्राप्त करेगा? वह तो मोक्ष के भी सुख को प्राप्त कर सकता है।।2।।

## 3. कुबेरप्रिय सेठ-कथा

*श्रेष्ठी कुबेरप्रियनामधेयः पूजां मनोज्ञां त्रिदशैः समाप।*
*रूपाधिकः कर्मरिपुः स शीलाच्छीलं ततोऽहं खलु पालयामि॥3॥*

अतिशय सुन्दर और कर्मो का शत्रु वह कुबेरप्रिय नाम का सेठ शील के प्रभाव से देवों के द्वारा की गई मनोज्ञ पूजा को प्राप्त हुआ है। इसीलिए मैं उस शील का परिपालन करता हूँ।।3।।

**3. इसकी कथा-** इस प्रकार है- जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में पुष्कलावती नाम का देश है। उसमें स्थित पुण्डरीकिणी नगरी में गुणपाल नाम का राजा राज्य करता था। रानी का नाम कुबेरश्री था। इनके वसुपाल और श्रीपाल नाम के दो पुत्र थे। रानी के एक कुबेर प्रिय नाम का भाई था तो राजसेठ के पद पर प्रतिष्ठित था। वह कामदेव के समान सुन्दर व चरमशरीरी था। कोई सत्यवती नाम की रमणी राजा की वल्लभा थी। सत्यवती के एक चपलगति नाम का भाई था जो महामन्त्री के पद पर प्रतिष्ठित था। एक दिन राजा गुणपाल के लिए अपूर्व नाटक को देखकर बहुत हर्ष हुआ। तब उसने अपनी दासी उत्पलनेत्रा नाम की वेश्या से पूछा कि इस प्रकार के कौतुक को उत्पन्न करने वाला नाटक मेरे राज्य में ही सम्पन्न हुआ है न? इसके उत्तर में उत्पलनेत्रा ने कहा कि यह कुछ भी आश्चर्य की बात नहीं हैं किन्तु मैंने जो आश्चर्यजनक दृश्य देखा है, उसे कहती हूँ, सुनिए। हे राजन्! एक दिन आपके सभाभवन में स्थित कुबेर प्रिय को देखकर मेरा मन काम-बाण से अतिशय पीड़ित हो गया था, इसलिए मैंने उसके पास अपनी दूती को

भेजा। उसने जाकर मेरा संदेशा सेठ से कहा। उसे सुनकर सेठ ने मेरी प्रार्थना अस्वीकार करते हुए कहा कि 'मैंने एक पत्नीव्रत को ग्रहण किया है।' तत्पश्चात् वह चतुर्दशी के दिन जब श्मशान में प्रतिमायोग से स्थित था, उस समय मैंने उसे अपने यहाँ उठवा लिया। फिर मैंने उसे शयनागार में ले जाकर उसके चित्त को विचलित करने के लिए, स्त्री सुलभ अनेक प्रकार की कामोत्पादक चेष्टाएँ कीं। फिर भी मैं उसके चित्त को विचलित नहीं कर सकी। तब मैंने उसे वहीं पर पहुँचा कर ब्रह्मचर्यव्रत को ग्रहण कर लिया। हे देव! अनेकों के चित्त को आकर्षित करने वाली मैं भी उसके चित्त को चलित नहीं कर सकी, यही एक महान् आश्चर्य की बात है। तब राजा ने कहा कि उसकी वंशपरम्परा में उत्पन्न होने वाले महापुरुष इसी प्रकार दृढ़ होते हैं।

एक दिन 'उत्पलनेत्रा ने ब्रह्मचर्य को ग्रहण कर लिया है' इस बात को न जानकर उसके यहाँ कोतवाल का पुत्र आया। तब वह तेल की मालिश कर रही थी। वह उसके साथ वार्तालाप करते हुए वहाँ ठहर गया। इतने में वहाँ मन्त्री के पुत्र को आता हुआ देखकर उसके भय से उत्पलनेत्रा ने कोतवाल के पुत्र को पेटी के भीतर बैठा दिया। उधर मन्त्री का पुत्र उसके साथ बातचीत कर रहा था कि इतने में वहाँ चपलगति भी आ पहुँचा। उसे आते हुए देखकर, उत्पलनेत्रा ने उस मन्त्री के पुत्र को भी उसी पेटी के भीतर बन्द कर दिया। चपलगति ने आकर कहा कि हे उत्पलनेत्रे! तू श्रृंगार को करके बैठ, मैं अपरान्ह में धन लेकर आता हूँ। इस पर उत्पलनेत्रा ने उससे कहा कि हे चपलगते! तुमने सत्यवती के विवाह के अवसर पर मेरे हार को ले जा करके यह कहा था कि मैं इसे विवाह हो जाने पर वापिस दे दूँगा। इस प्रकार जो तुम उस हार को मांगकर ले गये थे उसे अब मुझे वापिस दे दो। यह सुनकर चपलगति ने कहा कि 'अभी उसे वापिस दे जाता हूँ' तब उत्पलनेत्रा बोली कि हे पेटी के भीतर स्थित दोनों देवताओं! इस विषय में तुम दोनों साक्षी हो। दूसरे दिन उत्पलनेत्रा ने राजसभा में उपस्थित होकर जब चपलगति से उस हार को मांगा तब उसने कहा कि मुझे उसका पता भी नहीं है, मैं उसे कहाँ से दूँ? इस पर उत्पलनेत्रा बोली कि यदि तुम नही जानते हो तो फिर तुमने कल यह किसलिए कहा था कि मैं उसे

वापिस दे दूँगा? यह सुनकर चपलगति बोला कि मैंने तो ऐसा कभी नहीं कहा। इस पर राजा बोला कि 'हे उत्पलनेत्रे! इस विषय में क्या कोई तुम्हारे साक्षी भी हैं?' उसने उत्तर दिया कि 'हाँ, इसके लिए साक्षी भी हैं।' तो फिर उन्हें संदेश देकर बुलवाओं, इस प्रकार राजा के कहने पर उत्पलनेत्रा बोली कि 'अच्छा उन्हें बुलवाती हूँ।' यह कहते हुए उसने उस पेटी को वहाँ मंगा लिया। तत्पश्चात् वह बोली कि 'हे पेटी के भीतर स्थित दोनों देवताओं! कल चपलगति ने जो कुछ भी कहा वो यथार्थस्वरूप से कह दो।' तब उन दोनों ने यथार्थ बात कह दी। इस पर राजा को बहुत कौतूहल हुआ। तब राजा ने उस पेटी को खुलवा दिया। उसके भीतर की परिस्थिति को ज्ञात करके सब जनों ने उनका उपहास किया। इससे लज्जित होकर उन दोनों ने दीक्षा ले ली। फिर राजा ने सत्यवती के पास एक पुरूष को भेजकर उससे कहलाया कि तुम्हारे विवाह के समय चपलगति उत्पलनेत्रा के जिस हार को लाया था उसे दे दो। तब उसने उस हार को उस पुरूष के लिए दे दिया और उसने लाकर उसे राजा के हाथ में दे दिया। राजा ने उसे उस वेश्या के लिए समर्पित कर दिया। तत्पश्चात् राजा ने क्रोधित होकर चपलगति की जिह्वा के छेदने की आज्ञा दे दी। परन्तु कुबेरप्रिय ने राजा को ऐसा करने से रोक दिया। कुबेरप्रिय के प्रभुत्व को देखकर उस चपलगति को उसकी प्रभुता पर ईर्ष्यापूर्वक क्रोध उत्पन्न हुआ। साथ ही सत्यवती के उस हार को वापिस दे देने के कारण चपलगति को उसके ऊपर भी क्रोध हुआ। इस प्रकार वह इन दोनों के अनिष्ट का विचार करने लगा। एक दिन वह विनोद से निर्मल जल वाली नदी पर गया। वहाँ उसे नदी के किनारे पर स्थित एक लतागृह में एक दिव्य मुँदरी दिखायी दी। तब उसने उसे उठा लिया। उसी समय चिन्त गति नाम का विद्याधर वहाँ आया और चिन्ताग्रस्त होकर कुछ इधर-उध ार खोजने लगा। तब उसे इस प्रकार व्याकुल देखकर चपलगति ने पूछा कि हे भाई! तुम क्या देख रहे हो? यह सुनकर विद्याधर बोला कि मेरी एक मुँदरी खो गई है, उसे खोज रहा हूँ। तब चपलगति ने उसके लिए वह मुँदरी दे दी। इससे सन्तुष्ट होकर उस विद्याधर ने चपलगति से पूछा कि तुम कौन हो? उसने उत्तर दिया कि मैं कुबेर प्रिय देवपूजक (पुजारी)

हूँ। यह सुनकर विद्याधर बोला कि वह तो मेरा मित्र है। यह मुद्रिका अभिलषित रूप को देती है। इस मुद्रिका को तुम कुबेरमित्र के हाथ में देना, पीछे मैं उसके पास से ले लूँगा; यह कहकर विद्याधर ने चपलगति के लिए वह मुद्रिका दे दी। इस प्रकार से वह चपलगति उक्त मुद्रिका को लेकर अपने घर गया। वहाँ उसने अपने भाई पृथुमति को समझाया कि चतुर्दशी के दिन अपरान्ह में जब मैं राजा के पास बैठा होऊँ तब तू इस मुद्रिका को अपनी अँगुली में पहिनकर सत्यवती के घर जाना। वहाँ पहुँचने पर जब सत्यवती तुम्हें राजभवन के सम्मुख स्थित भद्रासन पर बैठा दे तब तुम कुबेरप्रिय के रूप का मन में चिन्तन करके अँगुलि में स्थित इस मुद्रिका को घुमाना। इससे तुम्हें कुबेरप्रिय का रूप प्राप्त हो जावेगा। फिर तुम सत्यवती के समीप में कामविकार की चेष्टा करने में उद्यत हो जाना। तदनुसार उस समय पृथुमति ने वह सब कार्य चेष्टा की भी। तब चपलगति ने उसे राजा को दिखलाया और कहा कि हे देव! कुबेरप्रिय इतने समय में सत्यवती के साथ में इस प्रकार की क्रीड़ा किया करता है, यह जो मैंने सुना था वह इस समय उसे सत्यवती के साथ बैठा हुआ देखकर सत्य प्रमाणित हो गया है। यह सुनकर राजा ने कहा कि आज उसका उपवास है, इसलिए उसका ऐसा करना भला कैसे सम्भव हो सकता है? इस पर चपलगति ने कहा कि प्रत्यक्ष पदार्थ में भी क्या सन्देह के लिए स्थान रहता है? अतएव इन दोनों को दण्ड देना चाहिए। तब राजा ने कहा कि तो फिर तुम ही उनको दण्डित करो। इसके लिए राजा को धन्यवाद देकर चपलगति ने विचार किया पहले कुबेरप्रिय के शिर को काटकर तत्पश्चात् सत्यवती की नाक काटूँगा। इस प्रकार सत्यवती को बचाकर उस महान् अन्यायी कुबेरप्रिय को कल प्रातःकाल में मार डालूँगा। इस प्रकार सोचता हुआ वह मायावी कुबेरप्रिय के रूप को धारण करने वाले अपने भाई को साथ लेकर घर पहुँचा। फिर उसने भाई को वहीं छोड़कर श्मशान से उस कुबेरप्रिय को लाकर जब वहाँ स्थापित किया तब नगर के भीतर बहुत क्षोभ हुआ। इस उपसर्ग के समय सेठ ने यह प्रतिज्ञा की कि यदि इस उपसर्ग से बच गया तो पाणिपात्र से भोजन करूँगा- मुनि हो जाऊँगा। सत्यवती भी ऐसी ही प्रतिज्ञा के साथ अपने देवपूजागृह (चैत्यालय) में कार्यात्सर्ग से

स्थित हो गई। उधर राजा दुःखित होकर शय्या के ऊपर पड़ गया। प्रातःकाल के होने पर वह सेठ को बालों से खींचकर श्मशान में ले जाया गया। उसको वहाँ बैठाकर चपलगति ने उसका शिर काटने के लिए चण्ड नाम के चाण्डाल को बुलाया और उसके हाथ में तलवार को देकर कहा कि इसके शिर को काट डालों उस समय उसके शील के प्रभाव से देवों एवं असुरों के आसन कम्पायमान हुए। इससे वे कुबेरमित्र के उपसर्ग को ज्ञात करके वहाँ आ पहुँचे। उस समय सब ही नगरवासी जन हा-हाकर करते हुए यह विचार कर रहे थे कि हे कुबेरप्रिय! तुम्हारे ऊपर यह घोर उपसर्ग क्यों हुआ? इस प्रकार से वे सब वहाँ अतिशय दुःखी होकर यह दृश्य देख रहे थे। इसी समय 'अपने इष्ट देवता का स्मरण करो' यह कहते हुए उस चाण्डाल ने कुबेरप्रिय के शिर को काटने के लिए तलवार का प्रहार किया। परन्तु वह तलवार सेठ के गले का हार बन गई। यह देखकर वह चाण्डाल 'जय जय' कहता हुआ वहाँ से हट गया। तब उसी मन्त्री ने बढ़ी हुई ईर्ष्या के कारण अन्य सेवकों के साथ उसके ऊपर अनेक आयुधों का प्रहार किया। परन्तु वे सब ही फल-पुष्पादि के रूप में परिणत होते गये। उस समय देवों के द्वारा किये गये पंचाश्चर्य से यथार्थ स्वरूप को जानकर राजा वहाँ जा पहुँचा। उसने चपलगति को गर्दभारोहण आदि कराकर देश से निकाल दिया। साथ ही उसने इसके लिए सेठ से क्षमा-प्रार्थना की। सेठ ने उसे क्षमा करते हुए कहा कि 'अब मैं पाणिपात्र में भोजन करूँगा'-'जिन-दीक्षा ग्रहण करूँगा।' इस पर राजा बोला कि मैं भी आपके साथ दीक्षा धारण करूँगा। तब वे दोनों वसुपाल के लिए राज्य, श्रीपाल के लिए युवराज पद और सेठपुत्र कुबेरकान्त के लिए राजसेठ का पद देकर बहुत जनों के साथ दीक्षित हो गये। इनके साथ सत्यवती आदि अन्तःपुर की स्त्रियों ने भी दीक्षा ले ली। धर्म के माहात्म्य को देखकर उस चाण्डाल ने भी यह नियम ले लिया कि मैं पर्व के दिन में किसी प्रकार की हिंसा न करके, उपवास किया करूँगा। यह वही चाण्डाल है जिसने कि लाख के घर में स्थित होकर विद्युद्वेग चोर के लिए धर्मोपदेश दिया था। (देखो पृष्ट 122 कथा 2-3)। कुबेरप्रिय और श्रीपाल इन दोनों मुनियों को सुरगिरि पर्वत के ऊपर केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् उन्होंने विहार

करके धर्मोपदेश दिया। अन्त में उसी पर्वत के ऊपर मुक्ति को प्राप्त हुए। इस प्रकार बहुत परिग्रह से सहित भी वह सेठ जब शील के प्रभाव से देवों के द्वारा पूजित हुआ तब अन्य निर्ग्रन्थ भव्य क्या न प्राप्त करेगा? वह तो मोक्ष को भी प्राप्त कर सकता है।।3।।

## 4. जनकपुत्री सीता-कथा

*श्रीजानकी रामनृपस्य देवी दग्धा न संधुक्षितवह्निना च।*
*देवेशपूज्या भवति स्म शीलाच्छीलं ततोऽहं खलु पालयामि।।4।।*

राजा रामचन्द्र की पत्नी व जनक की पुत्री सीता सती शील के प्रभाव से भड़की हुई अग्नि में न जलकर इन्द्रों के द्वारा पूजित हुई। इसीलिये मैं उस शील का परिपालन करता हूँ।।4।।

**4. इसकी कथा-** इस प्रकार है- इसी भरत क्षेत्र के भीतर अयोध्या पुरी में राजा राम और लक्ष्मण राज्य करते थे। इनमें रामचन्द्र तो बलभद्र और लक्ष्मण नारायण थे। रामचन्द्र के आठ हजार स्त्रियाँ थीं उनमें सीता, प्रभावती, रतिप्रभा और श्रीदामा ये चार पट्टरानियाँ थीं। सीता चतुर्थ स्नान के पश्चात् पति के साथ सो रही थी। उस समय उसने रात्रि के अन्तिम पहर में स्वप्न में अपने मुख में प्रवेश करते हुए दो सिंहों को तथा आकाश-मार्ग से गमन करते हुए विमान से अपने अधःपतन को देखा। तब उसने इन स्वप्नों का वृत्तान्त रामचन्द्र से कहा। उन्हें सुनकर रामचन्द्र ने कहा कि तुम्हारे उत्तम दो पुत्र होंगे। साथ ही कुछ कष्ट भी होगा। तत्पश्चात् सीता कल्याण के निमित्त जिनपूजा में तत्पर हो गई। गर्भ की अवस्था में उसके तीर्थ-स्थानों की वन्दना का दोहल हुआ। तब रामचन्द्र ने उसके इन मनोरथों को आकाशमार्ग से जाकर पूर्ण किया। तत्पश्चात् अयोध्या में कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं कि जिनमें किन्हीं पतियों ने दुराचार के कारण अपनी पत्नियों की बार-बार ताड़ना की। परन्तु उन दुश्चरित्र स्त्रियों ने उसके उत्तर में अपने पतियों को यही कहा कि जब राजा रामचन्द्र वन में गये थे तब रावण सीता को हरकर ले गया था। वह रावण के यहाँ एक वर्ष रही। फिर भी रामचन्द्र रावण

को मारकर उसे वापिस ले आये और अपने घर में रक्खा। तब उत्तरोत्तर ऐसी ही अनेक घटनाओं के घटने पर कुछ दिनों में प्रजा के प्रमुखों ने इसका विचार किया। तत्पश्चात् वे मिलकर रामचन्द्र के द्वार पर उपस्थित हुए। द्वारपालों के निवेदन करने पर रामचन्द्र ने उन सबको भीतर बुलाया। भीतर जाकर उन्होंने बलभद्र और नारायण को देखा। तब रामचन्द्र ने उनसे आने का कारण पूछा। परन्तु उनका कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। इस प्रकार वे मौन का आलम्बन करके स्थित रहे। तब रामचन्द्र के द्वारा फिर से पूछे जाने पर विजय नामक पुरोहित ने प्रार्थना की कि हे देव! जिस प्रकार समुद्र अपनी वज्रमय वेदिं का उल्लंघन नहीं करता है उसी प्रकार राजा भी धर्ममार्ग का उल्लंघन नहीं करता है। परन्तु आपने उसका उल्लंघन किया है। यही कारण है जो हे देव! 'जैसा राजा वैसी प्रजा' इस नीति का अनुसरण करने वाली प्रजा भी उसी प्रकार का आचरण कर रही है। इस कारण आपको सीता का अपने भवन में रखना उचित नहीं है। विजय के इस दोषारोपण को सुनकर लक्ष्मण को बहुत क्रोध आया, इसीलिये वह उसको मारने के लिये उठ खड़ा हुआ। परन्तु रामचन्द्र ने उसे ऐसा करने से रोक दिया।

तब रामचन्द्र ने सब कुछ सोच करके सीता को त्याग देने का ही निश्चय किया। इसके लिये लक्ष्मण के रोकने पर भी राम ने कृतान्तवक्त्र को बुलाकर उसे यह आज्ञा दी कि तुम निर्वाण क्षेत्रों की वन्दना कराने के मिष से सीता को बुलाओं और फिर उसे ले जाकर वन में छोड़ आओ। तदनुसार कृतान्तवक्त्र उसे रथ में बैठाकर अनेक प्रकार के वृक्षों एवं वनचर (वन में संचार करने वाले भील आदि) जीवों से व्याप्त वन में ले गया। वहाँ जब उसने सीता को रथ से उतारा तब वह पूछने लगी कि वह निर्वाण क्षेत्र यहाँ कहाँ है? यह सुनकर कृतान्तवक्त्र रो पड़ा। तब सीता ने उसके रोने का कारण पूछा। इसके उत्तर में उसने वह सब घटना सुना दी। उसे सुनकर सीता मूर्च्छित होकर गिर गई। फिर वह सचेत होने पर बोली कि हे वत्स! रोओ मत। तुम जाकर मेरी ओर से राम से यह प्रार्थना करना कि आपने जिस प्रकार लोकनिन्दा के भय से निरपराध मुझे अबला का परित्याग किया है उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जनों के भय से जैनधर्म का परित्याग न कर देना।

अन्त में कृतान्तवक्त्र अपनी आत्मनिन्दा करता हुआ अयोध्या को वापिस गया। वहाँ जाकर उसने जब राम से सीता के वे प्रार्थना वाक्य कहे तब वे उन्हें सुनकर मूर्च्छित हो गये। लक्ष्मण को बहुत दुःख हुआ। इस घटना से सब ही अतिशय दुःखी हुए। तत्पश्चात् कृतान्तवक्त्र के द्वारा प्रतिबोधित होकर रामचन्द्र ने सीता के महत्तर (अन्तःपुर का रक्षक) भद्रकलश को बुलाया, और से यह आज्ञा दी कि जिस प्रकार सीता धर्म किया करती थी उसी प्रकार से तुम धर्म करते रहो।

उधर सीता बारह भावनाओं का विचार करती हुई उस भयानक वन में स्थित थी। इस बीच में वहाँ कोई मण्डलेश्वर राजा हाथी को पकड़ने के विचार से आया। उसके सेवकों ने वहाँ विलाप करती हुई सीता को देखकर उसका समाचार राजा से कहा। तब राजा ने आश्चर्यपूर्वक सीता को देखकर पूछा कि तुम कौन हो? उत्तर में सीता ने जब अपने वृत्तान्त को सुनाया तब यथार्थ स्थिति को जान कर वह बोला कि जैन धर्म के नाते से तुम मेरी धर्म बहिन हो। तब सीता ने भी उससे पूछा कि तुम कौन हो? इसके उत्तर में वह बोला कि मैं पुण्डरीकिणी पुर का राजा सूर्यवंशी वज्रजंघ हूँ। तुम कृपा करके मेरे नगर में चलो। इस प्रकार वह हाथी को न पकड़ते हुए सीता को आगे करके अपने नगर को वापिस गया। वज्रजंघ के एक प्रभावती नाम की सर्वगुण सम्पन्न विधवा बहिन थी। वह निरन्तर धर्म कार्य में उद्यत रहती थी। वज्रजंघ ने सीता के वृत्तान्त को कहकर उसे अपनी उस बहिन के लिये समर्पित कर दिया। वहाँ रहते हुए सीता ने नौ महीनों के अन्त में दो पुत्रों को जन्म दिया। इसके उपलक्ष्य में वज्रजंघ राजा ने महान् उत्सव किया। उसने उन दोनों के लवांकुश और मदनांकुश नाम रक्खे। बाल्यावस्था में वे दोनों आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करते हुए सबको प्रसन्न करते थे। धीरे-धीरे जब उनका शैशव काल बीत गया तब वहाँ एक समय अनेक देशों में परिभ्रमण करता हुआ सिद्धार्थ क्षुल्लक आया। इन दोनों को देखते ही उसके हृदय में स्नेह उत्पन्न हुआ। तब उसने इन दोनों का शास्त्र विद्या में निपुण किया। उन दोनों की युवावस्था को देखकर वज्रजंघ ने लव के लिये अपनी पत्नी लक्ष्मीमती से उत्पन्न हुई शशिचूड़ा आदि बत्तीस कुमारिकाओं को दे दिया। तत्पश्चात् उसने अंकुश के लिये

पृथ्वी पुर के राजा पृथु और पृथ्वीश्री की पुत्री कनकमाला को मांगा। उसके उत्तर में पृथु राजा ने कहा कि 'वह दुष्ट वज्रजंघ स्वयं तो नष्ट हुआ ही है,' साथ ही वह दूसरों को भी नष्ट करना चाहता है। जिसके कुल और स्वभाव का परिज्ञान नहीं है उसके लिये क्या पुत्री दी जा सकती है? इस उद्धत्ता पूर्ण उत्तर को सुनकर वज्रजंघ को क्रोध उत्पन्न हुआ। तब उसने पृथु का बलपूर्वक निग्रह करने के लिये उसके ऊपर सेना के साथ चढ़ाई कर दी। इस युद्ध में वज्रजंघ ने पृथु के पक्ष के सुभट व्याघ्ररथ के साथ युद्ध करके उसे बाँध लिया। इस बात को सुनकर पृथु ने अपने पक्ष के सभी योद्धाओं को एकत्रित किया। इस प्रकार वह अतिशय आश्चर्यजनक सामग्री के साथ आकर स्वयं रणभूमि में स्थित हुआ। तब इस वृत्त को जानकर वज्रजंघ ने भी अपने पुत्रों को लाने के लिये लेख भेज दिया। उक्त लेख से वस्तुस्थिति को जान करके सीता के रोकने पर भी लव और अंकुश पुण्डरीक पुर से निकलकर पाँच दिन में वज्रजंघ से जाकर मिले। वज्रजंघ ने जब उन्हें देखकर यह पूछा कि तुम दोनों यहाँ क्यों आये हो? तो इसके उत्तर में उन्होंने यही कहा कि हम आपको देखने के लिये आये हैं? उस समय पृथु राजा समस्त सैन्य के साथ व्यूह और प्रति-व्यूह के क्रम से रणभूमि में स्थित था। लव और अंकुश दोनों वज्रजंघ की आज्ञा पाकर युद्ध में संलग्न हो गये। उन दोनों ने पृथु की बहुत सी सेनाओं को नष्ट कर दिया। तब पृथु स्वयं ही लव के सामने आया। फिर उन दोनों में आश्चर्यजनक युद्ध हुआ। अन्त में जब पृथु रथ से रहित होकर भागने के लिये उद्यत हुआ तब लव ने उससे कहा कि जिसके कुल का पता नहीं है उसके लिये कन्या देना तो उचित नहीं है, परन्तु क्या उसके लिये अपना स्वाभिमानादि सब कुछ दे देना उचित है? इस प्रकार लव के द्वारा तिरस्कृत होकर वह उस के पाँवों में गिर गया और सेवक बन गया। इस प्रकार उन दोनों ने अपने पौरुष के द्वारा संसार को आश्चर्यचकित कर दिया। अन्ततः अंकुश का विवाह शुभ दिन कनकमाला के साथ हो गया। तत्पश्चात् कुछ दिनों में वे दोनों वज्रजंघ को पुण्डरीकिणी नगरी में भेजकर अपने सामर्थ्य से अनेक देशों को जीतने के लिये गये और उन्हें जीत करके महामण्डली की लक्ष्मी से विभूषित होते हुए पुण्डरीकिणी पुरी में वापिस आकर स्थित हुए।

कुछ दिनों में उनके देखने के लिये वहाँ नारदजी आ पहुँचे। उस समय विचित्र आभूषणों के साथ निर्मल वेष को धारण करने वाले, अपनी अत्याधिक सुन्दरता से इन्द्र के स्वरूप को जीतने वाले एवं अनन्त वीर्य के धारक वे दोनों विनीत कुमार सीता के समीप में स्थित थे। उन दोनों को आशीर्वाद देते हुए नारद बोले कि 'तुम दोनों राम और लक्ष्मण के समान बहुत प्रकार के अभ्युदय एवं सुख के साथ स्थित रहो।' इस आशीर्वाद को सुनकर दोनों कुमारों ने पूछा कि राम और लक्ष्मण कौन हैं? तब नारद ने उनसे राम और लक्ष्मण से सम्बन्धित सीता के हरण से लेकर उसके परित्याग तक की कथा कह दी। उसको सुनते ही उन्हें अतिशय क्रोध उत्पन्न हुआ। उन्होंने नारद से पूछा कि यहाँ से अयोध्या कितनी दूर है? यह सुनकर कलह में अनुराग रखने वाले नारद ने कहा कि वह यहाँ से एक सौ पचास योजन दूर है। यह सुनते ही वे दोनों प्रस्थानकालीन भेरी के शब्द से दिशाओं को पूर्ण करते हुए वहाँ से अयोध्या की ओर चतुरंग सेना के साथ निकल पड़े। तत्पश्चात् कुछ ही दिनों में उन्होंने अयोध्या पहुँचकर नगर के बाहर पड़ाव डाल दिया। फिर उन्होंने बलभद्र (राम) और नारायण (लक्ष्मण) के पास अपने दूत को भेजा। दूत गया और उन दोनों को नमस्कार करके बोला कि आप दोनों की प्रसिद्धि को सुनकर लव और अंकुश ये दो राजपुत्र युद्ध के लिये यहाँ आये हैं। यदि आप में सामर्थ्य हो तो उनसे युद्ध कीजिये। यह सुनकर राम और लक्ष्मण को बहुत आश्चर्य हुआ। उत्तर में इन दोनों ने उस दूत से कह दिया कि ठीक है, हम उन दोनों से युद्ध करेंगे। इधर प्रभामण्डल,सीता, सिद्धार्थ और नारद लव व अंकुश की पत्नियों के साथ आकाश में स्थित होकर उस युद्ध को देख रहे थे प्रभामण्डल ने समस्त विद्याधरों से लव और अंकुश के वृत्तान्त को कह दिया था। इसीलिये विद्याधरों की सेना मध्यस्थ स्वरूप से स्थित थी। इस समय राम और लक्ष्मण समस्त आयुधों से सुसज्जित होते हुए रथ पर चढ़कर निकले और अपनी सेना के आगे आकर स्थित हुए। इसी प्रकार से लव और अंकुश भी अपनी सेना के सम्मुख स्थित हुए। तब लव तो राम के साथ और अंकुश लक्ष्मण के साथ युद्ध करने में निरत हो गया। फिर उनमें परस्पर तीनों लोकों को आश्चर्यान्वित करने वाला युद्ध हुआ। लव

के सामर्थ्य को देखकर रामचन्द्र अतिशय क्रोध के साथ उससे युद्ध करने लगे। उस समय लव ने रामचन्द्र के रथ को नष्ट कर दिया। तब रामचन्द्र दूसरे रथ पर स्थित हुए। परन्तु लव ने उसे भी नष्ट कर डाला। इस प्रकार से तीसरे आदि रथ के भी नष्ट होने पर रामचन्द्र सातवें रथ पर चढ़कर युद्ध करने में तत्पर हुए। इधर अंकुश और लक्ष्मण के बीच भी भयानक युद्ध हुआ। अंकुश के द्वारा छोड़े गये बाण को खण्डित न कर सकने के कारण लक्ष्मण उसके आघात से मूर्च्छित हो गया। तब विराधित ने रथ को अयोध्या की ओर लौटा दिया। तत्पश्चात् जब लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर हुई तब वह रथ को फिर से रण भूमि की ओर लौटाकर युद्ध करने में लीन हो गया। अब जब लक्ष्मण को यह ज्ञात हुआ कि यह सामान्य शस्त्रों से नहीं जीता जा सकता है तब उसने चक्ररत्न को ग्रहण किया। इससे सीता आदि को बहुत भय उत्पन्न हुआ। इस प्रकार लक्ष्मण ने उस चक्र को घुमाकर अंकुश के ऊपर छोड़ दिया। किन्तु वह निष्प्रभ होता हुआ तीन प्रदक्षिणा देकर उसके दाहिने हाथ में स्थित हो गया। फिर उसे अंकुश ने लेकर लक्ष्मण के ऊपर छोड़ दिया। तब वह उसी प्रकार से लक्ष्मण के हाथ में भी आकर स्थित हो गया। यह क्रम सात बार तक चला। तत्पश्चात् लक्ष्मण को बहुत उद्वेग हुआ। अन्त में वह हतोत्साहित होकर स्थित हुआ। यह देखते हुए नारद ने आकर पूछा कि तुम हतोत्साहित क्यों हो गये हो? लक्ष्मण ने उत्तर दिया कि क्या करूँ, यह शत्रु अजेय हैं तब नारद बोले कि क्या तुम इन दोनों को नहीं जानते हो? उत्तर में पद्मनाभ (नारायण) ने कहा कि 'नहीं'। तब नारद ने बतलाया कि ये दोनों सीता के पुत्र हैं। यह सुनकर उत्पन्न हुए हर्ष से लक्ष्मण का शरीर रोमांचित हो गया। तब वह प्रसन्नमुख होकर राम के समीप गया और उन्हें नमस्कार करके बोला कि हे देव! ये दोनों सीता के पुत्र हैं। यह सुनकर राम और लक्ष्मण युद्ध को स्थगित करके लव और अंकुश के समीप में गये। उन्हें अपने सम्मुख आते हुए देखकर वे दोनों भी रथ से नीचे उतर पड़े और नम्रता पूर्वक हाथों को जोड़कर राम व लक्ष्मण के पाँवों में गिर गये। राम ने उन दोनों का हर्ष से आलिंगन किया तथा लक्ष्मण ने उन्हें अनेक आशीर्वाद दिये। तत्पश्चात् वे सब संसार को आश्चर्यचकित करते हुए, नगर के भीतर प्रविष्ट हुए।

सीता वापिस पुण्डरीक पुर को चली गई। लव और अंकुश युवराज पद से विभूषित होकर तीनों लोकों में प्रसिद्ध हुए।

एक दिन मन्त्रियों ने राम से प्रार्थना की कि लोकप्रसिद्ध महासती सीता को राजभवन में ले आना उचित है। इस पर राम बोले कि सीता के शील को न जानकर– उसके विषय में शंकित होकर– उसका परित्याग नहीं किया गया है, किन्तु लोकनिन्दा के भय से उसका परित्याग किया है। वह लोकनिन्दा जिस प्रकार से दूर हो सके, ऐसा कोई दिव्य उपाय स्वीकार करना चाहिये। यह सुनकर सुग्रीव आदि पुण्डरीकपुर को गये। उन्होंने सीता का दर्शन करके उससे राम के अभिप्राय को प्रगट किया। सीता इस घटना से विरक्त हो चुकी थी। अब उसने दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया था। इसीलिये उसने राम के आदेश को स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् वह पुष्पक विमान पर चढ़कर दोपहर को अयोध्या आ गई और रात में महेन्द्र उद्यान में ठहर गई। रात्रि का अन्त हो जाने पर राम आदि ने प्रथमतः जिन पूजन किया। तत्पश्चात् वे वस्त्राभूषणों से अतिशय अलंकृत होकर सभाभवन में विराजमान हुए। तब वहाँ वह सीता आकर उपस्थित हुई। उसे वहाँ यथायोग्य आसन के ऊपर बैठाया गया। तत्पश्चात् राम ने सीता से कहा कि मैंने लोकनिन्दा के भय से तुम्हारा परित्याग किया है, इसलिये तुम किसी दिव्य उपाय से लोगों को शील के विषय में विश्वास उत्पन्न कराओं। तब सीता ने कहा कि ठीक है, मैं वैसा ही कोई उपाय करती हूँ। तत्पश्चात् सीता के इस प्रकार कहने पर एक रमणीय स्थान में कुण्ड को खोदकर उसे कालागुरू, गोशीर्ष और चन्दन आदि अनेक प्रकार के सुगन्धित इन्धनों से पूर्ण किया गया। फिर उसे अग्नि से प्रज्ज्वलित करने पर जब वह अंगारावस्था को प्राप्त हो गया तब सीता ने अपने आसन से उठकर कहा कि हे प्रजाजनों! सुनिए, यदि मैंने इस जन्म में राम को छोड़कर किसी अन्य पुरूष के विषय में मन, वचन व काय से दुष्प्रवृत्ति की हो तो यह अग्नि मुझे भस्म कर देगी। इस प्रकार सीता के प्रतिज्ञा करने पर यहाँ एक दूसरी कथा आती है जो इस प्रकार है–

विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणि में गुंजपुर नाम का नगर है। उसमें सिंहविक्रम नाम का राजा राज्य करता था। रानी का नाम श्री

था। इन दोनों के एक सकलभूषण नाम का पुत्र था। उसके आठ सौ स्त्रियाँ थीं। उनमें किरणमण्डला नाम की स्त्री मुख्य थी। किरण माला की बुआ के एक हेममुख नाम का पुत्र था। वह उसके साथ सहोदर (सगा भाई) के समान स्नेह करती थी। राजा सिंहविक्रम ने सकलभूषण पुत्र को राज्य पर पर प्रतिष्ठित करके दीक्षा धारणकर ली। एक समय अन्य रानियों ने आकर किरणमाला से कहा कि हे देवी! हमें हेममुख के सुन्दर रूप को चित्रपट पर लिखकर दिखलाओं। इस पर उसने कहा कि ऐसा करना योग्य नहीं है। तब उन सबने कहा कि 'दुष्ट भाव से वैसा करना अवश्य ही ठीक नहीं है, किन्तु निर्विकल्पक भाव से (भातृस्नेह से) वैसा करने में कोई दोष नहीं है।' इस प्रकार प्रार्थना करके उन सबने उससे चित्रपट के ऊपर हेममुख के रूप को लिखा लिया। इधर राजा ने आकर जब किरणमाला को ऐसा करते देखा तब वह उसके ऊपर क्रुद्ध हुआ। उस समय उन सब रानियों ने पाँवों में गिरकर उसे शान्त किया। फिर कुछ काल के बीतने पर एक रात को जब वह शय्या पर सो रही थी तब नींद की अवस्था में उसके मुख से 'हा हेममुख' से शब्द निकल पड़े। इन्हें सुनकर राजा को वैराग्य उत्पन्न हुआ। इससे उसने दीक्षा ग्रहण कर ली। इस प्रकार दीक्षित होकर वह समस्त श्रुत का पारगामी होता हुआ, अनेक ऋद्धियों से सम्पन्न हो गया। वह उस समय महेन्द्र उद्यान में स्थित उन मुनिराज के ऊपर गुप्त रीति से सात दिन तक भयानक उपसर्ग किया। इसी समय उन्हें तीनों लोकों को प्रकाशित करने वाला केवलज्ञान हुआ जिस की पूजा के लिये वहाँ देवों का आगमन हुआ। इस प्रकार से आते हुए इन्द्र का विमान जब सती सीता के ऊपर आकर रूक गया, तब उसे महासती सीता के इस दिव्य अनुष्ठान का पता लगा। इससे उस इन्द्र ने सीता के शील की महिमा को प्रगट करने के लिये मेघकेतु नामक देव को स्थापित किया। वह आकाश में स्थित ही था कि सीता पूर्वोक्त प्रतिज्ञा करके पाँच परमेष्ठियों का स्मरण करती हुई उस अग्निकुण्ड के भीतर प्रविष्ट हुई। उसे इस प्रकार से उस अग्निकुण्ड में प्रविष्ट होती हुई देखकर रामचन्द्र को मूर्च्छा आ गई, लक्ष्मण व्याकुल हो उठा, तथा लव व अंकुश आश्चर्यचकित रह गये। उस समय इस दृश्य को देखने वाली समस्त ही जनता 'हा सीता,

हा सीता' कहकर हा-हाकार कर उठी। तत्पश्चात् उस देव ने इस अग्निकुण्ड को तालाब बना दिया। तालाब के भीतर उसने हजार पत्तों वाले कमल की रचना की और उसकी कर्णिका के मध्य में सिंहासन को स्थापित करके उसके ऊपर सीता को विराजमान किया। उसने उस सिंहासन के ऊपर मणिमय मण्डल निर्माण किया। तत्पश्चात् उसने जो पंचाश्चर्य किये, उन्हें देखकर सब ही जनों को आनन्द हुआ। इस प्रकार देवों से पूजित हुई सीता के पास जाकर रामचन्द्र ने कहा कि लोकनिन्दा से भय से मैंने जो यह कार्य किया है उस सबको क्षमा करो और अब पूर्ववत् मेरे साथ भोगों का अनुभव करो। इसके उत्तर में सीता बोली कि तुम्हारे प्रति मेरा क्षमाभाव ही है, किन्तु जिन कर्मो ने यह सब किया है उनके प्रति मेरा क्षमाभाव नहीं है। इसलिये उनको नष्ट करने के लिये अब मैं तपश्चरण की ही शरण लूँगी। उसको छोड़कर अन्य कुछ भी मुझे प्रिय नहीं है। इस प्रकार कहते हुए उन्होंने केशों को उखाड़ कर उन्हें राम के आगे फेंक दिया। तत्पश्चात् देव परिवार के साथ समवशरण में जाकर उसने जिन भगवान् की वंदना की और पृथ्वीमती आर्यिकाजी के पास दीक्षा ग्रहण कर ली। इधर राम उन केशों को देखकर मूर्च्छित हो गये। तत्पश्चात् अन्तःपुर की स्त्रियों द्वारा उनकी मूर्च्छा के दूर करने पर वे समस्त जनता के साथ सीता को तप से भ्रष्ट करने के लिये वहाँ गये। वहाँ जाकर जिन भगवान् का दर्शन मात्र करने से ही उनका वह मोह नष्ट हो गया। तब उन्होंने आर्त्तध्यान से रहित होकर जिन भगवान् की पूजा व स्तुति की फिर वे मनुष्यों के कोठे में जा बैठे। धर्मश्रवण करने के पश्चात् राम आदि सीता से क्षमा मांगकर नगर में वापिस आ गये। सीता आर्यिका ने बासठ वर्ष तपश्चरण किया। तत्पश्चात् उन्होंने तेंतीस दिन तक संन्यास को धारण करके शरीर को छोड़ा। वह अच्युत स्वर्ग में स्वयंप्रभ नाम का प्रतीन्द्र उत्पन्न हुई। इस प्रकार मोह से युक्त वह बाला स्त्री भी जब शील के प्रभाव से देवों से पूजित हुई है तब भला अन्य पुरूष क्यों न होगा? अर्थात् वह तो अनुपम सुख को प्राप्त होगा ही।।4।।

# 5. राज्ञी प्रभावती-कथा

*नारीषु रम्या त्रिदशस्य पूज्या राज्ञी प्रभावत्यभिधा बभूव।*
*त्रिलोकपूज्यामलशीलतो यत् शीलं ततोऽहं खलु पालयामि ॥5॥*

स्त्रियों में रमणीय प्रभावती नाम की नारी निर्मल शील के प्रभाव से देव के द्वारा पूजा को प्राप्त होकर तीनों लोकों की पूज्य हुई है। इसलिये मैं उस शील का परिपालन करता हूँ।।5।।

**5. इसकी कथा-** इस प्रकार है- वत्सदेश के भीतर रौरवपुर में उद्दायन नाम का राजा राज्य करता था। रानी का नाम प्रभावती था। वह विशुद्ध जैन धर्म का परिपालन करती थी। एक समय राजा म्लेच्छ देश में निवास करने वाले शत्रुओं के ऊपर आक्रमण करने के लिए गया था। इधर प्रभावती की जो मन्दोदरी धाय थी उसने दीक्षा ले ली। वह बहुत-सी साध्वियों के साथ आकर उक्त रौरवपुर के बाहर ठहर गई। उसने अपने आने की सूचना करने के लिए प्रभावती के पास किसी स्त्री को भेजा। उसने जाकर प्रभावती से कहा कि तुम्हें देखने के लिए मन्दोदरी यहाँ आकर नगर के बाहर ठहर गई है। यह सुनकर प्रभावती बोली कि उसे मेरे निवास स्थान में आने के लिए कह दो। तब उसने वापिस जाकर मन्दोदरी से प्रभावती का सन्देश कह दिया। इसे सुनकर रानी के अपने सम्मुख न आने से उसे क्रोध उत्पन्न हुआ। वह उसी क्रोध के आवेश में प्रभावती के घर पर पहुँची। प्रभावती उसे नमस्कार न करके अपने आसान पर बैठी रही और इसी अवस्था में उसने मन्दोदरी के लिए आसन दिलाया। तब मन्दोदरी बोली कि हे पुत्री! पूर्व में मैं तेरी माता थी और इस समय तपस्विनी हूँ। मेरे लिए तू प्रणाम क्यों नहीं करती है? इसके उत्तर में प्रभावती ने कहा कि मैं समचीनी मार्ग में स्थित हूँ, किन्तु तुम कुमार्ग में प्रवृत्त हो; इसीलिए मैं तुम्हें नमस्कार नहीं कर रही हूँ। इस पर मन्दोदरी बोली कि क्या महादेव के द्वारा प्ररूपित मार्ग समीचीन नहीं है? प्रभावती ने कहा कि 'नहीं'। तब उन दोंनो के बीच में बहुत विवाद हुआ। अन्त में प्रभावती ने उसे निरुत्तर करके जीत लिया। इससे वह मन ही मन क्रोधित होकर चली गई। तब

उसने प्रभावती के सुन्दर रूप को चित्रपट के ऊपर लिखकर उसे उज्जयिनी के राजा चण्डप्रद्योतन के लिए दिखलाया। उसको देखकर चण्डप्रद्योतन उसके ऊपर आसक्त हो गया। उसे यह ज्ञात ही था कि उसका पति उद्दायन अभी वहाँ नहीं है। इसीलिए वह समस्त सेना के साथ रौरवपुर में जा पहुँचा। उसने वहाँ नगर के बाहर पड़ाव डालकर रानी के पास एक अतिशय चतुर मनुष्य को भेजा। उसने जाकर प्रभावती के आगे अपने स्वामी के गुण, रूप एवं सौन्दर्य की खूब प्रशंसा की। उसे सुनकर प्रभावती ने कहा कि मुझे तुम्हारे स्वामी के गुण आदि से कुछ भी प्रयोजन नहीं है, उद्दायन के सिवा अन्य सब जन मेरे लिए पिता आदि के समान हैं। यह कहकर उसने उस दूत को घर से निकाल दिया। फिर उसने अपने यहाँ अन्य पुरूषों के आगमन को रोक दिया और भीतरी सैन्य को सुसज्जित करते हुए गोपुर द्वारों को बंद करा दिया। वह स्वयं दुर्ग के ऊपर स्थित हो गई। तब वह चण्डप्रद्योतन नगर को अपने अधिकार में करने के लिए प्रयत्न करने लगा। युद्ध को सुनकर प्रभावती अपने देवपूजा भवन (चैत्यालय) में चली गई। वहाँ वह 'जब यह उपद्रव नष्ट हो जावेगा तब ही मैं शरीर आदि के विषय में प्रवृत्ति करूँगी, अन्यथा नहीं, यह प्रतिज्ञा करके स्थित हो गई। इसी समय कोई देव आकाशमार्ग से जा रहा था। उसका विमान प्रभावती के ऊपर आकर रूक गया। इससे उसे प्रभावती के ऊपर आए हुए उपसर्ग का परिज्ञान हुआ। तब उसने मन के चिन्तन से ही नगर के बाहर स्थित चण्डप्रद्योतन के रूप को ग्रहण कर लिया। साथ ही उसने विक्रिया से सेना का भी निर्माण कर लिया। तत्पश्चात् वह दुर्ग के भीतर स्थित सैन्य को माया से नष्ट करके उसके भीतर पहुँच गया। फिर उसने देवपूजा भवन में जाकर प्रभावती के सामने अनेक प्रकार की कामोत्पादक पुरूष की चेष्टाएँ कीं। परन्तु वह उसके चित्त को विचलित नहीं कर सका। तब उसने उस माया को दूर करके प्रभावती की पूजा करते हुए यह घोषणा कर दी कि वह शीलवती है। अन्त में वह स्वर्गलोक को वापिस चला गया। तत्पश्चात् नगर में वापिस आने पर जब यह समाचार राजा उद्दायन को ज्ञात हुआ तब उसे अतिशय हर्ष हुआ। फिर उसने बहुत समय तक राज्य किया। अन्त में उसने अपने सुकीर्ति नामक पुत्र को

राज्य देकर वर्धमान जिनेन्द्र के समवशरण में रानी प्रभावती एवं अन्य बहुत से जनों के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। वह उद्दायन मुनि मुक्ति को प्राप्त हुए तथा शीलवती प्रभावती समाधि-पूर्वक शरीर को छोड़कर ब्रह्म स्वर्ग में देव हुई। इस प्रकार सब अवस्था वाली स्त्री भी जब शील के प्रभाव से दोनों लोकों में पूज्य हुई तब दूसरा भव्य जीव क्या पूज्य न होगा? अवश्य होगा।।5।।

## 6. वज्रकर्ण-कथा

*श्रीवज्रकर्णो नृपतिर्महात्मा पूज्यो बभूवात्र बलाच्युताभयाम्।*
*शीलस्य रक्षापरभावयुक्तः शीलं ततोऽहं खलु पालयामि॥6॥*

यहाँ महात्मा श्रीवज्रकर्ण राजा शील की रक्षा के उत्कृष्ट भाव से बलदेव और नारायण से पूजित हुआ है। इसीलिए मैं उस शील का परिपालन करता हूँ।।6।।

**6. इसकी कथा इस प्रकार है-** यहाँ अयोध्या में राजा दशरथ राज्य करता था। उसके अपराजिता, सुमित्रा, कैकयी और सुप्रभा नाम की चार रानियाँ थी। उनके क्रम से राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न ये चार पुत्र उत्पन्न हुए थे। इनमें से राम बलदेव और लक्ष्मण नारायण था। जब राजा दशरथ विरक्त होकर दीक्षा लेने के लिए उद्यत हुए तब उन्होंने राम के लिए राज्य देना चाहा। परन्तु इस बीच में कैकयी ने आकर महाराज दशरथ से अपने पूर्व वर की याचना की। तब राजा ने उससे कहा मेरे तप में बाधा न पहुँचाकर तुम अन्य कुछ भी माँग सकती हो कैकयी ने बारह वर्ष के लिए अपने पुत्र भरत को राज्य देने की याचना की। इससे राजा को बहुत आश्चर्य हुआ, वह इसका कुछ उत्तर ही न दे सका। तब राम ने पिता के वचन की रक्षा करते हुए भरत के लिए राज्य दे दिया। और स्वयं माता को आश्वासन देकर लक्ष्मण और सीता के साथ अयोध्या से निकल पड़े। इस प्रकार से जाते हुए वे रात्रि में जिनालय के भीतर सोये। कुटुम्बी जन को उन्होंने वहीं से वापिस किया। प्रातःकाल के होने पर वे जिनालय के छोटे द्वार से

निकलकर सरयू नदी को पार करते हुए कुछ दूर जाकर ठहर गये। तत्पश्चात् वे साथ में आये हुए भृत्यवर्ग व अन्य प्रजाजनों को वापिस करके वहीं पर स्थित रहे। इधर किन्हीं पुरुषों के कहने पर भरत राम आदि के जाने के वृत्तान्त को जानकर माता के साथ उनके पास गया। उसने उन्हें वन जाने से रोककर अयोध्या वापिस चलने की प्रार्थना की। परन्तु राम ने उसे स्वीकार नहीं किया। उन्होंने बारह वर्षो में दो वर्ष और बढ़ाकर चौदह वर्ष में अपने अयोध्या आने का वचन दिया। तत्पश्चात् वे आगे चल दिये और चित्रकूट को पारकर दक्षिण में करके अवन्ति देश के भीतर प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्होंने पके हुए खेतों को मनुष्यों से रहित देखकर किसी से इसका कारण पूछा। उसने उत्तर दिया कि इसी उज्जयिनी नगरी में सिंहोदर नाम का राजा राज्य करता है। उसकी पत्नी का नाम श्रीधरा है। उसके एक वज्रकर्ण नाम का महासामन्त है जो दशपुर (दशांगपुर) का स्वामी है। वह एक समय शिकार के लिए वन में गया था। वहाँ उसने किसी मुनिराज को देखकर उनके साथ विवाद किया। तत्पश्चात् उनसे प्रभावित होकर उसने व्रतों को ग्रहण कर लिया। साथ ही उसने एक यह भी प्रतिज्ञा की कि मैं जैन को छोड़कर किसी दूसरे को नमस्कार नहीं करूँगा। इसके लिए वह मुद्रिका में जिनप्रतिमा को प्रतिष्ठित कराकर नमस्कार क्रिया में प्रवृत्त होने लगा। इस बात को सुनकर राजा को क्रोध उत्पन्न हुआ। तब उसने वज्रकर्ण को बुला लाने के लिए आज्ञा देकर राज्य कर्मचारी को भेजा। वह आवेगा या नहीं, इस चिन्ता से व्यथित होकर सिंहोदर स्वयं शय्या के ऊपर पड़ गया। रानी ने जब उसकी चिन्ता का कारण पूछा तब उसने रानी से उक्त वृत्तान्त कह दिया। इस बीच एक विद्युद्दण्ड नाम का असंयतसम्यग्दृष्टि चोर रानी के कर्णफूल को चुराने के लिए राजभवन में आया था। उसने इस वृत्तान्त को सुन लिया। तब उसने राजभवन से बाहर निकलकर मार्ग में आते हुए वज्रकर्ण से वह सब वृत्तान्त कह दिया। इस बात को सुनकर वज्रकर्ण भी अपने नगर में वापिस जाकर सामग्री (सेना आदि) के साथ स्थित हो गया। जब सिंहोदर को यह ज्ञात हुआ तब उसने सेना के साथ जाकर वज्रकर्ण के नगर को घेर लिया है। {इसलिये नगर के भीतर इस समय मनुष्यों के न रहने से ये पके हुए खेत मनुष्यों से

रहित हैं।} उपर्युक्त पुरुष से इस वृत्तान्त को सुनकर उसे राम ने करधानी और लक्ष्मण ने अपने दोनों कड़े देकर वापिस भेज दिया। तत्पश्चात् वे स्वयं उस नगर के बाह्य भाग में स्थित श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र के मन्दिर में गये। उन्हें मन्दिर के भीतर जाते हुए जब वज्रकर्ण ने देखा तब उसे भान हुआ कि मैंने इन्हें कहीं पहिले देखा है। इससे उसने उनके पास भोजन सामग्री भेजी। भोजन के पश्चात् वे जिनभवन के भीतर प्रविष्ट होकर, स्थित हो गये। तत्पश्चात् भरत के दूत का वेष धारण करके लक्ष्मण ने युद्ध करके सिंहोदर को बाँध लिया और उसे लाकर राम को समर्पित कर दिया। तब वज्रकर्ण ने राम और लक्ष्मण को नमस्कार करके सिंहोदर को बन्धन से मुक्त कराया। फिर राम ने उन दोनों को समान आदर के साथ प्रतिष्ठित कराया। इस प्रकार बहुत परिग्रह से संयुक्त वह वज्रकर्ण जब बलदेव (राम) और नारायण (लक्ष्मण) के द्वारा पूज्य हुआ तब दूसरा क्या न होगा?।।6।।

जिस शील के प्रभाव से नीली नाम की वैश्यपुत्री यक्षी से उत्तम पूजा को प्राप्त हुई है उस शील के फल का मैं क्या वर्णन कर सकता हूँ? अर्थात् नहीं कर सकता हूँ। इसीलिये मैं उस शील का परिपालन करता हूँ।।6।।

## 7. वणिक् पुत्री नीली-कथा

*किं वर्ण्यते शीलफलं मया यन्नीलीति नाम्ना वणिजो हि पुत्री।*
*शीलात्सुपूजां लभते स्म यक्ष्याः शीलं ततोऽहं खलु पालयामि ॥7॥*

**7. इसकी कथा-** इस प्रकार है- इसी आर्यखण्ड के भीतर लाट देश में भृगुकच्छ नाम का नगर है। उसमें वसुपाल नाम का राजा राज्य करता था। उसी नगर में एक जिनदत्त नाम का वैश्य रहता था। उसकी पत्नी का नाम जिनदत्ता था। उनके नीली नाम की अतिशय रूपवती पुत्री थी। वहीं पर समुद्रदत्त नाम का एक दूसरा सेठ भी रहता था। उसकी पत्नी का नाम सागरदत्ता था। इनके सागरदत्त नाम का एक पुत्र था। एक बार सागरदत्त ने महापूजा के समय वसति (जिनभवन) में समस्त

आभषणों से विभूषित होकर कायोत्सर्ग में स्थित उस नीली को देखा। उसे देखकर वह बोला कि क्या यह कोई देवता है? यह सुनकर उसके मित्र प्रियदत्त ने कहा कि यह जिनदत्त सेठ की पुत्री नीली है। उसके सौन्दर्य को देखकर सागरदत्त को उसके विषय में अतिशय आसक्ति हुई। तब वह उसको प्राप्त करने की चिन्ता में उत्तरोत्तर कृश होने लगा। समुद्रदत्त ने जब यह सुना तो वह उससे बोला कि हे पुत्र! जिनदत्त सेठ इस पुत्री को जैन के सिवाय किसी दूसरे को नहीं दे सकता है। इससे वे दोनों (पिता-पुत्र) कपट से श्रावक बन गये। इस प्रकार से सागरदत्त के साथ उस नीली का विवाह सम्पन्न हो गया। तत्पश्चात् वे फिर से बौद्ध हो गये। तब उन्होंने नीली को अपने पिता के यहाँ जाने से भी रोक दिया। इस प्रकार धोखा खाने पर जिनदत्त ने विचार किया कि यदि यह मेरे यहाँ उत्पन्न नहीं होती तो अच्छा था, अथवा कुएँ में गिरकर मर गई होती या यम के द्वारा ग्रहण कर ली गई होती तो भी अच्छा होता। उधर नीली ससुर के घर पर, पति की प्रिया होकर दूसरे घर में जिनधर्म की उपासना करती हुई, समय को बिता रही थी। यह {भिक्षुओं के} दर्शन से, उनकी संगति से, वचन से अथवा धर्म के सुनने से कुछ समय में बुद्धदेव की भक्त (बौद्ध) हो जायेगी, ऐसा विचार करके समुद्रदत्त ने उससे कहा कि हे नीली पुत्री! हमारे लिये निमित्तज्ञानी बन्दकों (बौद्ध भिक्षुकों) को भोजन दो। इस पर उसने बन्दकों को निमन्त्रित करके बुलाया और उनमें से प्रत्येक बन्दक के एक-एक जूते को महीन पीसकर उसे घृतादि से करते हुए उन्हीं को खिला दिया। जब वे सब भोजन करके वापिस जाने लगे तब उन्हें अपना एक-एक जूता नहीं दिखा। इसके लिये उन्होंने पूछा कि हमारा एक-एक जूता कहाँ गया है? नीली ने उत्तर दिया कि आप सब ज्ञानी हैं, अतएव आप ही अपने ज्ञान के द्वारा जान सकते हैं कि वे जूते कहाँ पर हैं। और यदि आप लोगों को उसका ज्ञान नहीं है तो फिर वमन करके देख लीजिये। वे आप लोगों के ही पेट में स्थित हैं। इस प्रकार से वमन करने पर उन्हें उसमें जूते के टुकड़े देखने में आ गये। इससे ससुर पक्ष के लोग नीली के ऊपर क्रुद्ध हुए। तत्पश्चात् सागरदत्त की बहिन आदि ने क्रोधवश उसके विषय में पर पुरुष के साथ सम्बन्ध रखने का झूठा दोष उदभावित्

किया। इस दोष के प्रसिद्ध होने पर वह नीली देव के आगे संन्यास लेकर कायोत्सर्ग से स्थित हो गई। उस समय उसने यह दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली कि इस दोष के दूर हो जाने पर ही मैं भोजनादि में प्रवृत्त होऊँगी, अन्यथा नहीं। इस घटना से क्षुभित होकर रात्रि में नगरदेवता आया और उससे बोला हे महासती! तू इस प्रकार से प्राणों का त्याग न कर। मैं राजा के प्रधान पुरूषों और नगर वासी जनों को स्वप्न देता हूँ कि नगर के जो प्रधान द्वार बन्द हो रहे हैं वे किसी महासती के बायें पैर के स्पर्श खुलेंगे इस प्रकार से वे प्रभात समय में तेरे चरण के स्पर्श से ही खुलेंगे। इसीलिए तू अपने पाँव से उक्त द्वारों का स्पर्श करना। यह कहकर वह नगर देवता राजा आदि को वैसा स्वप्न दिखलाकर और नगर द्वारों को कीलित करके स्थित हो गया। प्रातःकाल के होने पर उन नगर द्वारों को कीलित देखकर राजा आदि को उस स्वप्न का स्मरण हुआ। तब उन्होंने नगर की समस्त स्त्रियों को बुलाकर गोपुरों से उनके पाँव का स्पर्श कराया। परन्तु उनमें से किसी के द्वारा एक भी गोपुरद्वार नहीं खुला, अन्त में उन सबके पीछे नीली को वहाँ पर लाया गया। तब उसके चरण के स्पर्श से वे सब द्वार खुल गये। इससे उसका वह दोष दूर हो गया। इस प्रकार उस यक्षी से पूजित वह नीली राजा आदि महापुरूषों के द्वारा भी पूजित, हुई। जब भला थोड़े विवेक से सहित वह स्त्री बाला भी शील के प्रभाव से देव से पूजित हुई है तब दूसरा पूर्ण विवेकी भव्य जीव क्या उन देवादियों से पूज्य न होगा? अवश्य होगा।।7।।

## 8. अहिंसाणुव्रती चाण्डाल-कथा

*निन्द्यः श्वपाकोऽपि सुरैरनेकैः संपूजितः शीलफलेन राजा।*
*संस्पृश्यभावं ह्युपनीतवांस्तं शीलं ततोऽहं खलु पालयामि॥8॥*

शील के प्रभाव से अतिशय निन्दनीय चाण्डाल भी अनेक देवों के द्वारा पूजित होकर राजा के द्वारा स्पर्श करने के योग्य किया गया। इसीलिये मैं उस शील का परिपालन करता हूँ।।8।।

**8. इसकी कथा–** इस प्रकार है– इसी आर्यखण्ड के भीतर पोदनपुर में राजा महाबल राज्य करता था। उसके पुत्र का नाम बल था। राजा ने नन्दीश्वर (अष्टान्हिक) पर्व की अष्टमी को आठ दिन तक जीवहिंसा न करने की घोषणा करायी। उधर उसका पुत्र बलकुमार अतिशय मांसप्रिय था। उसने इन दिनों में किसी भी पुरुष को न देखकर गुप्त रीति से बगीचे में राजा के मेढ़े का वध कराया और उसे पकाकर खाया। राजा को जब उस मेढ़े के वध का समाचार ज्ञात हुआ तब उसे बहुत क्रोध आया। उसने उक्त मेढ़े के मारने वाले मनुष्य को खोजना प्रारम्भ किया। जब बगीचे में वह मेढ़ा मरा जा रहा था। तब वृक्ष के ऊपर चढे हुए माली ने उसे देख लिया था। उसने रात में मेढ़े के मारने की बात अपनी स्त्री से कही। उसे वहाँ पास में स्थित किसी गुप्तचर ने सुन लिया था। उसने जाकर मेढ़े के मारे जाने का वृत्तान्त राजा से कह दिया। तब प्रभात में उस माली को वहाँ बुलाया गया। उसने उसी प्रकार से फिर से भी वह वृत्तान्त कह दिया। मेरी आज्ञा को मेरा पुत्र ही भंग करता है, यह सोचकर राजा को क्रोध उत्पन्न हुआ। तब उसने कोतवाल को बलकुमार के नौ खण्ड कराने की आज्ञा दी। तत्पश्चात् कुमार को मारने के स्थान पर ले जाकर जो राजपुरुष चाण्डाल को लेने के लिये गये थे उन्हें देखकर चाण्डाल ने अपनी पत्नी से कहा कि हे प्रिये! तुम इन पुरुषों से कह देना कि आज चाण्डाल गाँव को गया है। यह कहकर वह घर के एक कोने में छुप गया। तत्पश्चात् उन पुरुषों द्वारा चाण्डाल के बुलाये जाने पर चाण्डालिनी ने उनसे कह दिया कि वह आज गाँव को गया है। यह सुनकर उन पुरुषों ने कहा कि वह पापी पुण्यहीन है जो आज गाँव को गया है, आज राजकुमार का वध करने पर उसे बहुत सुवर्ण और रत्नों आदि का लाभ होने वाला था। उनके इस कथन को सुनकर उस चाण्डालिनी को धन का लोभ उत्पन्न हुआ। तब उसने चाण्डाल के भय से बार-बार यही कहा कि वह तो गाँव को गया है। परन्तु इसके साथ ही उसने हाथ के संकेत से उसे दिखला भी दिया। तब उन लोगों ने उसे घर के भीतर से निकालकर मारने के लिये उस कमार को समर्पित कर दिया। इस पर चाण्डाल ने उनसे कहा कि मैं आज चतुर्दशी के दिन जीव हिंसा नहीं करता हूँ। तब उन लोगों ने उसे ले जाकर राजा को दिखलाते हुए कहा कि हे देव! यह राजकुमार को नहीं मार रहा है। इस पर उस चाण्डाल ने राजा से कहा कि हे देव!

एक बार मुझे सर्प ने काट लिया था। तब लोग मुझे मरा हुआ समझकर श्मशान में ले गये। वहाँ मैं सर्वौषधि ऋद्धि के धारक मुनिराज के शरीर की संगत वायु के स्पर्श से जीवित हो गया। तब मैंने उनके समीप में जीवों की हिंसा न करने रूप अहिंसाणुव्रत को ग्रहण कर लिया था।

इसीलिये मैं आज जीव वध नहीं कर रहा हूँ। अब आप जो उचित समझें करें। चाण्डाल के इस कथन को सुनकर राजा ने विचार किया कि भला चाण्डाल के भी व्रत हो सकता है। बस यही सोचकर उसका क्रोध भड़क उठा। तब उसने उन दोनों को ही बँधवाकर शिशुमारद्रह (हिंसक जल-जन्तुओं से व्याप्त तालाब) में फिकंवा दिया। परन्तु उस चाण्डाल ने चूँकि मरण के सन्मुख होने पर भी अपने ग्रहण किये हुए अहिंसाणुव्रत को नहीं छोड़ा था इसीलिये उस व्रत के प्रभाव से जलदेवता ने उसे जल के मध्य में सिंहासन देकर मणिमय मण्डप, दुन्दुभि और साधुकार (साधु कृतं साधु कृतम्, यह शब्द) आदि प्रातिहार्य किये। इस घटना को सुनकर महाबल राजा बहुत भयभीत हुआ। तब उसने उक्त चाण्डाल की पूजा करके उसका अपने छत्र के नीचे स्नान कराया और फिर उसे विशिष्ट स्पर्श के योग्य घोषित किया। वह कुमार शिशुमर (हिंसक जलजन्तु) का ग्रास बनकर दुर्गति को प्राप्त हुआ। इस प्रकार चाण्डाल भी जब शील के प्रभाव से देवों से पूजित हुआ है तब दूसरा क्या देवों से पूजित नहीं होगा? अवश्य होगा।।8।।

जो भव्य जीव भक्ति से अनुपम आठ कथामय शील के प्रकरण को पढ़ता है वह स्वर्ग के सुख को भोगकर मनुष्यों में श्रेष्ठ चक्रवर्ती आदि के भी सुख को भोगता है। तथा अन्य में चक्रवर्तियों और इन्द्रों का भी पूज्य होकर उत्तम शील के फलभूत उस मोक्षस्थान को भी प्राप्त कर लेता है जहाँ पर कि निरन्तर आत्मिक अनन्त सुख का अनुभव किया करता है।

*इस प्रकार केशवनन्दी दिव्य मुनिराज के शिष्य रामचन्द्र मुमुक्षु द्वारा विरचित पुण्यास्रव नामक कथाकोश ग्रन्थ में शील के फल का वर्णन करने वाला अष्टक समाप्त हुआ।।4।।*

## 9. वैश्यनागदत्तवर नागकुमार-कथा

*भुवनपतिसुखानां कारणं लोकपूज्यंखलु वृजिनविनाशं शोषकं चेन्द्रियाणाम्*
*विपुलविमलसौख्यो वैश्यपुत्रो यतोऽभू- दुपवसनमतोऽहं तत्करोमि त्रिशुद्ध्या ॥9॥*

जो उपवास तीनों लोकों के अधिपतियों (इन्द्र, धरणेन्द्र एवं चक्रवर्ती) के सुख का कारण, लोक में पूज्य, पाप का नाशक और इन्द्रियों का दमन करने वाला है; उसके करने से चूँकि वैश्य का पुत्र निर्मल एवं महान् सुख का उपभोक्ता हुआ है, अतएव मैं मन, वचन और काय की शुद्धिपूर्वक उसे करता हूँ।।9।।

**9. इसकी कथा-** इस प्रकार है- इसी आर्यखण्ड के भीतर मगध देश में कनकपुर नाम का नगर है। वहाँ जयंधर नाम का राजा राज्य करता था। रानी का नाम विशालनेत्रा था। उनके एक श्रीधर नाम का महाप्रतापी पुत्र था। राजा के मन्त्री का नाम नयंधर था। वह राजा एक समय समस्त जनों के साथ सभाभवन में बैठा हुआ था। उस समय उसका वासव नामक मित्र अनेक देशों में पर्यटन करके वहाँ आया। उसने उपहार स्वरूप लाये हुए रत्नों के ऊपर एक चित्रपट को करके उसे राजा के लिए दिखलाया। राजा ने जब उसे खोलकर देखा तो उसमें एक सुन्दर कन्या का रूप अंकित दिखा। उसे देखकर राजा के लिये उक्त कन्या के विषय में अतिशय अनुराग हुआ। तब उसने उस व्यापारी से पूछा कि यह किस कन्या का चित्र है? व्यापारी बोला- सुराष्ट्र देश में एक गिरिनगर नाम का पुर है। उसमें राजा श्रीवर्मा राज्य करता है। रानी का नाम श्रीमती है। इन दोनों के एक हरिवर्मा नाम का पुत्र और पृथ्वी नाम की पुत्री है। यह उसी पुत्री का चित्र है। यह कन्या आपको प्रिय है अथवा नहीं, इस प्रकार आपके अन्तःकरण की परीक्षा करने के लिए मैं इस चित्र को आपके पास लाया हूँ। यह सुनकर राजा ने उक्त कन्या के साथ विवाह करने के समाचार के साथ उसी व्यापारी को उत्तम भेंट

के साथ वहाँ भेज दिया। उसने वहाँ जाकर श्रीवर्मा राजा को भेंट देते हुए उससे यह निवेदन किया कि मेरा स्वामी मगध देश का राजा तरूण, अतिशय सुन्दर, प्रतापी, जिनेन्द्र देव का उपासक, समस्त कलाओं में कुशल, दानी, भोगी और महामण्डलेश्वर है। उसने आपकी पुत्री की याचना करने के लिये मुझे यहाँ भेजा है। यह सुनकर राजा श्रीवर्मा को बहुत आनन्द हुआ। तब उसने अपने मन्त्रियों और उस वासव व्यापारी के साथ अपनी पुत्री को जयंधर राजा के साथ विवाह करा देने के लिये कनकपुर भेज दिया। उसके आगमन को सुनकर जयंधर राजा नगर को सुसज्जित कराकर आगवानी के लिए सन्मुख गया। तत्पश्चात् उसने महती विभूति के साथ पुर में प्रविष्ट होकर शुभ लग्न में उस कन्या के साथ विवाह कर लिया। साथ ही उसने उसे महादेवी भी बना दिया। उस पृथ्वी देवी को छोड़कर दूसरी आठ हजार रानियाँ विशाल नेत्रा की सेवा करती थीं।

एक समय वसन्तोत्सव में राजा जयंधर समस्त जनों के साथ उद्यान में गया। साथ में विशालनेत्रा भी अन्तःपुर की समस्त रानियों के साथ पुष्पक (पालकी ?) पर चढ़कर गई। उसके पीछे सुसज्जित भद्र हाथी के ऊपर चढ़कर पृथ्वी महादेवी भी चल दी। उसके आगमन के ठाट-बाट को देखकर विशालनेत्रा ने किसी से पूछा कि यह कौन आ रहा है? उसने उत्तर दिया कि वह पृथ्वी रानी आ रही है। इस बात को सुनकर वह उसके रूप को देखने के लिये वहीं पर ठहर गई। उसके अवस्थान को देखकर पृथ्वी ने पूछा कि यह आगे कौन स्थित है? तब किसी ने कहा कि पट्टरानी है। यह सुनकर पृथ्वी ने विचार किया कि शायद वह मुझसे प्रणाम कराने के लिये यहाँ रूक गई। यह सोचकर वह जिनालय में चली गई। वहाँ उसने जिनेन्द्र देव की पूजा करके पिहितास्रव मुनिराज को नमस्कार करते हुए उनसे दीक्षा देने की याचना की। इस पर मुनिराज ने कहा तू अपने पुत्र की राज्यविभूति को देखकर तत्पश्चात् राजा के साथ दीक्षा ग्रहण करेगी। तब पृथ्वी ने उनसे पूछा कि क्या मेरे पुत्र उत्पन्न होगा? मुनिराज ने उत्तर दिया कि हाँ तेरे पुत्र होगा और वह भी कामदेव, महामण्डलेश्वर एवं चरमशरीरी होगा। वह पुत्र इस प्रकार का होगा इसका निश्चय तुम इन चिन्हों से करना- राजभवन के

निकटवर्ती उद्यान में सिद्धकूट जिनालय है। उसके किवाड़ों को खोलने के लिए देव भी समर्थ नहीं हैं। फिर भी वे किवाड़ उस पुत्र के पाँव के अँगूठे के छूने मात्र से ही खुल जावेंगे। उस समय वह बालक नागवापिका में गिर जावेगा। उसे वहाँ सर्प अपने शिरों के ऊपर धारण करेंगे। जब वह विशेष वृद्धिंगत होगा तब वह नीलगिरी नामक हाथी को अपने वश में करेगा। इसी प्रकार वह, दुष्ट घोड़े को भी वश में करेगा। इस शुभ वार्ता को सुनकर पृथ्वी रानी हर्षित होती हुई अपने भवन में वापिस चली गई। इधर राजा जलक्रीड़ा के समय पृथ्वी को न देखकर खिन्न होता हुआ उसके भवन में गया। वहाँ शीघ्र जाकर उसने पृथ्वी से उद्यान में न जाने का कारण पूछा। तब उसने मुनिराज के द्वारा कहे हुए उस सब वृत्तान्त को राजा से कह दिया। उसे सुनकर राजा को भी बहुत हर्ष हुआ। तत्पश्चात् कुछ दिनों के बीतने पर उसके पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम प्रतापन्धर रखा गया। वह क्रम से वृद्धि को प्राप्त होने लगा। एक दिन उसकी माता उसे लेकर उक्त जिनालय में गई। वहाँ मुनिराज के कथनानुसार उस बालक के अँगूठे के स्पर्श से जिनालय के वे बन्द किवाड़ खुल गये। पृथ्वी उस बालक को छोड़कर जिनालय के भीतर गई। उस समय सब ही जन जिनदर्शन में लीन थे। तब वह बालक घुटनों के सहारे जाकर नागवापी में गिर गया। तब उसे न देखकर उसकी धाय कोलाहल करने लगी। उसे सुनकर उसकी माता पृथ्वी बाहर आयी। उसने देखा कि पुत्र बावड़ी में गिर गया है। उसे सर्पों के रूप में स्थित बावड़ी के देवों ने जल के ऊपर अपने फणों पर ध ारण कर लिया था। तब वह 'हा पुत्र' कहकर स्वयं भी उस बावड़ी में कूद पड़ी। उस समय उसके पुण्य के प्रभाव से उस बावड़ी का अथाह जल भी उसके घुटने प्रमाण हो गया। उस समय अंगरक्षक आदि के कोलाहल को सुनकर राजा भी वहाँ पहुँचा। उसे उस अवस्था में पृथ्वी को पुत्र के साथ देखकर बहुत हर्ष हुआ। तत्पश्चात् उसने माता के साथ पुत्र को बावड़ी से बाहर निकलवाकर जिनेन्द्र भगवान की पूजा की। फिर वह राजप्रासाद में वापिस चला गया। तत्पश्चात् वह पुत्र का नागकुमार नाम रखकर सुखपूर्वक स्थित हुआ। वह पुत्र भी समस्त कलाओं में प्रवीण हो गया।

एक समय पंचसुगन्धिनी नाम की किसी वेश्या ने राजसभा में आकर राजा से प्रार्थना की कि हे देव! मेरे किंनरी और मनोहरी नाम की पुत्रियाँ हैं। उन्हें वीणा बजाने का बहुत अभिमान है। आप उनके वीणावादन की परीक्षा करने के लिये नागकुमार को आज्ञा दीजिये। तदनुसार राजा के आज्ञा देने पर नागकुमार पिता के पास में बैठ गया। अन्य जन जो वीणा बजाने में निपुण थे वे भी सब सभा में आकर बैठ गये। इसके पश्चात् उन दोनों कुमारियों ने अपनी वीणावादन की परीक्षा दी। तब पिता ने नागकुमार से पूछा कि इन दोनों में विशेष निपुण कौन है? नागकुमार ने उत्तर दिया कि छोटी पुत्री अधिक प्रवीण है। तब राजा ने उससे फिर पूछा कि ये दोनों युगल स्वरूप से साथ में उत्पन्न हुई हैं, ऐसी अवस्था में तुमने यह कैसे ज्ञात किया कि यह बड़ी है और यह छोटी है? इसके उत्तर में, नागकुमार बोला कि हे देव! जब यह छोटी लड़की वीणा को बजाती है तब यह बड़ी लड़की उसके मुख को देखती है और जब यह बड़ी लड़की वीणा को बजाती है तब छोटी लड़की नीचे देखती है। इस शारीरिक चेष्टा के द्वारा उनके छोटे-बड़ेपन का ज्ञान हो जाता है। नागकुमार के इस उत्तर से लोगों को बहुत कौतुक हुआ। वे दोनों कन्यायें भी नागकुमार की कुशलता को देखकर उसके ऊपर अतिशय आसक्त हुई। तब नागकुमार ने पिता की आज्ञा पाकर उनके साथ विवाह कर लिया। इस प्रकार प्रतापन्धर सुखपूर्वक रहने लगा।

एक समय राजा सभा में बैठा हुआ था। तब किसी ने आकर उससे प्रार्थना की कि हे देव! नीलगिरि नाम का हाथी अनेक देशों को उजाड़ता हुआ यहाँ आकर नगर के बाहर तालाब पर स्थित है। यह सुनकर राजा ने उस हाथी को पकड़ने के लिए श्रीधर को भेजा। तदनुसार वह सेना के साथ उक्त हाथी को वश में करने के लिए गया भी। परन्तु वह उसे वश में नहीं कर सका। बल्कि इससे वह हाथी और भी क्षुब्ध हो उठा। तब श्रीधर भागकर नगर में वापिस आ गया। यह सुनकर उक्त हाथी को वश में करने के लिए राजा स्वयं ही वहाँ जाने को उद्यत हुआ। तब नागकुमार पिता को रोककर स्वयं अकेला वहाँ गया। उसने शास्त्र में निर्दिष्ट हाथी पकड़ने की विधि से उसे पकड़ लिया। फिर वह उसके कंधे पर चढ़कर इन्द्र जैसे ठाट-बाट से नगर के भीतर प्रविष्ट हुआ

और पिता से बोला कि हे देव! यह है वह हाथी, इसे ग्रहण कीजिये। तब पिता ने कहा कि तुम्हारे ही योग्य है, इसे तुम ही ले लो। इस पर नागकुमार ने 'यह आपकी बड़ी कृपा है' कहकर उसे ले लिया और अपने निवास स्थान को चला गया।

दूसरे किसी समय में नागकुमार ने किसी घोड़े को यन्त्र से चारा खिलाते हुए सईस को देखकर उससे पूछा कि इस घोड़े को इस रीति से घास क्यों खिलायी जा रही है? सईस ने उत्तर दिया कि यह दुष्ट घोड़ा निकटवर्ती मनुष्य को है, इसीलिये इसको दूर से ही घास खिलायी जाती है। यह सुनकर नागकुमार ने उसके बन्धनों को खोलकर उसे पकड़ लिया। फिर उसने उसके ऊपर चढ़कर उसे इधर-उधर दौड़ाया। तत्पश्चात् उस घोड़े को आश्रम में लाकर नागकुमार पिता से बोला कि यह वह दुष्ट घोड़ा है, जिसे मैंने वश में किया है। तब राजा ने कहा कि यह तुम्हारे योग्य है, इसे तुम ही ले लो। तदानुसार नागकुमार इसे भी प्रसाद के रूप में लेकर चला गया। इत्यादि प्रकार से नागकुमार की ख्याति को देखकर विशालनेत्रा अपने पुत्र श्रीधर से बोली कि हे पुत्र! राज्य का उत्तराधिकारी अतिशय प्रौढ़ (उन्नत) हुआ है। इसीलिये तुम अपने लिए प्रयत्न करो। यह सुनकर श्रीधर ने नागकुमार को मार डालने के लिए पाँच सौ सहस्रभटों को एकत्रित किया। वे भी उसके वध का अवसर देखने लगे। उधर नागकुमार को इस बात का पता भी न था।

एक समय नागकुमार अपने भवन में पश्चिम भागवर्ती उद्यान में स्थित कुब्ज वापिका में अपनी दोनों प्रियतमाओं के साथ जल क्रीड़ा के लिए गया था। उस समय उसकी माता पृथ्वी विलेपन आदि को लेकर नियमित सखीजनों के साथ उसके पास जा रही थी। उसे देखकर अपने भवन के ऊपर छत पर बैठी हुई विशालनेत्रा अपने पास बैठे हुए राजा से बोली हे देव! देखिये आपकी प्रिया संकेतित स्थान (व्यभिचार स्थान) को जा रही है। यह सुनकर राजा ने उसे उस प्रकार से जाते हुए देखा। इससे उसे बहुत आश्चर्य हुआ। तब वह यही देखता रहा कि पृथ्वी कहाँ जाती है। अन्त में उसने देखा कि वह बावड़ी पर पहुँच गई और नागकुमार उस बावड़ी में से निकलकर उसके चरणों में प्रणाम कर रहा है। यह देखकर उसने विशालनेत्रा को बहुत फटकारा। तत्पश्चात् उसने

पृथ्वी के भवन में जाकर उससे पूछा कि तुम कहाँ गई थीं? तब पृथ्वी ने यथार्थ बात कह दी। राजा ने पट्टरानी की क्षुद्रता के भय से पृथ्वी से कहा कि हे प्रिये! पुत्र को बाहर न निकलने दिया करो। इस प्रकार वह नागकुमार के घूमने फिरने पर प्रतिबन्ध लगाकर अपने भवन में चला गया। इससे पृथ्वी को यह भ्रम उत्पन्न हुआ कि राजा श्रीधर को ही प्रकाश में लाना चाहता है। इस कारण से वह बहुत दुखी हुई। उस समय नागकुमार कहीं बाहर गया था। उसने भवन में आकर जब माता को खिन्न देखा तो उससे चिन्ता का कारण पूंछा। तब पृथ्वी ने कहा राजा ने तुम्हारे बाहर जाने-आने को रोक दिया है, इससे मैं दुःखी हूँ। यह सुनकर नागकुमार नीलगिरि हाथी को सुसज्जित कर उसके कन्धे पर चढ़ा और अनेक जनों से वेष्टित होकर इन्द्र के समान ठाट-बाट के साथ भवन से बाहर निकल पड़ा। वह अपने सुन्दर रूप से स्त्रीजनों को मोहित करता हुआ नगर में घूमने फिरने लगा। तब उसके पाँच (शंख, काहल एवं तुरई आदि के) महाशब्दों के कोलाहल को सुनकर राजा ने किसी से पूछा कि यह कैसा कोलाहल है? उसने उत्तर दिया कि यह नागकुमार के परिभ्रमण का आडम्बर है। यह सुनकर राजा को ज्ञात हुआ कि पृथ्वी ने मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया है। इससे उसे बहुत क्रोध आया। तब उसने पृथ्वी के वस्त्राभूषणादि सब ही छीन लिये। नागकुमार ने वापिस आकर जब माता को आभूषणादि से रहित देखा तब उसने वस्तुस्थिति को जान लिया। तत्पश्चात् उसने द्यूतस्थान (जुआरियों का अड्डा) पर जाकर मन्त्री और मुकुटबद्ध राजा आदि सबका धन जुए में जीत लिया तथा उन सबको अपनी माँ के घर में ले आया। जब राजा ने अपनी सभा में उक्त मन्त्री आदि जनों को आभरणों से रहित देखा तो उसने उनसे इसका कारण पूछा। तब उन्होंने राजा से यथार्थ वृत्तान्त कह दिया। इससे उसे नागकुमार के ऊपर बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ। इस क्रोधावेश में उसने नागकुमार को बुलाकर अपने साथ जुआ खेलने के लिये कहा। यह सुनकर नागकुमार ने कहा कि राजा का (आपका) मेरे साथ जुआ खेलना उचित नहीं हैं फिर भी वह जुए में पूर्व में जीते गये उन मन्त्री आदि के अधिक आग्रह करने पर पिता के साथ जुआ खेलने के लिये बाध्य हुआ। तब उसने जुए में राजा के

समस्त कोष को जीत लिया। तत्पश्चात् जब राजा देश को भी दाँव पर रखने लगा तब उसके पिता के पाँवों में गिरकर प्रार्थना की कि हे देव! अब इसे समाप्त कीजिये। इसके पश्चात् नागकुमार ने माता के धन को माता के लिये देकर शेष धन को उसके स्वामियों के लिये दे दिया। राजा ने सन्तुष्ट होकर अपने नगर के बाहर दूसरे नगर का निर्माण कराकर वहाँ नागकुमार को प्रतिष्ठित कर दिया। वह भी वहाँ सुखपूर्वक रहने लगा।

**यहाँ दूसरी कथा आती है-** सूरसेन देशके भीतर उत्तर मथुरापुरी में जयवर्मा नाम का राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम जयावती था। इनके व्याल और महाव्याल नाम के दो पुत्र थे जो कोटिभट (करोड़ योद्धाओं को पराजित करने वाले) थे इनमें से व्याल के तीन नेत्र थे। एक दिन उक्त नगर के उद्यान में यमधर नाम के मुनिराज आकर विराजमान हुए। वनपाल से उनके आगमन के समाचार को जानकर राजा उनकी वन्दना के लिये गया। वन्दना के पश्चात् उसने उनसे पूछा कि मेरे दोनों पुत्र स्वतन्त्र राज्य करेंगे अथवा किसी के सेवक होकर। मुनिराज बोले- जिस पुरुष को देखकर व्याल के मस्तक पर स्थित नेत्र नष्ट हो जावेगा। उसकी सेवा करके वह राज्य करेगा। और जो कन्या व्याल की इच्छा न करके जिस अन्य पुरुष की प्रियतमा बनेगी उसकी सेवा करके यह महाव्याल भी राज्य करेगा। यह सुनकर जयवर्मा ने विचार किया कि देखो ये मेरे दोनों पुत्र कोटिभट हो करके भी दूसरों के सेवक बनेंगे। यह विचार करते हुए उसका हृदय वैराग्य से परिपूर्ण हो गया। तब उसने उन दोनों पुत्रों को राज्य देकर दीक्षा धारण कर ली। उधर वे दोनों पुत्र भी मन्त्री के पुत्र दुष्टवाक्य को राज्य कार्य में नियुक्त करके अपने-अपने स्वामी को खोजने के लिये निकल पड़े। वे दोनों पाटलीपुत्र में पहुँचकर लोगों को मुग्ध करते हुए बाजार में ठहर गये। पाटलीपुत्र में उस समय श्रीवर्मा राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम श्रीमती था। इनके गणिका सुन्दरी नाम की एक पुत्री थी। उसकी त्रिपुरा नाम की एक सखी थी। उसने उन दोनों को देखकर उनकी सुन्दरता की प्रशंसा गणिकासुन्दरी से की। तब वह भी गुप्त रूप से महाव्याल को देखकर उसके ऊपर आसक्त हो गई। श्रीवर्मा ने शरीर

की चेष्टा से उसके अभीष्ट को जान लिया। इसलिये वह उन दोनों को क्षत्रिया जान करके अपने घर पर ले गया। फिर उसने व्याल के लिये गणिकासुन्दरी की धाय की पुत्री ललितसुन्दरी को देकर महाव्याल के लिये गणिकासुन्दरी को अर्पित कर दिया। इस प्रकार से वे दोनों वहाँ विभूति के साथ रहने लगे। उस समय विजयपुर के स्वामी जितशत्रु ने आकर क्रोध से उस नगर को घेर लिया था। उसके इस क्रोध का कारण यह था कि उसने पूर्व में उन दोनों कन्याओं को माँगा था, किन्तु वे उसे दी नहीं गई थीं। व्याल ने अपनी पत्नी से इस वृत्तान्त को जानकर महाव्याल के लिये आदेश दिया कि जितशत्रु की बुद्धि को देखो- उसे जाकर समझाने का प्रयत्न करो। तब वह श्रीवर्मा के दूत के रूप में जितशत्रु के पास चला गया। वहाँ जाकर उसने जो कुछ भी कहा उससे जितशत्रु का क्रोध भड़क उठा। इससे उसने महाव्याल को अपमानित किया। बस उसने उसे उसकी ही पगड़ी से बाँध लिया और बड़े भाई के पास ले जाकर उसके पैरों में गिरा दिया। तब व्याल ने उसे अपने ससुर के लिये समर्पित कर दिया। श्रीवर्मा ने उसे पोशाक (वस्त्र) देकर उसके देश में वापिस भेज दिया। इस प्रकार से व्याल और महाव्याल का प्रताप लोगों में प्रगट हो गया। फिर वे दोनों वहाँ सुख से रहने लगे।

व्याल, नागकुमार की कीर्ति को सुनकर उसके दर्शन के लिये वहाँ गया। जब वह कनकपुर में पहुँचा तब नागकुमार नीलगिरि हाथी पर चढ़ा हुआ बाह्य वीथी में घूमकर नगर के भीतर प्रवेश कर रहा था। उसको देखते ही वह समदृष्टि (दो नेत्रों वाला) हो गया- उसका वह तीसरा भालस्थ नेत्र नष्ट हो गया। तब वह अपना परिचय देकर उसका सेवक हो गया। नागकुमार उसे अपने हाथी के ऊपर बैठाकर ले गया और फिर भवन के द्वार पर छोड़कर स्वयं भीतर चला गया। वह द्वार पर ही स्थित रहा। इसी समय श्रीधर के गुप्तचर ने उसे सूचना दी कि इस समय नागकुमार अकेला ही अपने भवन में स्थित है। तब उसने नागकुमार के वध के लिये उन पाँच सौ सहस्र भट सेवकों को आज्ञा दे दी। तदनुसार वे तैयार होकर उधर आ रहे थे। उन्हें आते देखकर व्याल ने द्वारपालों से पूछा कि ये किसके सेवक हैं? उत्तर में उन्होंने बतलाया

कि ये श्रीधर के सेवक हैं? वह अपने शस्त्रों को उस समय बाजार में ही छोड़कर यहाँ आया था, फिर भी उसने बिना शस्त्रों के ही उन्हें भीतर जाने से रोक दिया। परन्तु जब वे बलपूर्वक भीतर जाने को उद्यत हुए तब व्याल हाथी के बाँधने के खम्भे को उखाड़कर सिंह के समान दहाड़ते हुए उनसे युद्ध करने लगा। उस कोलाहल को सुनकर जब तक नागकुमार बाहर आया तब तक व्याल उन सबको नष्ट कर चुका था। उसने कुमार को नमस्कार किया। इस दृश्य को देखकर नागकुमार को बहुत आश्चर्य हुआ। वह व्याल का आलिंगन करते हुए उसे हाथ पकड़ कर भवन के भीतर ले गया। इधर श्रीधर ने जब उन सुभटों के मारे जाने का समाचार सुना तो वह सेना के साथ नागकुमार से स्वयं युद्ध करने के लिये निकल पड़ा। तब व्याल के साथ नागकुमार भी युद्ध के लिये उद्यत हो गया। तब नयंधर मन्त्री ने राजा से प्रार्थना की कि हे देव! इन दोनों में से किसी एक को निकाल देना चाहिए। तब राजा ने कहा कि 'ठीक है श्रीधर को निकाल दो।' इस पर मन्त्री ने कहा कि नहीं, वह पुण्यहीन है। यदि वह देशान्तर को जायेगा तो आपकी अपकीर्ति होगी। किन्तु नागकुमार चूँकि पुण्यवाला और सुन्दर है, अतएव वही बाहर भेजा जावे। इस पर राजा की सम्मति पाकर मन्त्री ने नागकुमार से कहा कि तुम घर में ही शूर हो। नहीं तो देशान्तर को क्यों नहीं जाते हो, पिता के समान भाई के साथ युद्ध क्यों करते हो? यह सुनकर नागकुमार बोला कि वही मुझे मारने के लिये उद्यत हुआ है, इसमें मेरा क्या दोष है? वह युद्ध की हठ को छोड़कर यदि अपने स्थान को वापिस जाता है तो मैं देशान्तर को चला जाता हूँ, अन्यथा फिर युद्ध करूँगा। इस पर मन्त्री श्रीधर के पास जाकर उससे बोला कि हे मूर्ख! तुझे अपनी शक्ति का परिज्ञान नहीं है क्या? उसके एक ही सेवक ने तेरे पाँच सौ सहस्रभटों को मार डाला है। तू उसके साथ कैसे युद्ध करेगा? इसलिये तू व्यर्थ प्राण न देकर अपने स्थान को वापिस चला जा। इस प्रकार अनेक वचनों के द्वारा समझाकर मन्त्री ने श्रीधर को वापिस किया।

तत्पश्चात् प्रतापंधर माता को समझा बुझाकर अपनी दोनों पत्नियों और व्यालादिकों के साथ वहाँ से निकलकर क्रम से उत्तर मथुरा

पहुँचा। वहाँ नगर के बाहर पड़ाव डालकर, व्याल नीलगिरि हाथी को पानी पिलाने के लिये गया। उधर नागकुमार भद्र हाथी पर चढ़कर कुछ सेवकों के साथ नगर को देखने के लिये उसके भीतर प्रविष्ट हुआ। वह राजमार्ग से जाता हुआ बीच में देवदत्ता नाम की वेश्या के घर की शोभा को देखकर उसके भीतर चला गया। वह भी यथायोग्य आदर के साथ उसे भीतर ले गयी। नागकुमार वहाँ कुछ समय तक स्थित रहा। तत्पश्चात् जब वह देवदत्ता को यथायोग्य सम्मान देकर व सन्तुष्ट करके वहाँ से जाने लगा तब वेश्या ने उससे कहा कि हे देव! राजप्रासाद के समीप में न जाना। नागकुमार के द्वारा इसका कारण पूछने पर देवदत्ता बोली- कन्या कुण्डलपुर के स्वामी जयवर्मा और गुणवती के एक सुशीला नाम की पुत्री है। उसे जब सिंहपुर में हरिवर्मा को देने के लिये लाया जा रहा था तब इस नगर के राजा दुष्टवाक्य ने उसे जबरन पकड़ लिया। परन्तु उसने उसकी इच्छा पूरी नहीं की। तब उसने उसे अपने भवन के बाहर बन्दीगृह में रख दिया। वह जिस-जिस राजा को देखती है उस उससे अपने को मुक्त कराने के लिये कहती है। उसके करूणापूर्ण आक्रन्दन को सुनकर उसके छुड़ाने का हठ करने पर अनिष्ट हो सकता है। इसीलिये मैं तुम्हें वहाँ जाने से रोक रही हूँ। यह सुनकर नागकुमार उससे वहाँ न जाने के लिये कह करके भी वहाँ चला ही गया। तब उसको देखकर वह (सुशीला) बोली कि हे भ्रात! यह दुष्टवाक्य राजा अन्यायपूर्वक मेरा निग्रह करा रहा है। मुझे उसके बन्धन से मुक्त करा दीजिये। यह सुनकर नागकुमार ने कहा कि हे बहिन! मैं तुम्हें छुड़ा देता हूँ। यह कहकर उसने बन्दीगृह के पहरेदारों को हटाकर उक्त पुत्री को बन्धनमुक्त करते हुए अपने रक्षकों को दे दिया। इस समाचार को सुनकर दुष्टवाक्य सेना के साथ आकर युद्ध में प्रवृत्त हो गया। इस प्रकार से उन दोनों में भयानक युद्ध हुआ। वह युद्ध चल ही रहा था कि किसी ने जाकर उसकी वार्ता व्याल से कह दी। तब व्याल नीलगिरि हाथी के ऊपर चढ़कर अपने नाम को लेता हुआ दुष्टवाक्य के सामने आया। तब वह अपने स्वामी व्याल को देखकर नम्रीभूत हो गया। तत्पश्चात् व्याल ने उसे अपने स्वामी (नागकुमार) के पैरों में झुकाते हुए नागकुमार का परिचय दिया। तब जयन्धर का पुत्र वह नागकुमार

महाविभूति के साथ राजभवन में प्रविष्ट होकर सुखपूर्वक स्थित हो गया। उसने सुशीला को सिंहपुर पहुँचा दिया।

एक समय नागकुमार व्याल के साथ क्रीड़ा करने के लिये उद्यान में गया। वहाँ उसने हाथ में वीणा को लिये हुए कुछ कुमारों को देखकर उनसे पूछा कि आप लोग कौन हैं और कहाँ से आये हैं? तब उनमें से एक ने उत्तर दिया कि मैं सुप्रतिष्ठपुर के स्वामी शक और विनयवती का पुत्र हूँ। नाम मेरा कीतिवर्मा है। मैं वीणा बजाने में अतिशय प्रवीण हूँ। ये मेरे पाँच सौ शिष्य हैं। काश्मीर के राजा नन्द और धारिणी के त्रिभुवनरति नाम की एक कन्या है। उसने यह प्रतिज्ञा की है कि जो मुझे वीणा बजाने में जीत लेगा वह मेरा पति होगा। उसकी इस प्रतिज्ञा का विचार करके मैं वाद की इच्छा से वहाँ गया था। परन्तु उसने मुझे जीत लिया है। इस वृत्तान्त को सुनकर नागकुमार ने उन्हें विदा कर दिया और स्वयं काश्मीर जाने के लिए उद्यत हो गया। यद्यपि नागकुमार ने व्याल को वहीं पर रहने के लिए प्रेरणा दी थी, परन्तु वह उसके साथ ही गया। वह दुष्टवाक्य को ही वहाँ नियुक्त करता गया। काश्मीर में जाकर नागकुमार ने उक्त कन्या को वीणा वादन में जीत कर उसके साथ विवाह कर लिया। फिर वह कुछ दिन वहाँ ही सुखपूर्वक स्थित रहा।

एक बार जब नागकुमार सभा में स्थित था तब वहाँ अनेक देशों में परिभ्रमण करने वाला एक वैश्य आया। उससे नागकुमार ने पूछा कि क्या तुमने कहीं पर कोई आश्चर्य देखा है? उसने उत्तर दिया– रम्यक नाम के वन में त्रिश्रृंग पर्वत के ऊपर स्थित भूतिलक जिनालय के आगे प्रतिदिन मध्यान्ह के समय में एक भील चिल्लाया करता है। वह किस कारण से चिल्लाया करता है, यह मैं स्वयं नही जानता हूँ। यह सुनकर नागकुमार त्रिभुवनरति को वहीं छोड़कर उक्त पर्वत पर गया। वह वहाँ भूतिलक जिनालय में जिनेन्द्र की पूजा व स्तुति करके बैठा ही था कि इतने में उसे चिल्लाने की ध्वनि सुनायी दी। इससे नागकुमार ने उसका निश्चय करके उसे बुलाया और उससे इस प्रकार आक्रन्दन करने का कारण पूछा। वह बोला– हे देव! मैं रम्यक नाम का भीलों का स्वामी हूँ और यहीं पर रहता हूँ। मेरी स्त्री को भीमराक्षस बलपूर्वक ले गया है और कालगुफा में स्थित है। मेरे आक्रन्दन करने का यही कारण है।

तब नागकुमार ने उससे कहा कि वह गुफा मुझे दिखलाओ। तदनुसार उसने वह गुफा नागकुमार को दिखला दी। तब वह व्याल के साथ उस गुफा के भीतर गया। उसको देखकर भीम राक्षस ने सामने आते हुए उसे प्रणाम किया। फिर वह चन्द्रहास खड्ग, नागशय्या और कामकरण्डक निधि को उसके आगे रखकर बोला कि इनके योग्य तुम ही हो। मुझे केवली भगवान ने कहा था कि तुम भील के करुणाक्रन्दन को सुनकर यहाँ प्रवेश करोगे। इसीलिये मैं उसी भील की स्त्री को यहाँ ले आया था। यह कहकर उस राक्षस ने उस भील की स्त्री को भी नागकुमार के लिए समर्पित कर दिया। तत्पश्चात् नागकुमार ने 'मेरे स्मरण करने पर इन चन्द्रहासादिकों को लाना' यह कहते हुए उन्हें उस राक्षस को ही दे दिया। फिर गुफा से बाहर निकलकर नागकुमार ने भील की स्त्री को उसके लिए देते हुए उससे पूछा कि यहाँ रहते हुए तुमने क्या कोई आश्चर्य देखा है? इसके उत्तर में वह बोला-

यहाँ एक काँचनगुफा है। वहाँ तीनों सन्ध्याकालों में वादियों का शब्द होता है। वह कैसे होता है, मैं उसके कारण को नहीं जानता हूँ। तत्पश्चात् नागकुमार के कहने पर उसने उसे वह गुफा भी दिखला दी। तब नागकुमार व्याल के साथ उस गुफा के भीतर गया। उसे देखकर सुदर्शना नाम की यक्षी उसके सामने आयी। उसने उसे दिव्य आसन पर बैठाते हुए नागकुमार से निवेदन किया- हे नाथ! विजयार्थ पर्वत की दक्षिण श्रेणी में अलका नाम का नगर है। वहाँ विद्युत्प्रभ नामक राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम विमलप्रभा था। इनके एक जितशत्रु नाम का पुत्र था। उसने इस गुफा में स्थित होकर विद्याओं को बारह वर्षों में सिद्ध किया था। विद्याओं के सिद्ध हो जाने पर उसने देवदुंदुभी के शब्द को सुनकर कारण ज्ञात करने के लिये अवलोकिनी विद्या को भेजा। उसने वापिस आकर जितशत्रु से निवेदन किया कि हे देव! सिद्धविवर गुफा में मुनिराज को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। इसीलिये वहाँ देव आये हैं। यह ज्ञात करके जितशत्रु केवली भगवान की वन्दना के लिये गया। वहाँ जाकर उसने केवली भगवान की पूजा करके सन्तुष्ट होते हुए उनसे दीक्षा देने की प्रार्थना की। तब हम लोगों ने उससे कहा कि तुमने हमें कष्टपूर्वक सिद्ध किया है, इसलिये हमारे कुछ फल

को भोगकर पीछे तप करना। परन्तु जब उसने यह स्वीकार नहीं किया तब हम लोगों ने उससे कहा कि तो फिर हम लोगों को किसी दूसरे के लिए देकर तप को ग्रहण करो। तब उसने केवली से पूछ कर हमसे कहा कि आगामी काल में यहाँ इस कांचन गुफा के भीतर नागकुमार आवेगा, तुम सब उसकी सेवा करना। यह कहकर उसने दीक्षा ग्रहण कर ली। वह तपश्चरण करके मोक्ष को प्राप्त हो चुका है। तब से हम लोग यहाँ स्थित हैं। तुम हमारे स्वामी हो, अतः हमें स्वीकार करो। तब नागकुमार ने उन्हें स्वीकार करके उनसे कहा कि 'जब मैं स्मरण करूँ तब तुम आना।' यह कहते हुए उसने गुफा से निकलकर उस भील से पुनः पूछा कि क्या तुमने और भी कोई आश्चर्य देखा है? इस पर भील ने उसे बेताल गुफा दिखलायी। उसके द्वार पर तलवार को घुमाता हुआ बेताल स्थित था। वह जो भी उस गुफा के भीतर जाता था उसे मार डालता था। नागकुमार ने उसे देखकर उसके प्रहार को बचाते हुए पाँव पकड़े और उसे नीचे पटक दिया। उसके नीचे नागकुमार को निधियों के साथ एक आज्ञापत्र दिखा। उसने जब उस आज्ञापत्र को पढ़ा तो उसमें लिखा था कि जो इस बेताल को गिरावेगा वह इन निधियों का स्वामी होगा। तब वह उन निधियों की रक्षा का भार विद्याओं को सौंपकर वहाँ से बाहर निकला। फिर उसने उस व्याध से पूछा कि क्या और भी कोई आश्चर्य देखा है अथवा नहीं? व्याध ने उत्तर दिया 'नहीं'।

तत्पश्चात् नागकुमार जिनदेव को प्रणाम करके वहाँ से निकला और गिरिनगर के समीप एक वट वृक्ष के नीचे बैठ गया। उसी समय उस वृक्ष के प्ररोह (जटायें) निकल आये। नागकुमार उन प्ररोहों का आश्रय ले झूलने लगा। उसी समय वट वृक्ष के रक्षक ने आकर नागकुमार को प्रणाम करते हुए इस प्रकार निवेदन किया– हे देव! यहाँ गिरिकूट नगर के स्वामी वनराज और वनमाला के एक लक्ष्मीमती नाम की पुत्री है। वह अतिशय रूपवती है। एक बार राजा ने उसके वर के सम्बन्ध में किसी अवधिज्ञानी मुनिराज से पूछा था। उत्तर में मुनिराज ने कहा था कि जिसके देखने से इस प्रदेश में स्थित वट वृक्ष के प्ररोह निकल आवेंगे वह तुम्हारी पुत्री का वर होगा। मुनि श्री के इस प्रकार कहने पर राजा ने उसी समय से उस निर्दिष्ट पुरुष की खोज के लिये

मुझे यहाँ नियुक्त किया है। यह निवेदन करके उक्त पुरुष हाथ में ध्वजा को लेकर अपने स्वामी के पास गया और उससे नागकुमार के आने का समाचार कह दिया। तब वनराज ने आकर उसको प्रणाम किया। फिर उसने उसे विभूति के साथ नगर में ले जाकर अपनी पुत्री दे दी। नागकुमार वहाँ स्थित ही था कि उस समय उस नगर के उद्यान में जय और विजय नाम के दो मुनिराज आकर विराजमान हुए। तब नागकुमार ने नमस्कार करके उनसे पूछा कि मुझे वनराज के कुल के विषय में सन्देह है। अतएव मैं यह जानना चाहता हूँ कि उसका कुल कौन सा है। उत्तर में जय श्री मुनि बोले- यहाँ ही पुण्डवर्धन नगर में अपराजित नामक राजा राज्य करता था। उसके सत्यवती और वसुन्धरा नाम की दो पत्नियाँ थीं। इनसे क्रमशः उसके भीम और महाभीम नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। अपराजित ने भीम को राज्य देकर दीक्षाग्रहण कर ली। इस प्रकार तपश्चरण करके वह मुक्ति को प्राप्त हुआ। इधर भीम को महाभीम ने नगर से बाहर निकाल दिया और नगर को अपने स्वाधीन कर लिया। तब महाभीम ने वहाँ से आकर इस नगर को बसाया है। वहाँ महाभीम के भीमांक नाम का पुत्र हुआ और उसके भी सोमप्रभ नाम का। वह महाभीम का नाती है और इस समय उस पुण्डवर्धन नगर में राज्य कर रहा है। यह वनराज भीम का नाती है जो सोमवंश में उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार जय मुनीन्द्र से वनराज की पूर्व परम्परा को सुनकर नागकुमार को बहुत हर्ष हुआ। तत्पश्चात् वह उन्हें नमस्कार करके घर को वापिस गया।

अन्य समय में जब नागकुमार ने शिला पर खोदे गये वनराज के कुटुम्ब के शासन को- उसकी वंशपरम्परा को देखा-तब उसने व्याल को बुलाकर यह आदेश दिया कि पुण्डवर्धन नगर में जैसे भी सम्भव हो वनराज के शासन की व्यवस्था करो। तब वह 'महाप्रसाद' कहकर पुण्डवर्धन नगर को चला गया। वहाँ जाकर और सोमप्रभ को देखकर वह उसके आगे स्थित होता हुआ बोला कि हे राजन्! नागकुमार ने मुझे आपके लिये यह आदेश देकर भेजा है कि तुम वनराज को राज्य देकर उसके अनूकूल प्रवृत्ति करो, अन्यथा फिर क्या होगा सो तुम ही समझो। यह सुनकर सोमप्रभ बोला कि क्या नागकुमार मेरा शासक है? इसके

उत्तर को सुनकर सोमप्रभ ने कहा कि यदि ऐसा है तो तुम जाकर नागकुमार से वनराज के साथ युद्धभूमि में उपस्थित होकर उसे राज्य दिलाने के लिये कह दो। इस पर वहाँ से निकाल देने के लिए उठे थे उन्हें व्याल ने पृथ्वी पर पटक कर मार डाला। यह देखकर जब सोमप्रभ स्वयं उसे तलवार से मारने के लिए उद्यत हुआ तब व्याल ने उसे पकड़कर बाँध लिया और अपने स्वामी नागकुमार के पास विज्ञप्ति पत्र भेज दिया। तब नागकुमार अपने ससुर वनराज के साथ पुण्डर्वधन नगर में आकर राजभवन में प्रविष्ट हुआ। फिर नागकुमार ने सोमप्रभ को बन्धनमुक्त करते हुए उसके लिए पुत्र के समान आज्ञाकारी होकर रहने का आदेश दिया। इस पर सोमप्रभ बोला कि मैं गृहस्थाश्रम से सन्तुष्ट हो चुका हूँ, अतएव अब आप मुझे मन, वचन एवं काय से क्षमा करें। इस प्रकार निष्कपटभाव से कहकर वह यमधर मुनिराज के पास गया और बहुतों के साथ दीक्षित हो गया। तत्पश्चात् वह समस्त श्रुत का ज्ञाता और संघ का प्रमुख होकर विहार करता हुआ प्रतिष्ठपुर में पहुँचा। वहाँ जाकर वह उद्यान में ठहर गया। वहाँ अच्छेद्य और अभेद्य नाम के दो राजा थे। उनके लिये यह आदेश था– इन दोनों के पिता का नाम जयवर्मा और माता का नाम जयावती था। एक बार उनके पिता ने अपने उद्यान में स्थित पिहितास्रव मुनिराज से पूछा कि मेरे दोनों पुत्र, जो कि कोटिभट हैं, स्वतन्त्र रहकर राज्य करेंगे अथवा किसी दूसरे की सेवा करके? मुनिराज बोले कि जो महापुरूष सोमप्रभ को पुण्डवर्धन नगर से निकालकर वनराज के लिए राज्य दिलावेगा वह इन दोनों का स्वामी होगा। यह सुनकर राजा जयवर्मा को वैराग्य उत्पन्न हुआ, अतः उसने उन दोनों पुत्रों को राज्य देकर दीक्षा धारण कर ली। वह तपश्चरण करके मुक्ति को प्राप्त हुआ। वे दोनों (अच्छेद्य व अभेद्य) उस समय सोमप्रभ मुनिराज की वन्दना के लिए उद्यान में आये थे, जब उन्हें सोमप्रभ के उपर्युक्त वृत्तान्त ज्ञात हुआ तब वे दोनों मंत्री को राज्य कार्य में नियुक्त करके अपने स्वामी का दर्शन करने के लिए पुण्डवर्धन पुर को गये और वहाँ नागकुमार को देखकर उसके सेवक हो गये।

दूसरे समय नागकुमार लक्ष्मीमति को वहीं पर छोड़कर व स्वयं व्यालादियों के साथ जाकर जालान्तिक नामक वन में पहुँचा। वहाँ वह

वटवृक्ष की छाया में बैठ गया। तब उसके पुण्य के प्रभाव से उक्त वन में विषमय आम्रवृक्ष के फल उसके परिवार के लिए अमृत स्वरूप से परिणत हो गये। उस समय पाँच सौ सहस्रभटों ने आकर नागकुमार को नमस्कार करते हुए उससे निवेदन किया कि हे देव! एक समय हम सबने किसी अवधिज्ञानी मुनिराज से पूछा था कि हम लोग किसकी सेवा करेंगे? उसका उत्तर देते हुए उन मुनिराज ने कहा था कि जालान्तिक वन में विषमय आम्र के फल जिस महापुरुष के लिए अमृत के समान रस देंगे उसकी तुम सब सेवा करोगे। मुनिराज के इन वचनों को सुनकर हम सब तभी से यहाँ स्थित हैं। उन मुनिराज ने जिस विशिष्ट पुरुष का संकेत किया था वह तुम ही हो, इसलिए हम सब तुम्हारे सेवक हैं। तब नागकुमार ने यथायोग्य सम्मान देकर उन सबको सन्तुष्ट किया। तत्पश्चात् वह अन्तरपुर को गया। वहाँ का राजा सिंहरथ उसे विभूति के साथ नगर के भीतर ले गया। वह वहाँ पहुँचकर सुखपूर्वक ठहर गया। इसी समय सिंहरथ ने उससे प्रार्थना की कि हे देव! सुराष्ट्र देश के भीतर गिरिनगर नाम का एक नगर है। वहाँ हरिवर्मा नाम का राजा राज्य करता है। उसकी पत्नी का नाम मृगलोचना है। इनके एक गुणवती नाम की पुत्री है राजा ने उसे अपने भान्जे नागकुमार के लिए देना स्वीकार किया था। परन्तु उसकी याचना सिंधुदेश के राजा अतिशय प्रतापी चण्डप्रद्योतन ने की थी। वह स्वयं तो कोटिभट है ही; साथ में उसके सहायक जय, विजय, सूरसेन, प्रवरसेन और सुमति नाम के अन्य कोटिभट भी हैं। इस पर जब हरिवर्मा ने उससे यह कहा कि वह पुत्री नागकुमार के लिए दी जा चुकी है तब वह वहाँ जाकर हरिवर्मा के नगर को घेरकर स्थित हो गया है। हरिवर्मा मेरा मित्र है, इसीलिए उसने मुझे पत्र भेजा है। अतएव मैं उसकी सहायता करने के लिए जा रहा हूँ। जब तक मैं यहाँ वापिस नहीं आ जाता हूँ तब तक आप यहाँ ही रहें। यह सुनकर नागकुमार कुछ हँसा और सिंहरथ के साथ गिरिनगर के लिए चल दिया। सिंहरथ के साथ नागकुमार के आने के समाचार को जानकर चण्डप्रद्योतन ने उन्हें रोकने के लिए जय और विजय को भेजा। उन दोनों के ऊपर आक्रमण करने के लिए नागकुमार ने पाँच सौ सहस्रभटों को आज्ञा दी। तब वे उन दोनों को बाँधकर ले

आये और नागकुमार को समर्पित कर दिया। जय और विजय के बाँधे जाने के समाचार को जानकर चण्डप्रद्योतन को बहुत क्रोध आया। तब वह तीन व्यूहों को रचकर स्वयं भी युद्धभूमि में उपस्थित हुआ। उस समय नागकुमार अच्छेद्य और अभेद्य को सूरसेन और प्रवरसेन के साथ, तथा व्याल को सुमति के साथ युद्ध करने की आज्ञा देकर स्वयं चण्डप्रद्योतन के सामने जा डटा। इस महायुद्ध में नागकुमार आदि ने अपने अपने शत्रुओं को सामना करके उन्हें बाँध लिया। जब सब समाचार हरिवर्मा को ज्ञात हुआ तब वह नागकुमार का स्वागत करने के लिये आधे मार्ग तक आया और उसे चण्डप्रद्योतन आदि को के साथ नगर के भीतर ले गया। फिर उसने उस का विवाह शुभ मुहूर्त में गुणवती के साथ कर दिया। तत्पश्चात् नागकुमार ने चण्डप्रद्योतन आदि को छोड़कर और उन्हें वस्त्रादि देकर निश्चिन्त करते हुए उनके देश को वापिस भेज दिया। वह स्वयं ऊर्जयन्त पर्वत के ऊपर नेमि जिनेन्द्र भगवान की वन्दना करने के लिए गया। जब वह उनकी वन्दना करके गिरिनगर वापिस आ रहा था तब किसी ने विज्ञप्ति पत्र देकर इस प्रकार निवेदन किया-

हे देव! वत्स देश के भीतर कौशाम्बी नाम एक नगर है। वहाँ शुभचन्द्र राजा राज्य करता है। रानी का नाम सुखावती है। उनके स्वयंप्रभा, सुप्रभा, कनकप्रभा, कनकमाला, नन्दा, पद्मश्री और नागदत्ता ये सात पुत्रियाँ हैं। इस प्रकार से वह शुभचन्द्र राजा सुख से स्थित था। परन्तु उधर विजयार्ध की दक्षिण श्रेणि में जो रत्नसंचयपुर है उसमें सुकण्ठ नाम का राजा राज्य करता था। उसे उसके शत्रु मेघवाहन ने उस नगर से निकाल दिया। तब वह कौशाम्बीपुरी के बाहर एक अलंध्यपुर का निर्माण करके वहाँ रहने लगा। उसने शुभचन्द्र से उन कन्याओं की याचना की। परन्तु उसने उसके लिए देना स्वीकार नहीं किया। इससे सुकण्ठ ने उसको मार डाला है। परन्तु उन कन्याओं ने उससे कह दिया है कि तुमने हमारे पिता को मार डाला है, अतएव जो पुरुष तुम्हारे सिर का छेदन करेगा वही हमारा पति होगा। इससे क्रोधित होकर उसने उन्हें बन्दीगृह के भीतर रख दिया। उनमें से नागदत्ता पुत्री किसी प्रकार से भागकर हस्तिनापुर के राजा अभिचन्द्र के पास पहुँची। वह कुरुजांगल

देश के अन्तर्गत हस्तिनापुर का राजा व उस नागदत्ता का चाचा है। उससे जब नागदत्ता ने उक्त घटना को कहा तब अभिचन्द्र ने मुझे आपके पास भेजा है। यह सुनकर नागकुमार ने मामा को गुणवती के {गुणवती को मामा के} नगर में भेज कर समस्त विद्याओं को बुलाया और तब वह आकाशमार्ग से कौशाम्बीपुर जा पहुँचा। वहाँ जाकर नागकुमार ने सुकण्ठ के पास दूत को भेजा। उसने वहाँ जाकर उससे कहा कि हे विद्याधर! नागकुमार ने तुम्हें यह आदेश दिया है कि तुम शीघ्र ही उन कन्याओं को छोड़कर मेरे पास भेज दो, अन्यथा तुम ही जानो। दूत के इन वचनों से क्रोधित होकर सुकण्ठ ने उसे वहाँ से निकाल दिया। तत्पश्चात् वह युद्ध की इच्छा से आकाश में स्थित हो गया। तब उसका पुत्र वज्रकण्ठ नागकुमार की शरण में आ गया। इससे नागकुमार उसे रत्नसंचयपुर में ले गया और मेघवाहन को मारकर वहाँ का राजा बना दिया। उस समय नागकुमार वज्रकण्ठ की बहिन रुक्मिणी, अभिचन्द्र की पुत्री चन्द्राभा और शुभचन्द्र की उन सात कन्याओं के साथ विवाह करके सुखपूर्वक हस्तिनागपुर में स्थित हुआ।

इधर महाबल जब पाटलीपुत्र में स्थित था तब पाण्डु देश के भीतर दक्षिण मथुरा में मेघवाहन नाम का राजा राज्य कर रहा था। उसकी पत्नी का नाम जयलक्ष्मी था। इनके एक श्रीमती नाम की पुत्री थी। उसने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो मृदंग बजाकर मुझे नृत्य में अनुरंजित करेगा वह मेरा पति होगा। श्रीमती की धाय के भी एक कामलता नाम की पुत्री थी। वह कामदेव के समान भी सुन्दर पुरुष को नहीं चाहती थी। यह जब महाव्याल ने सुना तब वह पाटलीपुत्र से दक्षिण मथुरा को चल दिया। वहाँ नगर के भीतर पहुँचकर वह बाजार में ठहर गया। उधर उस दक्षिण मथुरा के राजा मेघवाहन के कामांक नाम का एक कोटिभट भानजा था। उसने मामा के पास जाकर उससे कामलता को माँगा। तदनुसार उसने उसे दे भी दिया। परन्तु कामलता ने स्वयं उसे स्वीकार नहीं किया। तब कामांक उसे बलपूर्वक ले जा रहा था। उस समय कामलता महाव्याल को देखकर उसके ऊपर आसक्त हो गई। तब उसने महाव्याल से अपनी रक्षा करने की प्रार्थना की। इस पर महाव्याल ने कामांक से उस कन्या को छोड़ देने के लिए कहा।

परन्तु उसने उसे नहीं छोड़ा। वह बोला कि क्या तुम मुझसे इस कन्या को छुड़ाओगे? इसके उत्तर में वह 'हाँ छुड़ाऊँगा' कहकर तलवार को ग्रहण करता हुआ कामांक के सामने स्थित हो गया। उधर कामांक भी उसी प्रकार से युद्ध के लिए उद्यत हो गया। तब दोनों में घोर युद्ध हुआ। अन्त में महाव्याल ने कामांक को मार डाला। तब मेघवाहन भयभीत होकर महाव्याल के समक्ष आया और उसे अपने भवन के भीतर ले गया। फिर उसने उसे कामलता दे दी। इस प्रकार महाव्याल कामलता के साथ वहाँ सुख से स्थित हुआ।

अवन्ति देश के अन्तर्गत उज्जयिनी नगरी में जयसेन नाम का राजा राज्य करता था। रानी का नाम जयश्री था। उनके एक मेनकी नाम की पुत्री थी जो किसी भी पुरुष को नहीं चाहती थी। यह सुनकर महाव्याल उज्जयिनी गया। उसे देखकर मेनकी ने अपने भाई के रूप में सम्बोधित किया। इससे सन्तुष्ट होकर महाव्याल हस्तिनापुर में व्याल के समीप गया, वहाँ उसने पट पर नागकुमार के रूप को लिखा और फिर उसे लाकर मेनकी को दिखलाया। उसे देखकर मेनकी नागकुमार के विषय में आसक्त हो गई। तत्पश्चात् महाव्याल फिर से हस्तिनापुर गया। वहाँ वह व्याल के साथ नागकुमार से मिला और अपना वृत्तान्त सुनाकर उसका सेवक हो गया। तब प्रतापधंर ने उज्जयिनी जाकर मेनकी के साथ विवाह कर लिया। वह वहाँ सुख से स्थित हुआ। एक समय व्याल ने नागकुमार से श्रीमती की प्रतिज्ञा का वृत्तान्त कहा। तब नागकुमार ने वहाँ जाकर श्रीमती को उसकी प्रतिज्ञा के अनुसार मृदंगवादन से अनुरंजित किया और उसके साथ विवाह कर लिया।

तत्पश्चात् वह वहाँ सुखपूर्वक काल यापन कर ही रहा था कि इतने में एक वैश्यों का स्वामी राजा के सभाभवन में उपस्थित हुआ। उससे नागकुमार ने पूछा कि क्या तुमने कहीं पर कोई कौतुक देखा है या नहीं? उसने उत्तर में कहा कि समुद्र के भीतर तोयावली द्वीप में एक सुवर्णमय चैत्यालय है। उसके आगे प्रतिदिन मध्यान्ह के समय में दण्डधारी पुरुषों से रक्षित पाँच सौ कन्यायें करुण आक्रन्दन करती हैं। वे इस प्रकार आक्रन्दन क्यों करती है, यह मैं नहीं जानता हूँ। यह सुनकर नागकुमार विद्या के प्रभाव से चार कोटिभटों के साथ वहाँ गया।

वह वहाँ पहुँच कर जिनेन्द्र देव की पूजा और स्तुति करके बैठा ही था कि इतने में उसे उन कन्याओं का आक्रन्दन सुनाई दिया। तब उसने उनको बुलाकर पूछा कि तुम इस प्रकार से आक्रन्दन क्यों करती हो? इस पर उन में से धरणि सुन्दरी बोली- इस द्वीप के भीतर धरणितिलक नाम का नगर है। वहाँ त्रिरक्ष नाम का विद्याधर रहता है। हम सब उसकी पाँच सौ पुत्रियाँ हैं। हमारे पिता के वायुवेग नाम का भानजा है जो अतिशय कुरूप है। उसने पिता के पास जाकर हम सबको माँगा था परन्तु पिता ने उसके लिए हमें देना स्वीकार नहीं किया। तब उसने राक्षसी विद्या को सिद्ध करके उसके प्रभाव से युद्ध में हमारे पिता को मार डाला तथा रक्ष और महारक्ष नाम के हमारे दो भाइयों को तलघर में रख दिया है। वह हमारे साथ विवाह करना चाहता है। परन्तु हम लोगों ने कह दिया है कि जो तुझे मार डालेगा वह हमारा पति होगा। इस पर उसने 'उस मेरे प्रतिशत्रु को तुम छह मास के भीतर ले आओ' यह कहकर हमें बन्दीगृह में रख दिया है। यहाँ चूँकि देव और विद्याधर जिनवन्दना के लिए आया करते हैं, इसीलिए हम लोग यहाँ आक्रन्दन करती हैं। इस घटना को सुनकर नागकुमार ने वायुवेग के रक्षकों को हटाकर अपने रक्षकों को वहाँ नियुक्त कर दिया और स्वयं युद्ध के लिए आकाश में स्थित हो गया। तब वायुवेग ने भी आकाश में स्थित होकर नागकुमार के साथ भयानक युद्ध किया। इस प्रकार बहुत समय के बीतने पर नागकुमार ने उसे चन्द्रहास खड्ग से मार डाला। फिर उसने रक्ष और महारक्ष को राज्य देकर उन पाँच सौ कन्याओं के साथ विवाह कर लिया। तत्पश्चात् पाँच सौ सहस्रभट नागकुमार को प्रणाम करके उसके सेवक हो गये। जब नागकुमार ने उनसे इस प्रकार सेवक हो जाने का कारण पूछा तो उन्होंने बतलाया कि एक समय हमने अवधिज्ञानी मुनिराज से पूछा था कि हमारा स्वामी कौन होगा। उसके उत्तर में मुनिराज ने कहा, जो वायुवेग को मार डालेगा वह तुम सब का स्वामी होगा। तब से हम लोग यहाँ पर स्थित हैं। आपने चूँकि उस वायुवेग को मार डाला है अतएव हम सब आपके सेवक हो गये हैं।

तत्पश्चात् नागकुमार काँचीपुर को गया। उस पुर के राजा बल्लभ नरेन्द्र ने उसका पुत्री आदि को देकर सम्मान किया। तत्पश्चात् वह

कलिंग देश में स्थित दन्तपुर को गया। वहाँ के राजा का नाम चन्द्रगुप्त और उसकी पत्नी का नाम चन्द्रमती था। इनके मदनमंजूषा नाम की एक पुत्री थी। चन्द्रगुप्त ने नागकुमार को विभूति के साथ नगर में ले जाकर उसके लिए वह पुत्री दे दी। इसके पश्चात् वह उष्ट्र देश के भीतर स्थित त्रिभुवन तिलक नामक नगर को गया। वहाँ पर विजयंधर नाम का राजा राज्य करता था। रानी का नाम विजयावती था। इनके लक्ष्मीमती नाम की एक पुत्री थी राजा ने नागकुमार को विभूति के साथ नगर में ले जाकर उसके लिए उस पुत्री को दे दिया। वह नागकुमार के लिए अतिशय प्रीति का कारण हुई। वह वहाँ उसके साथ कुछ समय तक सुखपूर्वक स्थित रहा।

एक समय उस नगर के उद्यान में पिहितास्रव मुनिराज आये। नागकुमार मामा के साथ उनकी वन्दना के लिए गंया। वन्दना के पश्चात् उसने उनसे धर्मश्रवण किया। फिर उसने उनसे पूछा कि लक्ष्मीमती के ऊपर मेरे अतिशय प्रेम का कारण क्या है? उत्तर में वे इस प्रकार बोले– इसी द्वीप के भीतर अवन्ति देश में उज्जयिनी पुरी है। वहाँ कनकप्रभ नाम का राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम कनकप्रभा था उनके एक सुवर्णनाभ नाम का पुत्र था। वह दानादि धर्मकार्यों को करके समाधिपूर्वक शरीर को छोड़कर महाशुक्र स्वर्ग में महर्धिक देव हुआ। इसी जम्बू द्वीप सम्बन्धी ऐरावत क्षेत्र के आर्यखण्ड में एक वीतशोक नाम का नगर है। वहाँ महेन्द्रविक्रम राजा राज्य करता था। इसी नगर में एक धनदत्त नाम का वैश्य रहता था। उसकी पत्नी का नाम धनश्री था। उपर्युक्त देव महाशुक्र स्वर्ग से च्युत होकर इन दोनों के नागदत्त नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। उसी पुर में एक वसुदत्त नाम का दूसरा भी वैश्य रहता था। उसकी पत्नी का नाम वसुमती था। इनके एक नागवसु नाम की पुत्री थी। उसके साथ नागदत्त ने विवाह किया था। एक बार उस नगर के उद्यान में गुप्ताचार्य नाम के मुनिराज आये। राजा आदि उनकी वन्दना के लिए गये। उनकी वन्दना के पश्चात् धर्मश्रवण करके नागदत्त ने उनसे पंचमी के उपवास को ग्रहण किया। इससे उसको रात्रि में कष्ट हुआ। तब पिता आदि कुटुम्बी जनों ने अनेक प्रकार से उसके उपवास को छुड़ाने का प्रयत्न किया। किन्तु उसने उसे नहीं छोड़ा। तत्पश्चात् रात्रि

के पिछले पहर में समाधिपूर्वक शरीर को छोड़कर वह सौधर्म स्वर्ग के अन्तर्गत सूर्यप्रभ विमान में देव उत्पन्न हुआ। फिर वह भवप्रत्यय अविध ाज्ञान से उस सब वृतान्त को जानकर वहाँ आया। तब उसने शोकसन्तप्त उन बन्धुजनों को संबोधित किया। तत्पश्चात् वह स्वर्ग को वापिस चला गया। नागदत्त की पत्नी नागवसू ने भी दीक्षा लेकर उसी की पत्नी होने का निदान किया था। तदनुसार वह उस देव की देवी हुई। वहाँ से च्युत होकर वह देव तुम और वह देवी लक्ष्मीमती हुई है। इस प्रकार अपने पूर्व भव के वृत्तान्त को सुनकर नागकुमार ने उन मुनिराज से पंचमी के उपवास की विधि को पूछा। उसकी विधि मुनिराज ने इस प्रकार बतलायी–

फाल्गुन, अषाढ़ ओर कार्तिक मास से शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को स्नानादि से शुद्ध होकर समीचीन मार्ग से भोजन (एकाशन) करे और उसी समय पंचमी के उपवास को भी ग्रहण कर ले। फिर उपवास के दिन समस्त अप्रशस्त व्यापारों को (कार्यो को) छोड़कर दिन को धर्मचर्चा में बितावे। साथ ही रागवर्धक शय्या (गादी व पलंग आदि) का परित्याग करके पारणा के दिन शक्ति के अनुसार सुपात्र के लिए दान देवे। तत्पश्चात् बन्धुजनों के साथ स्वयं पारणा को करे। इस प्रकार पाँच मासों से अधिक पाँच वर्षो तक अथवा पाँच महीनों तक ही प्रतिमास में उपवास को करके उद्यापन के समय पाँच चैत्यालयों अथवा पाँच प्रतिमाओं को कराकर कलश, चामर, ध्वजा, दीपिका, घण्टा और जयघण्टा आदिको पाँच पाँच–पाँच संख्या में प्रतिष्ठित कराकर जिनालय के लिए देना चाहिए। पाँच आचार्यों के लिए पुस्तक आदि को तथा आर्यिका, श्रावक और श्राविकाओं के लिए वस्त्रादि को देना चाहिए। इसके अतिरिक्त अपनी शक्ति के अनुसार दानादि के द्वारा प्रभावना करना भी योग्य है। उस व्रत के फल से प्राणी स्वर्गादि सुख का भोक्ता होता है। इस प्रकार पंचमी के उपवास की विधि को सुनकर नागकुमार ने लक्ष्मीमती आदि के साथ पंचमी–उपवास की विधि को ग्रहण कर लिया। तत्पश्चात् वह उस व्रत का परिपालन करता हुआ सुखपूर्वक स्थित हुआ।

इतने में जयंधर राजा ने नागकुमार को लाने के लिए उसके पास अपने मन्त्री नयंधर को भेजा। उसने आकर माता–पिता ने जो कुछ

सन्देश दिया था उस सबको नागकुमार से कह दिया। तब नागकुमार पूर्वपरिणीता पत्नियों को साथ लेकर आकाश मार्ग से अपने नगर में आ गया। उसको लेने के लिए पिता विभूति के साथ आधे मार्ग तक आया। प्रतापंधर पिता को प्रणाम करके जब तक पुर में प्रवेश करता है तब तक विशालनेत्रा पुत्र (श्रीधर) के साथ दीक्षा धारण कर लेती है। नागकुमार वहाँ प्रजा का अतिशय प्यारा होकर सुखपूर्वक रहने लगा। तत्पश्चात् एक दिन दर्पण में मुखावलोकन करते हुए जयंधर को शिर पर श्वेत बाल दिखा। इससे उसे भोगों की ओर से विरक्ति उत्पन्न हुई। तब उसने प्रतापंधर को राज्य देकर बहुत जनों के साथ पिहितास्रव मुनिराज के निकट में दीक्षा ग्रहण कर ली। पृथ्वी रानी ने भी श्रीमती आर्यिका जी के पास दीक्षा ग्रहण कर ली। वह जयंधर राजा मोक्ष को प्राप्त हुआ तथा पृथ्वी अच्युत स्वर्ग में देव हुई। इधर नागकुमार ने व्याल के लिए आधा राज्य देकर अच्छेद्य व अभेद्य के लिए कौशल, आभीर और मालव देशों को; महाव्याल के लिए गौड़ और वैदर्भ देशों को; सहस्रभटों के लिए पूर्व देश को, तथा अन्य जनों के लिए भी यथायोग्य देशों को दिया। उस समय वह नागकुमार महामण्डलेश्वर की विभूति से विभूषित हुआ। उसके आठ हजार रानियाँ थीं। इनमें से उसने लक्ष्मीमती, धरणिसुन्दरी, त्रिभुवनरति और गुणवती इन चार रानियों को महादेवी का पद प्रदान किया। लक्ष्मीमती के देव कुमार नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। वह भी पिता के समान महाप्रतापशाली था। इसके अतिरिक्त उसके और भी बहुत से पुत्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार नागकुमार ने आठ सौ वर्ष तक सुखपूर्वक राज्य किया। तत्पश्चात् वह एक दिन देखते ही देखते नष्ट होने वाले मेघ को देखकर भोगों से विरक्त हो गया। तब उसने देवकुमार पुत्र को राज्य देकर व्याल आदि कोटिभटों, सहस्रभटों, मुकुटबद्धों और मण्डलेश्वर आदि राजाओं के साथ अमलमति केवली के पास में दीक्षा धारण कर ली। लक्ष्मीमती आदि स्त्रियों के समूह ने भी पद्मश्री आर्यिका जी के समीप में दीक्षा ले ली। प्रतापंधर मुनिराज ने चौंसठ वर्ष तक तपश्चरण किया। उन्हें कैलाश पर्वत के ऊपर केवलज्ञान प्राप्त हुआ। उसी प्रकार व्याल, महाव्याल, अच्छेद्य और अभेद्य भी केवलज्ञानी हुए। नागकुमार केवली छ्यासठ वर्ष तक विहार करके उसी पर्वत से मुक्ति

को प्राप्त हुए। व्यालादि भी मुक्ति को प्राप्त हुए। वह नागकुमार नेमि जिनेन्द्र के देव तीर्थ में उत्पन्न हुआ था। उसका कुमार काल सत्तर (70) वर्ष, राज्यकाल आठ सौ (800) वर्ष, छद्मस्थकाल चौंसठ (64) वर्ष और केवलिकाल छ्यासठ (66) वर्ष प्रमाण था। इस प्रकार उसकी आयु एक हजार वर्ष प्रमाण थी। सहस्रभट आदि मुनिराज सौधर्म स्वर्ग को आदि लेकर सवार्थसिद्धि तक गये। लक्ष्मीमती आदि अच्युत स्वर्ग पर्यन्त गई। इस प्रकार वह वैश्य का पुत्र (नागदत्त) एक ही उपवास से इस प्रकार के वैभव को प्राप्त हुआ है। फिर जो मन, वचन व काय की शुद्धिपूर्वक निरन्तर ही उस उपवास को करता है वह क्या वैसे वैभव को नहीं प्राप्त करेगा? अवश्य प्राप्त करेगा।।9।।

## 10. भविष्यदत्त वैश्य-कथा

*अनुमननभवाद्वै पुण्यतो यस्य जातः सकलगुणगणेभ्यश्चोपवासस्य पूज्यः।*
*क्षितिपविभवनाथो वैश्यभाविष्यदत्त उपवसनमतोऽहं तत्करोमि त्रिशुद्धया॥10॥*

भविष्यदत्त वैश्य जिस उपवास की अनुमोदना से उत्पन्न हुए पुण्य के प्रभाव से राजवैभव से संयुक्त होकर समस्त गुणी जनों से पूज्य हुआ है मैं उस उपवास को मन, वचन और काय की शुद्धिपूर्वक करता हूँ।10।।

**10. इसकी कथा-** इस प्रकार है- इसी आर्यखण्ड के भीतर कुरुजांगल देश के अन्तर्गत एक हस्तिनापुर नगर है। वहाँ भूपाल नाम का राजा राज्य करता था। रानी का नाम प्रियमित्रा था। उसी नगर में धनपति नाम का एक वैश्य रहता था। उसकी पत्नी नाम कमलश्री था। वह किसी समय अपने भवन की छत के ऊपर बैठी हुई दिशाओं का अवलोकन कर रही थी। उस समय उसे एक गाय दिखी जो कि उसी समय प्रसूत होकर अतिशय स्नेह से अपने बछड़े के पीछे जा रही थी। उसे देखकर वह पुत्रहीना पुत्रप्राप्ति की इच्छा से बहुत दुःखी हुई। उसको दुःखी देखकर पति ने उसके दुःख का कारण पूछा। उसने इसका कारण पुत्र का अभाव बतलाया। तब धनपति ने धर्म से अभीष्ट प्रयोजन सिद्ध होगा, यह निश्चय करके नगर के बाहर एक रमणीय प्रदेश में जिन

भवनों का निर्माण कराया। उन जिनालयों को देखकर राजा ने किसी से पूछा कि इन जिन भवनों का निर्माण किसने कराया है? उससे जब राजा को यह ज्ञात हुआ कि ये धनपति सेठ के द्वारा निर्मित कराये गये हैं तब इससे उसे बहुत सन्तोष हुआ। इससे उसने धनपति को राजसेठ नियत कर दिया। इस प्रकार से वह सेठ सुखपूर्वक कालयापन कर रहा था। एक समय धनपति सेठ के घर पर चर्या मार्ग से श्रीधर मुनिराज पधारे। तब उसने उनका पडगाहन करके निरन्तराय आहार दिया। तत्पश्चात् उसने उनसे प्रश्न किया कि मेरी पत्नी के पुत्र होगा अथवा नहीं? उत्तर में मुनिराज ने कहा कि हाँ, उसके अतिशय पुण्यशाली पुत्र उत्पन्न होगा। यह सुनकर कमलश्री को बहुत सन्तोष हुआ। तदनुसार उसे कुछ दिनों में पुत्र की प्राप्ति हुई भी। सेठ के यहाँ पुत्र का जन्म होने पर राजादिकों ने उत्साह प्रगट किया- उत्सव मनाया। उसका नाम भविष्यदत्त रखा गया। वह समस्त कलाओं में कुशल होकर वृद्धि को प्राप्त हुआ।

एक समय सेठ ने निर्दोष होने पर भी उस कमलश्री को घर से निकाल दिया। तब वह जन्मान्तर में उपार्जित कर्म के फल को भोगती हुई अपने हरिबल और लक्ष्मीमती नामक माता-पिता के घर पर रही। वहीं पर एक वरदत्त नाम का सेठ रहता था। उसकी पत्नी का नाम मनोहरी था। इनके एक सुरूपा नाम की पुत्री थी। उसके साथ धनपति सेठ ने अपना विवाह कर लिया था। उसके एक बन्धुदत्त नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। पिता को अतिशय प्यारा वह पुत्र समस्त कलाओं में प्रवीण होकर जवान हो गया। तब पिता उसका विवाह करने के लिए उद्यत हुआ। परन्तु उसने कहा कि मैं अपने कमाये हुए धन से विवाह करूँगा, अन्यथा नहीं; यह प्रतिज्ञा करके वह पाँच सौ वैश्यपुत्रों के साथ दूसरे द्वीप को जाने की तैयारी करने लगा। उसके द्वीपान्तर जाने के समाचार को जानकर भविष्यदत्त ने अपनी माँ से कहा कि मैं बन्धुदत्त के साथ द्वीपान्तर को जाऊँगा। यह सुनकर कमलश्री ने कहा कि वह तुम्हारा सौतेला भाई है, इसलिए उसके साथ जाना योग्य नहीं है। इस पर भविष्यदत्त ने उससे कहा कि सौतेला भाई होने पर भी मैं उसके साथ द्वीपान्तर को जाऊँगा। तब कमलश्री ने पूछा कि पूँजी के बिना तू कैसे

द्वीपान्तर को जावेगा? इस पर भविष्यदत्त ने उत्तर दिया कि मैं पिता के पास से द्रव्य माँगकर जाऊँगा। तदनुसार उसने पिता के पास जाकर उससे द्रव्य की याचना की। परन्तु पिता ने यह कह दिया कि मैं नहीं जानता हूँ, तेरा भाई (बन्धुदत्त) जाने। तत्पश्चात् वह बन्धुदत्त के पास में गया। उसने कपटपूर्वक नमस्कार करते हुए भविष्यदत्त से पूछा कि हे भ्रात! तुम किस कारण से यहाँ आये हो? उसने उत्तर दिया कि मैं तुम्हारे साथ द्वीपान्तर को चलना चाहता हूँ, इसके लिए तुम मुझे कुछ द्रव्य दो। इस पर बन्धुदत्त ने कहा कि तुम मेरे भी स्वामी हो, फिर भला द्रव्य की क्या बात है? जितना द्रव्य तुम्हें अभीष्ट हो ले लो। यह कहकर उसने भविष्यदत्त को धन दे दिया। तत्पश्चात् वह शुभ मुहूर्त में बन्धुदत्त के साथ चला गया। वह व्यापारियों का समूह मार्ग में एक वन के भीतर तम्बू डालकर ठहर गया। तब वहाँ आधी रात में कुछ भीलों ने आकर उन पर आक्रमण कर दिया। इससे भयभीत होकर बन्धुदत्त आदि सब ही भाग गये। परन्तु भविष्यदत्त ने उनके साथ युद्ध करके उन सबको जीत लिया। इससे उसकी खूब प्रशंसा हुई।

तत्पश्चात् वह व्यापारियों का संघ बहुधान्यखेट वेलापत्तन गया। वहाँ एक प्रभावती नाम की प्रसिद्ध वेश्या थी। भविष्यदत्त भाड़ा देकर उसके घर पर ठहर गया। इधर बन्धुदत्त ने मूल्य देकर कुछ नावों को खरीदा और उनमें द्रव्य को रक्खा। तत्पश्चात् उसने नावों को खोलते समय भविष्यदत्त को बुलवाकर उसे नाव के ऊपर बैठाया और तब उन्हें चला दिया। कुछ दिनों में वह संघ तिलक द्वीप में पहुँचा। वहाँ पर जल और ईंधन का संग्रह करने के लिए उन नावों को रोक दिया गया। तब कुछ पुरुषों ने भोजन बनाना प्रारम्भ किया तो अन्य नावों में जलादि को रखने लगे। जब इधर यह कार्य चल रहा था तब भविष्यदत्त ने वन में घूमते हुए वहाँ एक सरोवर को देखा। उसमें स्नान करके वह जिन भगवान् की स्तुति करता हुआ वहाँ ठहर गया। इधर इन्धनादि का संग्रह और भोजन करके जब नावों को छोड़ने का अवसर हुआ। तब वैश्यों ने कहा कि भविष्यदत्त नहीं दिखता है। यह जान करके बन्धुदत्त को मन में बहुत हर्ष हुआ। वह बोला कि यहाँ सिंहादि कों का भय है, अतएव नावों को चलने दो। नावों के चले जाने पर जब भविष्यदत्त वहाँ आया

तब वह नावों को न देखकर माता के उस वचन की याद करने लगा। तत्पश्चात् वह एकत्वादि भावनाओं का विचार करता हुआ उस वन में कुछ आगे गया। वहाँ उसे एक वट वृक्ष के नीचे उत्तरोत्तर नीचे गई हुई सीढ़ियों की एक पंक्ति दिखी। वह जब जल प्राप्ति की आशा से नीचे उतरा तो उसे कुछ दूर जाने पर भूमि के भीतर स्थित एक पुर दिखा जो कि वीरान था। उसके ईशान कोण में स्थित जिनालय को देखकर उसे अत्यन्त हर्ष हुआ। वह उसके द्वार पर स्थित होकर जिनेन्द्र देव की स्तुति करने लगा। उस समय उसका बन्द द्वार स्वयं ही खुल गया। उसके भीतर डेढ़ सौ धनुष प्रमाण ऊँची चन्द्रकान्तमणिमय प्रतिमा को देखकर उसका मुखकमल विकसित हो उठा। तब उसने अपूर्व चैत्यालय का विधिपूर्वक दर्शन किया। फिर वह उसके छज्जे पर जाकर बैठ गया। इस प्रसंग में यहाँ एक दूसरी कथा प्राप्त होती है जो इस प्रकार है-

इसी जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में पुष्कलावती देश के भीतर पुण्डरीकिणी पुरी है। उसके बाहर यशोधर तीर्थंकर का समवशरण स्थित था। वहाँ विद्युत्प्रभ अच्युतेन्द्र ने गणधर देव से पूछा कि मेरा पूर्वजन्म का मित्र धनमित्र कहाँ उत्पन्न हुआ है और किस प्रकार से है? गणधर बोले- इस जम्बूद्वीप के भीतर भरत क्षेत्र में एक हस्तिनापुर नाम का नगर है। वहाँ वैश्य धनपति और कमलश्री दम्पत्ति रहते हैं। वह इन दोनों के भविष्यदत्त नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ है। इस समय वह तिलक द्वीप के भीतर स्थित हरिपुर में चन्द्रप्रभ जिनालय में स्थित है। उक्त हरिपुर के राजा का नाम अरिंजय और रानी का नाम चन्द्रानना था। इनके एक भविष्यानुरूपा नाम की पुत्री थी। एक कौशिक नाम का पूर्व भव का तापस उस नगर के स्वामी का शत्रु था जो मरकर राक्षस हुआ था। उसने वहाँ के राजा आदि सब जनों को मार डाला था। एक मात्र भविष्यानुरूपा ही ऐसी थी जिसकी कि उसने रक्षा की थी। भविष्यदत्त इस राजपुत्री के साथ विवाह करके बारह वर्षों में कुटुम्बी जनों से मिलेगा। गणधर के इस उत्तर को सुनकर उस अच्युतेन्द्र ने वहाँ अमितवेग नामक देव को भेजते हुए उसे यह आदेश दिया कि भविष्यत्त और भविष्यानुरूपा का जिस प्रकार से सम्मिलन हो सके, ऐसी व्यवस्था करो। तदनुसार उक्त देव ने वहाँ जाकर देखा तो वह भविष्यदत्त सो रहा

था। तब उसने जहाँ पर भविष्यदत्त की दृष्टि जा सकती थी वहाँ (खित्ति के ऊपर) यह वाक्य लिख दिया– भविष्यदत्त इस पुर के स्वामी अरिंजय और चन्द्रानना की पुत्री भविष्यानुरूपा के साथ, जो एक मात्र इस राजभवन में राक्षस के द्वारा रक्षित है, अपना विवाह करके बारह वर्षों में जाकर अपने कुटुम्बी जनों से मिलेगा। यह लिखकर वह वापिस चला गया। इस लेख को देखकर भविष्यदत्त राजभवन में गया। वहाँ खोजते हुए उसने शयनागार के झरोखे से जब उस कन्या को देखा तब वह बोला कि हे भविष्यानुरूपे! द्वार को खोलो। इस पर उसने द्वार को खोल दिया। तत्पश्चात् कन्या ने उससे पूछा कि तुम कौन हो? उसने उत्तर में कहा कि मैं एक वैश्यपुत्र हूँ और मार्ग में जाते हुए यहाँ आया हूँ। तत्पश्चात् वह भविष्यदत्त को स्नान व भोजन आदि कराकर उससे बोली कि किसी राक्षस ने यहाँ के राजा आदि समस्त जनों को मारकर केवल मेरी रक्षा की है। वह मेरी सेवा के लिए इन विचित्र रूपों को देकर चला गया है। ये रूप भोजनादि के द्वारा मेरा समाधान करते हैं। वह छह छह मास में यहाँ आकर मुझे देख जाता है। अब आगे वह सातवें दिन में यहाँ आवेगा। वह जब तक यहाँ नहीं आता है तब तक तुम यहाँ से चले जाओ। यह सुनकर उसने कहा कि मैं नहीं जाता हूँ, उसके प्रताप को देखना चाहता हूँ। यह कहकर वह वहीं पर ठहर गया। भविष्यानुरूपा भी अपने कन्याव्रत के साथ– अपने शील को सुरक्षित रखती हुई स्थित रही। समयानुसार वह राक्षस वहाँ आया और भविष्यदत्त को देखकर उसके पैरों में पड़ गया। तत्पश्चात् वह उसे उक्त कन्या को देकर बोला कि मैं आपका दास हूँ, जब आप मेरा स्मरण करेंगे तब मैं आया करूँगा; यह कहकर वह स्वर्गलोक को चला गया। भविष्यदत्त और भविष्यानुरूपा दोनों सुखपूर्वक वहीं पर स्थित रहे।

उधर भविष्यदत्त की माता कमलश्री पुत्र का स्मरण करके बहुत दुखी हुई। उसने इस दुःख को नष्ट करने के लिए सुव्रता आर्यिका के पास जाकर पंचमी व्रत के विधान को ग्रहण कर लिया और तब वह इस व्रत का पालन करती हुई स्थित रही। इधर बारह वर्षो के बीतने पर भविष्यानुरूपा ने भविष्यदत्त से पूछा कि जिस प्रकार मेरे कोई बन्धु जन नहीं है उसी प्रकार आपके भी क्या कोई नहीं है? इस पर

भविष्यदत्त ने कहा कि हस्तिनापुर में मेरे पिता आदि कुटुम्बी जन हैं। तब भविष्यानुरूपा बोली कि वहाँ जाने का उपाय क्या है? इस पर भविष्यदत्त ने समुद्र के किनारे पर श्रेष्ठ कर रत्नों की राशि की। फिर वह ध्वजा को फहराकर दिन में भविष्यानुरूपा के साथ वहीं रहने लगा। कुछ ही दिनों में वह बन्धुदत्त लौटकर वहाँ आया। उसके सब धन को मार्ग में चोरों ने लूट लिया था। अतएव वह नावों को पत्थरों से भर कर लाया। मार्ग में जाते हुए उसने ध्वजा के साथ रत्नसमूह को देखा। उसे देखकर वह यहाँ आया तो देखता है कि भविष्यदत्त बैठा हुआ है। तब वह भविष्यदत्त के सामने कपट से परिपूर्ण महान् शोक को प्रदर्शित करते हुए बोला कि जब नौकाएँ बहुत दूर चली गई तब वहाँ तुमको न देखकर मुझे मूर्च्छा आ गई। उस समय मुझे अतिशय दुःख हुआ। मैंने नौकाओं को वापिस ले जाने का प्रयत्न किया, परन्तु प्रतिकूल वायु के कारण वे वापिस नहीं आ सकीं। इस प्रकार मुझे बाध्य होकर आगे जाना पड़ा उसका फल भी मुझे प्राप्त हो चुका है- कमाया हुआ सब धन चोरों द्वारा लूट लिया गया हैं यह सुनकर भविष्यदत्त बन्धुदत्त को समझा बुझाकर उन सबको नगर के भीतर ले गया। वहाँ उसने भोजनादि के द्वारा उन सबके मार्गश्रम को दूर किया। फिर उसने नावों को उन रत्नों से भरकर भविष्यानुरूपा को नाव के ऊपर बैठाया। तत्पश्चात् जब वह स्वयं भी नाव के ऊपर चढ़ने लगा तब भविष्यानुरूपा ने कहा कि हे नाथ! मैं गरूडोद्गार अंगूँठी और रत्नमय प्रतिमा को भूल आई हूँ। तब भविष्यदत्त उनको लेने के लिए वापिस गया। इधर बन्धुदत्त ने 'अहो, जिसकी नाव में जो द्रव्य हैं वह उसका ही है' मेरे लिए तो यह कन्या और यह द्रव्य पर्याप्त हैं; यह कहते हुए उसने उन नावों को छुड़वा दिया। यह देखकर भविष्यानुरूपा मूर्च्छित हो गई। उस समय उसने बहुत पश्चात्ताप किया। इस अवसर पर जब बन्धुदत्त ने अनेक प्रकार के विकारों को करके उसके ऊपर उपसर्ग करना प्रारम्भ किया तब भविष्यानुरूपा बन्धुदत्त के द्वारा अपने प्रति किये जाने वाले इस दुर्व्यवहार को देखकर बहुत दुःखी हुई। उसने विचार किया कि यह महा पापी है, यदि कदाचित् इसने बलात्कार करके मेरे शील को खण्डित कर दिया तो यह अयोग्य होगा; यह सोचते हुए उसने अपने आप को समुद्र में डाल

देने का विचार किया। तब आसन के कम्पित होने से जल देवता ने आकर उन नावों को डुबाना प्रारम्भ कर दिया। तब बन्धुदत्त भयभीत होकर खामोश रहा। परन्तु अन्य वैश्यों ने हे सती! क्षमा कर क्षमा कर, यह कहते हुए उससे क्षमा कराई। फिर वह जलदेवता केवल वही सुन सके इस प्रकार से बोला कि हे सुन्दरी! तेरा पति के साथ संयोग दो मास में होगा, तू दुःख मत कर। तब से भविष्यानुरूपा ने मौन ले लिया। कुछ दिनों में जब वह बन्धुदत्त अपने नगर के भीतर पहुँचा तब वह पिता से बोला कि मैं तिलक द्वीप को गया था। उस द्वीप में स्थित हरिपुर के राजा भूपाल और रानी सुरूपा की यह कन्या है। राजा परिवार के साथ वनक्रीड़ा के लिए वन में गया था और उसके साथ में भी गया था। वहाँ राजा के सामने अतिशय भयानक सिंह आया। उसे देखकर परिवार के लोग भाग गये। तब मैंने उस सिंह को मार डाला। इससे राजा ने सन्तुष्ट होकर मुझे यह कन्या दी है। मैं उसे विवाह के निमित्त आपके पास लाया हूँ। इसने माता-पिता के वियोग में मौन ले लिया है। अब आप जैसा उचित समझें, करें। तब धनपति सेठ आदि ने उसे अनेक प्रकार से समझाने का प्रयत्न किया। किन्तु वह किसी भी प्रकार से नहीं बोली। कमलश्री ने आकर बन्धुदत्त को आशीर्वाद देते हुए उससे भविष्यदत्त के विषय में पूछा। उत्तर में उसने कहा कि वह बहुधान्यखेट में प्रभावती वेश्या के घर में स्थित है। यह सुनकर कमलश्री को भारी दुःख हुआ। एक समय वहाँ विनयंधर केवली आये। तब कमलश्री ने उनसे पूछा कि भविष्यदत्त कब आवेगा? केवली ने उत्तर दिया कि वह एक मास में आ जावेगा। इससे कमलश्री को सन्तोष हुआ।

इधर भविष्यदत्त मुद्रिका आदि को लेकर जब वहाँ आया तो वह भविष्यानुरूपा को न देखकर महान् दुःख से मूर्च्छित हो गया। फिर जिस किसी प्रकार से सचेत होने पर पर वस्तुस्थिति का विचार करता हुआ उस राजभवन में ही उपस्थित हो गया। तब दो मास के पश्चात् उस अच्युतेन्द्र ने 'वह मेरा मित्र किस प्रकार से अवस्थित है' इस प्रकार अपने मित्र के विषय में फिर से विचार किया। उसकी पूर्वोक्त अवस्था को जानकर अच्युतेन्द्र ने वहाँ माणिभद्र देव को भेजते हुए उसे भविष्यदत्त को उसकी माता के घर ले जाने का आदेश दिया। तदनुसार वह देव

उसे रात्रि के समय दिव्य विमान में बैठाकर अनेक प्रकार के रत्नादिकों के साथ ले गया और हरिबल के द्वार पर पहुँचा आया। वहाँ पहुँचकर भविष्यदत्त ने अपने नाना आदि को सन्तुष्ट करके भविष्यानुरूपा की बात पूछी। तब अपनी माता कमलश्री से वस्तुस्थिति को जानकर उसने उसे अंगूठी देते हुए कहा कि इसे प्रातःकाल में भविष्यानुरूपा के पास ले जाकर उसको दिखलाओं। साथ ही उसने स्वयं राजभवन में जाकर भविष्यानुरूपा के उक्त वृत्तान्त को राजा से कहा। इस पर राजा ने उसे एक कोठरी के भीतर रखकर धनपति, बन्धुदत्त के साथ द्वीपान्तर को गये हुए वैश्यों और स्वयं बन्धुदत्त को भी बुलाकर उनसे भविष्यदत्त के सम्बन्ध ा में पूछ-ताछ की। तः। बन्धुदत्त ने कहा कि वह बहुधान्यखेट में प्रभावती वेश्या के घर में है। तत्पश्चात् जब बन्धुदत्त के साथ गये हुए उन वैश्यों ने राजा से यथार्थ वृतान्त कहा तब धनपति सेठ बोला कि ये लोग बन्धुदत्त के साथ ईर्ष्या करते हैं, इसलिए इनका वचन प्रमाण नहीं है। यह सुनकर राजा ने उस भविष्यदत्त से कहा कि हे भविष्यदत्त! अब तुम बाहर आ जाओ। तब भविष्यदत्त कोठरी से बाहर आया और राजा एवं पिता को प्रणाम कर वहाँ बैठ गया। तत्पश्चात् उसने सभा के मध्य में उस समस्त घटना को यथार्थरूप में कह दिया। इससे राजा ने धनपती सेठ और बन्धुदत्त इन दोनों को ही कारागार में रख दिया। परन्तु भविष्यदत्त ने उन्हें उससे मुक्त करा दिया। उधर भविष्यानुरूपा ने जब कमलश्री के पास उस अंगूठी को देखा तब भविष्यदत्त के आगमन को जानकर उसका शरीर रोमांचित हो गया। तब वह स्पष्ट-भाषिणी हो गई। राजा ने राजभवन में बुलाकर उसके साथ तथा अपनी पुत्री सुरूपा के साथ भी भविष्यदत्त का विवाह कर दिया। साथ ही उसने भविष्यदत्त के लिए अपना आधा राज्य भी दे दिया। तत्पश्चात् राजा होकर वह भविष्यदत्त अपनी दोनों पत्नियों के साथ सुखानुभव करता हुआ सुखपूर्वक रहने लगा। वह पिता आदि गुरूजनों का निरन्तर भक्त रहा।

कुछ समय के पश्चात् भविष्यानुरूपा के गर्भाधान होने पर दोहल क रूप में हारपुर में स्थित चन्द्रप्रभ जिनालय के दर्शन की इच्छा उत्पन्न हुई। परन्तु उसने पति को संक्लेश होने के भय से उससे अपनी इच्छा नहीं प्रगट की। उक्त इच्छा की पूर्ति न हो सकने से वह स्वयं कृश होने

लगी। उस समय किसी विद्याधर ने आकर उसे नमस्कार करते हुए कहा कि हरिपुरस्थ चन्द्रप्रभ जिनालय का दर्शन करने के लिए चलो। तब भूपाल राजा, भविष्यदत्त और भविष्यानुरूपा आदि भव्य जीव उक्त जिनालय का दर्शन करने के लिए हरिपुर गये। वहाँ उन सभी ने आठ दिन तक उस चन्द्रप्रभ जिनालय को आदि लेकर वहाँ के सब ही जिनालयों की पूजा की। तत्पश्चात् जब वे अपने नगर को वापिस आने लगे तब आकाश मार्ग से एक गगनगति नामक चारण मुनिराज नीचे आये। उनकी सबने वन्दना की। तत्पश्चात् भविष्यदत्त ने पूछा कि हे साधो! यह विद्याधर अकस्मात् भविष्यानुरूपा को नमस्कार करके यहाँ क्यों आया है? मुनिराज बोले-

इसी आर्यखण्ड में पल्लव देश के भीतर काम्पिल्ल नगर में महानन्द नाम का राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम प्रियमित्रा था। उसके वासव नाम का मन्त्री था। मन्त्री की पत्नी का नाम केशिनी था। इनके वंक और सुवंक नाम के दो पुत्र तथा अग्निमित्रा नाम की एक पुत्री थी। मन्त्री ने उसका विवाह अग्निमित्र नामक पुरोहित के साथ कर दिया था। एक समय इस पुरोहित को राजा ने कुछ उपहार के साथ किसी राजा के पास भेजा। उसके जाने के पश्चात् बहुत दिन बीत गये थे, परन्तु वह वापिस नहीं आया था। इससे राजा को बहुत चिन्ता हुई। एक समय वहाँ सुदर्शन मुनिराज का शुभागमन हुआ। तब राजा ने उनसे अग्निमित्र के वापिस न आने का कारण पूछा। मुनिराज ने उत्तर में कहा कि उसने उस उपहार को वेश्या के साथ खा डाला है। इसीलिए वह भय के कारण वापिस नहीं आया है। फिर भी अब वह पाँच दिन में यहाँ आ जावेगा। तत्पश्चात् उसके वापिस आने पर राजा ने उसे और उसकी पत्नी को भी कारागार में बन्द कर दिया। उन्हें कारागार में स्थित देखकर सुवंक ने सुदर्शन मुनिराज के पास दीक्षा ग्रहण कर ली तथा सुव्रता आर्यिका के समीप में केशिनी ने भी दीक्षा ले ली। सुवंक आयु के अन्त में शरीर को छोड़कर सौधर्म स्वर्ग में इन्दुप्रभ नाम का देव हुआ और वह केशिनी उसी स्वर्ग में रविप्रभ नाम का देव हुई। इसी विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणि में एक अम्बरतिलक नाम का नगर है। उसमें पवनवेग नाम का राजा राज्य करता था। रानी का नाम विद्युद्वेगा था।

वह इन्दुप्रभ देव सौधर्म स्वर्ग से च्युत होकर इनके मनोवेग नाम का पुत्र हुआ। वह वृद्धिंगत होकर एक समय सिद्ध कूट के ऊपर गया था। वहाँ जाकर उसने जिन भगवान की वन्दना की। तत्पश्चात् उसने चारण मुनिराज को नमस्कार करके उनसे धर्मश्रवण किया। अन्त में उसने उनसे अपने पिछले भवों के सम्बन्ध में पूछा। जैसा कि पूर्व में निरूपण किया जा चुका है तदनुसार ही मुनिराज ने उसके पूर्व भवों का निरूपण कर दिया। फिर उसने उनसे पूछा मेरी माता का जीव जो रविप्रभ देव हुआ था वह इस समय कहाँ पर है? मुनिराज बोले कि वह इस समय भविष्यानुरूपा रानी के गर्भ में स्थित है। उस भविष्यानुरूपा के इस समय हरिपुस्थ चन्द्रप्रभ जिनालय के दर्शन करने की इच्छा है। यह सुनकर वह यह मनोवेग विद्याधर गर्भ में स्थित अपने माता के जीव के मोह से भविष्यानुरूपा को यहाँ ले आया है। इस प्रकार निरूपण करके वे चारण मुनिराज आकाश मार्ग में चले गये। इधर भविष्यदत्त आदि सब अपने नगर में आ गये। भविष्यानुरूपा के क्रमशः सुप्रभ, कनकप्रभ, सोमप्रभ और सूर्यप्रभ नाम के पुत्र उत्पन्न हुए। दूसरी पत्नी सुरूपा के धरणिपाल नाम का पुत्र और धारिणी नाम की पुत्री उत्पन्न हुई। तब भविष्यदत्त सुप्रभ आदि उन पुत्रों को शिक्षा देते हुए स्थित था।

एक दिन उस नगर के उद्यान में विपुलमति और विपुलबुद्धि नाम के दो मुनिराज आकर विराजमान हुए। वनपाल से उनके शुभागमन को जानकर, भूपाल राजा आदि उनकी वन्दना के लिए गये। सबने वन्दना करके उनसे धर्मश्रवण किया। तत्पश्चात् भविष्यदत्त ने उनसे अपने और भविष्यानुरूपा के विशेष पुण्य, दोनों के पारस्परिक स्नेह, अच्युतेन्द्र के द्वारा अपने ऊपर प्रगट किये गये स्नेह, राजा अरिंजय और राक्षस के वैर, भविष्यानुरूपा के ऊपर विद्यमान अपने मोह और कमलश्री के दुर्भाग्य के भी कारण को पूछा। तदनुसार विपुलमति बोले- इसी द्वीप के ऐरावत क्षेत्रस्थ आर्यखण्ड में सुरपुर नाम का नगर है। उसमें वायु कुमार नाम का राजा राज्य करता था। रानी का नाम लक्ष्मीमती था। इस राजा के व्रजसेन नाम का मन्त्री था। उसकी पत्नी का नाम श्री और पुत्री का नाम कीर्तिसेना था। वज्रसेन ने इस पुत्री का विवाह अपने भानजे के साथ कर दिया था। परन्तु वह उसे नहीं चाहता था। इसलिए

वह अपने पिता के घर पर ही रहती हुई श्री पंचमी (श्रुतपंचमी) व्रत का पालन कर रही थी। उसी नगर में एक धनदत्त नाम का अतिशय धनवान् सेठ रहता था। उसकी पत्नी का नाम नन्दिभद्रा था। उनके एक नन्दिमित्र नाम का पुत्र था। वे धनदत्त आदि मिथ्यादृष्टि थे। उन्हें धनमित्र नाम के एक दूसरे जैन सेठ समझकर अणुव्रत ग्रहण करा दिये थे। एक दिन ग्रीष्म ऋतु में अनेक उपवासों को करके समाधिगुप्त मुनिराज पारणा के लिए आये थे। उनका सारा शरीर पसीने से तर हो रहा था। उनको देखकर नन्दिभद्रा को घृणा उत्पन्न हुई। इससे उसके दुर्भग नाम कर्म का बन्ध हुआ। उधर उसका पुत्र नन्दिमित्र इन्हीं समाधिगुप्त मुनिराज के समीप में तपश्चरण करके अच्युत स्वर्ग का इन्द्र हुआ था। कीर्तिसेना श्रुतपंचमी व्रत का उद्यापन करके नगर के बाहर वृक्ष के खोते में स्थित उन्हीं समाधिगुप्त मुनिराज की वन्दना के लिये विभूति पूर्वक पिता के साथ जा रही थी। उस मार्ग में एक कौशिक नाम का तापस पंचाग्नि तप कर रहा था। उसकी जब किसी ने प्रशंसा की तब वज्रसेन ने कहा कि यह मूर्ख पशु के समान अज्ञानी है, वह प्रशंसा के योग्य नहीं है; इस प्रकार वज्रसेन ने उसकी निन्दा की। इससे उस तापस को क्रोध तो बहुत हुआ, परन्तु वह कर कुछ नहीं सकता था, इसीलिए वह उस समय चुपचाप ही स्थित रहा। उसे क्रोधित देखकर धनमित्र और कीर्तिसेना ने प्रिय वचनों के द्वारा शान्त किया। उस धनमित्र ने कीर्तिसेना के द्वारा किये गये पंचमी-उपवास की अतिशय अनुमोदना करते हुए उसकी बहुत प्रशंसा की। वह धनदत्त मरकर धनपति सेठ हुआ है, नन्दिभद्रा कमलश्री हुई है, वज्रसेन अरिंजय हुआ है, तथा कौशिक तापस राक्षस हुआ है। धनमित्र यद्यपि जैन था, फिर भी परिणामों की विचित्रता से वह विरोधी होकर मरा और उपवास की अनुमोदना करने से प्राप्त पुण्य के प्रभाव से तुम हुए हो। कीर्तिसेना भविष्यनुरूपा हुई है। इस प्रकार तुम्हारे द्वारा पूछे गये उन स्नेह आदि के कारण का मैंने निरूपण किया है। तुम विचार कर {उस पंचमी व्रत को} ग्रहण करो। वह कीर्तिसेना का पति बन्धुदत्त हुआ है इस प्रकार मुनिराज के द्वारा प्ररूपित अपने पूर्व भवों के स्वरूप को सुनकर भवष्यिदत्त को बहुत हर्ष हुआ। फिर उसने उन मुनिराज से उस पंचमी व्रत के अनुष्ठान की विधि तथा उसके उद्यापन के क्रम को पूछा। तब मुनिराज ने जिस प्रकार से उसके

क्रम का निरूपण किया वह पीछे नागकुमार की कथा में कहा जा चुका है, अतएव उसको वहाँ से जानना चाहिये। विशेष इतना ही है कि नागकुमार में जहाँ शुक्ल पंचमी को उपवास का निर्देश किया गया है वहाँ इस व्रत विधान में उसे कृष्ण पंचमी को जानना चाहिये। इस प्रकार उक्त व्रत के विधानादिकों को सुनकर भविष्यदत्त ने पत्नियों आदि के साथ उस व्रत को ग्रहण कर लिया। फिर विधिपूर्वक पालन करके उसने उसका उद्यापन भी किया। भविष्यदत्त ने बहुत समय तक राज्य किया। तत्पश्चात् उसने अपने पुत्र सुप्रभ को राज्य देकर पिहितास्रव मुनिराज के समीप में दीक्षा ग्रहण कर ली। साथ में धनपति सेठ ने भी दीक्षा धारण कर ली। कमलश्री और भविष्यानुरूपा आदि सुव्रता आर्यिका के निकट में दीक्षित हो गई। भविष्यदत्त मुनिराज ने उक्त क्रम से तपश्चरण करके प्रायोपगमन (स्व-परवैय्याव्रत्य की अपेक्षा से रहित) संन्यास को ग्रहण किया। इस क्रम से वह शरीर को छोड़कर सर्वार्थसिद्ध विमान में देव उत्पन्न हुआ। धनपति आदि भी अपने अपने पुण्य के अनुसार योग्य स्थानों में उत्पन्न हुए। कमलश्री और भविष्यानुरूपा शुक्र और महाशुक्र स्वर्ग में देव हुई। वहाँ से च्युत होकर वे दोनों इसी द्वीप के पूर्वविदेह में राजपुत्र होते हुए मुक्ति को प्राप्त हुए। इस प्रकार दूसरे के द्वारा किये गये उपवास की अनुमोदना से वह धनमित्र वैश्य जब इस प्रकार की विभूति को प्राप्त हुआ तब भला जो मन, वचन व कार्य की शुद्धिपूर्वक उसका स्वयं आचरण करता है वह वैसा नहीं होगा क्या? अवश्य होगा।।10।।

## 11-12. धनमित्रपुत्री दुर्गन्धा व दुर्गन्धकुमार-कथा

*अपि कुथितशरीरो राजपुत्रोऽतिनिन्द्यो व्यजनि मनसिजातश्चोपवासात्तदैव।*
*नृसुरगतिभवं शं चारु भुक्ता स मुक्त उपवसनमतोऽहं तत्करोमि त्रिशुद्धया॥11॥*
*जगति विदितकीर्ती रोहिणी दिव्यमूर्ति र्विगतसकलशोकाशोकभूपस्य रामा।*
*अजनि सदुपवासाज्जातपुण्यस्य पाका दुपवसनमतोऽहं तत्करोमि त्रिशुद्धया॥12॥*

जो राजपुत्र दुर्गन्धित शरीर से संयुक्त होता हुआ अतिशय निन्दनीय था वह उपवास के प्रभाव से उसी समय कामदेव के समान

सुन्दर शरीर वाला हो गया और फिर मनुष्य एवं देवगति के उत्तम सुख को भोगकर मुक्ति को भी प्राप्त हुआ है। इसीलिए मैं मन, वचन और काय की शुद्धिपूर्वक उस उपवास को करता हूँ।।3।।

पूतिगन्धा उत्तम उपवास से उत्पन्न हुए पुण्य के फल से अशोक राजा की रोहिणी नाम की पत्नी हुई है। दिव्य शरीर को धारण करने वाली उस रानी की कीर्ति लोक में विदित थी तथा वह सब प्रकार के शोक से रहित थी। इसीलिए मैं मन, वचन और काय की शुद्धिपूर्वक उस उपवास को करता हूँ।।11-12।।

**11-12. इन दोनों पद्यों की कथायें-** रोहिणीचरित्र में आई हैं। तदनुसार यहाँ उनका कथन किया जाता है- इसी आर्यखण्ड के भीतर अंगदेश में चम्पापुर है। उसमें मघवा नामक राजा राज्य करता था। रानी का नाम श्रीमती था। इन दोनों के श्रीपाल, गुणपाल, अवनिपाल, वसुपाल, श्रीधर, गुणधर, यशोधर और रणसिंह ये आठपुत्र थे। उनसे छोटी एक रोहिणी नाम की पुत्री थी जो अतिशय रूपवती थी। वह अष्टान्हिक पर्व में अष्टमी के दिन उपवास को करके जिनालय में गई। उसने वहाँ जिन भगवान् का अभिषेक और पूजन आदि की। तत्पश्चात् जिनालय से वापिस आकर उसने सभा भवन में बैठे हुए अपने पिता के लिए गन्धोदक आदि दिया। तब उसके पिता ने पूछा कि हे पुत्री ! तेरा मुख मुरझाया हुआ क्यों है तथा तूने कुछ श्रृंगार भी क्यों नहीं किया है ? उसने उत्तर दिया कि मेरा कल का उपवास था, इसलिए श्रृंगार नहीं किया है। इस पर पिता ने कहा कि तो फिर जाकर पारणा कर। इस प्रकार उसे भवन के भीतर भेजते हुए राजा ने लज्जा के साथ जाती हुई उसके यौवन की शोभा को देखकर मन्त्रियों से पूछा कि इसके लिए कौन-सा वर योग्य होगा क्योंकि उसकी सुन्दरता असाधारण है। दूरा श्रुतसागर नामक मन्त्री बोला कि पल्लव देश का राजा अर्ककीर्ति सब ही गुणों से सम्पन्न है, अतएव वह इस पुत्री के लिए योग्य वर है। विमलबुद्धि ने कहा कि सुराष्ट्र देश का स्वामी जितशत्रु अनुपम गुणों का धारक है, इसलिए वही इसके लिए योग्य वर दिखता है। अन्त में सुमति मन्त्री बोला कि पुत्री के लिए योग्य वर देखने के लिए स्वयंवर की विधि ठीक प्रतीत होती है, अतएव उसे ही करना चाहिए। सुमति की इस

योग्य सम्मति को उन सभी ने स्वीकार कर लिया। तब इस स्वयंवर विधि को सम्पन्न करने के लिए स्वयंवर शाला का निर्माण कराकर मघवा राजा ने समस्त राजाओं के पास आमन्त्रण भेज दिया। तदनुसार वे राजा आकर स्वयंवरशाला में यथायोग्य आसनों पर बैठ गये। उस समय अनुपम वस्त्राभूषणों से सुसज्जित रोहिणी धाय के साथ रथ पर चढ़कर आयी और स्वयंवरशाला के भीतर प्रविष्ट हुई। वहाँ पर धाय ने राजाओं का परिचय कराते हुए रोहिणी से कहा कि हे पुत्री! यह सुकोशल देश के स्वामी महामण्डलेश्वर श्रीवर्मा का पुत्र महेन्द्र है, यह वंग देश का राजा अंगद है, यह डाहल देश का स्वामी वज्रबाहु है, इत्यादि अनेक राजाओं का परिचय करती हुई वह धाय एक स्थान पर दिव्य आसन के ऊपर बैठे हुए अशोक कुमार को देखकर बोली कि हे पुत्री! यह हस्तिनापुर के कुरुवंशी राजा वीतशोक और विमला का पुत्र अशोक है जो समस्त गुणों का स्वामी है। तब रोहिणी ने उसके गले में माला डाल दी। उस समय महेन्द्र के मन्त्री दुर्गति ने उससे कहा कि हे नाथ! तुम महामण्डलेश्वर के पुत्र होकर अतिशय सुन्दर और तरुण हो। फिर भी इस कन्या ने तुम्हारी उपेक्षा करके अशोक के गले में माला डाली है। क्या कन्या इस बात को नहीं जानती है? परन्तु मघवा ने उसे अशोक के विषय में पहले ही कह रखा था। इस प्रकार उसकी सम्मति से ही कन्या ने अशोक के गले में माला डाली है। इसलिए तुम उन दोनों (मघवा और अशोक) को युद्ध में मारकर कन्या को ग्रहण कर लो। तब महामति नामक मन्त्री ने उससे कहा कि क्या तुम्हें ऐसी सम्मति देना योग्य है? तुम केवल दुष्ट बुद्धि से ही वैसी सम्मति दे रहे हो। पहले भरत चक्रवर्ती के पुत्र अर्ककीर्ति ने भी सुलोचना के कारण जयकुमार के साथ युद्ध किया था, परन्तु क्या वह सुलोचना उसे स्वयंवर में प्राप्त हो सकी थी? नहीं। इसलिए यह विचार योग्य नहीं है। फिर भी महेन्द्र ने युद्ध के दुराग्रह को नहीं छोड़ा। उस समय सब राजा उसी के पक्ष में सम्मिलित हो गये। तब फिर से भी महामति मन्त्री ने कहा कि स्वयंवर की प्रथा ही ऐसी है। अतः उसके लिए युद्ध करना अनुचित है। फिर भी यदि युद्ध करना है, तो मघवा के पास कन्या को माँगने के लिए मन्त्री को भेजना योग्य होगा। उसके कहने से यदि वह कन्या को

दे देता है तो ठीक है। अन्यथा तुम जो.उचित समझो, करना। तदनुसार वहाँ एक अतिशय निपुण दूत को भेजा गया। दूत ने उन दोनों के पास जाकर कहा, तुम दोनों के ऊपर महेन्द्र आदि रुष्ट हुए हैं। इसलिए तुम कन्या को महेन्द्र के लिए देकर सुख से जीवनयापन करो। उसके कारण तुम मृत्यु के मुख में प्रविष्ट मत होओ। दूत के इन वचनों को सुनकर अशोक बोला कि हे दूत! स्वयंवर में कन्या जिसके गले में माला डालती है वही उसका स्वामी होता है, ऐसा ही स्वयंवर का नियम है। इसलिए मेरे बाणों के मुख रूप अग्नि में तेरे स्वामी ही यदि पतंगा बनकर गिरना चाहते हैं तो गिरें, इसमें हमारी क्या हानि है? उनके पराक्रम को मैं युद्ध में ही देखूँगा, जाओ तुम। यह उत्तर देकर, अशोक ने उस दूत को वापिस भेज दिया। उसने जाकर महेन्द्र आदि से अशोक के उत्तर को ज्यों का त्यों कह दिया। तब वे युद्ध की भेरी को बजाते हुए सुसज्जित होकर युद्ध भूमि में जा पहुँचे। तत्पश्चात् अशोक और मघवा आदि भी व्यूह और प्रतिव्यूह के क्रम से रणभूमि में स्थित हो गये। उधर रोहिणी, मेरे निमित्त से युद्ध में यदि पिता और पति में से किसी का मरण होता है तो मैं आहार और शरीर से मोह छोड़ती हूँ, इस प्रकार के संन्यास के साथ मन्दिर में जाकर स्थित हो गई। उन दोनों सेनाओं में घोर युद्ध प्रारम्भ होने पर बहुत से सैनिक मारे गये। इस प्रकार बहुत समय बीतने पर महेन्द्र की सेना भागने लगी। तब अपनी सेना को भागते हुए देखकर महेन्द्र स्वयं युद्ध में प्रवृत्त हुआ। उसके शस्त्रों के प्रहार से अपनी सेना को भागती हुई देखकर अशोक ने स्वयं महेन्द्र का सामना किया। तब उन दोनों में तीनों लोकों को आश्चर्यान्वित करने वाला युद्ध हुआ। इस प्रकार बहुत समय बीतने पर महेन्द्र भाग गया। तब चोल, पाण्डय और चेरम आदि राजाओं ने उस अशोक को घेर लिया। यह देखकर रोहिणी के भाई श्रीपाल आदि ने उक्त चोल आदि राजाओं को पीछे हटा दिया। तब उन श्रीपाल आदि का सामना महेन्द्र ने फिर से किया और उनके साथ घोर युद्ध करके उसने उन्हें पीछे हटा दिया। यह देख अशोक ने फिर से महेन्द्र का सामना करके महायुद्ध में उसके छत्र और ध्वजा को नष्ट कर दिया व सारथी को मार डाला। तत्पश्चात् हे महेन्द्र! अब तू अपने गिरते हुए शिर की रक्षा कर, यह कहते हुए अशोक

ने उसके कण्ठ को लक्ष्य करके बाण छोड़ दिया। वह जाकर महेन्द्र के कण्ठ में लगा। इससे वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। उस समय अशोक ने उसके शिर को ग्रहण करना चाहा। परन्तु मघवा ने उसे ऐसा करने से रोक दिया। जब महेन्द्र की मूर्च्छा दूर हुई तब महामति मन्त्री ने समझाया कि अब तुम शत्रु के लिए अपना शिर मत दो। इस प्रकार समझाकर उसने महेन्द्र को युद्ध से विमुख किया। तब मघवा ने जय भेरी की ध्वनि के साथ विजय पताका फहरा दी। उसके शत्रुओं में से कितनों ने दीक्षा धारण कर ली और कितने ही अपने देश को वापिस चले गये। इधर अशोक और रोहिणी का महाविभूति के साथ विवाह सम्पन्न हो गया।

अशोक कुछ दिन वहीं पर रहा। तत्पश्चात् वह रोहिणी के साथ अपने नगर को वापिस गया। उस समय पिता उसको लेने के लिए सम्मुख आया। तब अशोक पिता को प्रणाम करके विभूति के साथ पुर के भीतर प्रविष्ट हुआ। उस समय माता एवं अन्य पवित्र (सौभाग्यशालिनी) स्त्रियों के द्वारा फेंके गये शेषाक्षतों को अशोक ने सहर्ष स्वीकार किया। फिर उसने साथ में आये हुए रोहिणी के भाई श्रीपाल के लिए अपनी बहिन प्रियंगुसुन्दरी को देकर उसे अपने नगर को वापिस भेज दिया। इस प्रकार वह अशोक युवराज सुखपूर्वक स्थित हुआ। एक समय अतिशय धवल मेघ को नष्ट होता हुआ देखकर वीतशोक राजा के लिए वैराग्य उत्पन्न हुआ। तब उसने अशोक के लिए राज्य देते हुए एक हजार राजपुत्रों के साथ यमधर मुनिराज के पास में जाकर दीक्षा ले ली। अन्त में वह तपश्चरण करके मुक्ति को प्राप्त हुआ। इधर राज्य करते हुए अशोक और रोहिणी के वीतशोक, जीतशोक, नष्टशोक, विगतशोक, धनपाल, स्थिरपाल और गुणपाल सात पुत्र तथा वसुंधरी, अशोकवती, लक्ष्मीमती और सुप्रभा ये चार पुत्रियाँ हुई। अन्त में उनके एक लोकपाल नाम का अन्य पुत्र हुआ। इस प्रकार रोहिणी बारह सन्तानों की माता हुई।

एक समय अशोक और रोहिणी दोनों अपने भवन के ऊपर एक आसन पर बैठे हुए दिशाओं का अवलोकन कर रहे थे। उस समय बहुत सी स्त्रियाँ और पुरुष अपने उदर को ताड़ित करते रोते हुए राजमार्ग से जा रहे थे। उन सबको वैसी अवस्था में देखकर रोहिणी ने वासवदत्ता

नाम की अपनी चतुर धाय से पूछा कि यह कौन-सा अपूर्व नाट्क है? यह सुनकर धाय को क्रोध आ गया। वह बोली कि हे पुत्री!तू रूप आदि के अभिमान से इस प्रकार बोल रही है। इस पर रोहिणी बोली कि हे माता! क्रोध क्यों करती हो? क्या तुमने मुझे इसका उपदेश दिया है और मैं भूल गई हूँ, इसलिए क्रोध करती हो? तब उस धाय ने पूछा कि हे पुत्री! क्या तू इसे सर्वथा ही नहीं जानती है? रोहिणी ने उत्तर दिया कि नहीं। तब उसकी सरलता को देखकर पण्डिता ने कहा कि हे पुत्री! इनका कोई मर गया है, इसलिए ये शोक कर रहे हैं। उसी समय लोकपाल कुमार असावधानी के कारण छत पर से नीचे गिर गया। तब सब लोग पश्चाताप करने लगे। परन्तु माता और पिता दोनों ही चुपचाप बैठे रहे। उस समय नगर देवता ने उस लोकपाल को बीच में ही कोमल शय्या के ऊपर ले लिया था। यह देखकर लोगों को तथा माता-पिता को भी बहुत आनन्द हुआ। दूसरे दिन उस नगर के उद्यान में रूप्यकुम्भ और स्वर्णकुम्भ नाम के दो मुनिराज आये। वनपाल से इस शुभ समाचार को जानकर राजा ने आनन्द भेरी दिला दी। वह स्वयं परिवार के साथ उनकी वन्दना के लिए निकल पड़ा। उद्यान में पहुँचकर उसने उनकी पूजा और वन्दना की। तत्पश्चात् धर्मश्रवण करके उसने उनसे निम्न प्रश्न किये- पिछले दिन इस नगर के जनों को शोक क्यों हुआ, रोहिणी रानी शोक को क्यों नहीं जानती है; और मैं किस पुण्य के फल से उत्पन्न हुआ हूँ। साथ ही उसने अपने पुत्रों के अतीत भवों के कहने की भी उनसे प्रार्थना की। तब रूप्यकुम्भ मुनिराज ने प्रथमतः लोगों के शोक का कारण इस प्रकार बतलाया- इस नगर की पूर्व दिशा में बारह योजन जाकर नीलाचल नाम का पर्वत है। पूर्व में उस पर्वत की एक शिला के ऊपर यमधर मुनिराज़ आतापन योग से स्थित थे। उनके प्रभाव से वहाँ रहने वाले मृगमारि नामक भील को शिकार नहीं मिल रहा था। इससे मृगमारि को उनके ऊपर क्रोध आ रहा था। एक दिन यमधर मुनिराज एक मास के उपवास के बाद पारणा के लिए उक्त पर्वत के समीप में स्थित अभयपुरी में गये थे। उस समय अवसर पाकर उस भील ने उस आतापनशिला को खैर आदि के अंगारो से संतप्त कर दी। फिर उसने मुनिराज को वापिस आते हुए देखकर शिला के ऊपर से उन

अंगारों को हटा दिया। मुनिराज ने उस शिला के ऊपर आतापनयोग की प्रतिज्ञा ले रखी थी। इसलिए वे उसे संतप्त देख कर संन्यास को ग्रहण करते हुए उसके ऊपर चढ़ गये इस भयानक उपसर्ग को जीतने में उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया और वे तत्काल मुक्त हो गये। उधर उस भील को सातवें दिन उदुम्बरकोढ़ उत्पन्न हो गया। इससे उसके समस्त शरीर से दुर्गन्ध आने लगी। तब वह मरण को प्राप्त होकर सातवें नरक में गया। फिर वह वहाँ से निकलकर अनेक त्रस-स्थावर योनियों में परिभ्रमण करता हुआ इसी पुर में ग्वाला पुत्र हुआ था। वह घूमता हुआ नीलाचल वनाग्नि के मध्य में पड़कर मर गया। तब उसकी खबर पाकर कुटुम्बी जन एकत्रित होकर रोते हुए वहाँ गये। यह उनके शोक का कारण है।

अम्बर और गान्धारी के दण्डक पर्वत के ऊपर गया अैर वहाँ

अब मैं रोहिणी को शोक न होने के कारण को बतलाता हूँ- इसी हस्तिनापुर में पहिले एक वसुपाल नाम का राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम वसुमती था। वहीं पर एक धनमित्र नाम का सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम धनमित्रा था। इनके अतिशय दुर्गन्धित शरीर वाली एक दुर्गन्धा नाम की पुत्री थी। उसके साथ कोई भी विवाह करने के लिए उद्यत नहीं होता था। वहीं पर एक सुमित्र नाम का दूसरा सेठ रहता था। उसकी पत्नी का नाम वसुकान्ता था। इनके एक श्रीषेण नाम का पुत्र था जो सात व्यसनों में रत था। एक समय वह चोरी करते हुए कोतवालों के द्वारा पकड़ लिया गया था। वे उसे राजाज्ञा के अनुसार शूली पर चढ़ाने के लिए ले जा रहे थे। मार्ग में धनमित्र ने देखकर उससे कहा कि यदि तुम मेरी पुत्री के साथ विवाह कर लेते हो तो मैं तुम्हें छुड़ा देता हूँ। इस पर उसने उत्तर दिया कि मैं मर जाऊँगा, परन्तु आपकी पुत्री के साथ विवाह नहीं करूँगा। किन्तु तत्पश्चात् बुन्धजनों के आग्रह से श्रीषेण ने धनमित्र की पुत्री के साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया। तब सेठ ने राजा से प्रार्थना करके उसे मुक्त करा दिया। इसके पश्चात् उसने दुर्गन्धा के साथ विवाह तो कर लिया, परन्तु वह उसे शरीर की दुर्गन्ध को न सह सकने के कारण रात में वहाँ से भाग गया। तब माता पिता ने दुर्गन्धा से कहा कि हे पुत्री! तू धर्म का आचरण कर। उसके शरीर से इतनी अधिक दुर्गन्ध आती थी कि जिससे अन्य

की तो बात ही क्या, भिखारी तक उसके हाथ से सोना आदि भी लेना पसन्द नहीं करते थे। एक दिन उसके घर पर चर्या मार्ग से संयमश्री नाम की आर्यिका आई। दुर्गन्धा ने उनका पड़िगाहन किया। उस समय आर्यिका ने विचार किया कि यह रुग्ण नहीं है, किन्तु स्वभावतः दुर्गन्धमय शरीर से संयुक्त है। इसके शरीर सम्बन्धी पुद्गल का कुछ विकार ही इस प्रकार का है। इस कारण इसके हाथ से आहार ग्रहण करने में कोई दोष नहीं है। इस प्रकार का विचार करके वे आर्यिका निर्विचिकित्सा गुण को प्रगट करती हुई वहाँ स्थित हो गई। तब दुर्गन्धा ने उन्हें निरन्तराय आहार दिया। तत्पश्चात् उसने उनसे प्रार्थना की कि हे आर्यिके! मुझे न छोड़िये, आपके प्रसाद से मैं सुखी होऊँगी। इस पर वे उसके ऊपर दयालु होकर वहीं पर ठहर गई।

एक समय उस नगर के उद्यान में पिहितास्रव मुनिराज आये। वनपाल से उनके आगमन के समाचार को जान करके राजा आदि उनकी वन्दना के लिए निकले। उनकी वन्दना के पश्चात् वे धर्मश्रवण करके नगर में वापिस आये। संयमश्री आर्यिका के साथ जाकर दुर्गन्धा ने भी उनकी वन्दना की। तत्पश्चात् उसने उनसे पूछा कि मैं किस पाप के फल से इस प्रकार की हुई हूँ। मुनिराज बोले– सुराष्ट्र देश के भीतर गिरिनगर है। वहाँ भूपाल नाम का राजा राज्य करता था। रानी का नाम सुरूपवती था। इसी नगर में एक गंगदत्त नाम का सेठ रहता था। उसकी पत्नी का नाम सिन्धुमती था। एक बार बसन्त ऋतु के समय में उद्यान को जाते हुए राजा ने गंगदत्त को बुलाया। वह पत्नी के साथ घर में से निकल ही रहा था कि इतने में उसे चर्या के लिए सम्मुख आते हुए गुणसागर मुनिराज दिखायी दिये। तब उसने उनका पड़िगाहन किया और राजा के भय से अपनी पत्नी से कहा कि, हे प्रिये! तुम मुनिराज को आहार करा दो। इस पर वह पति के भय से कुछ भी नहीं बोली और मुनिराज को आहार परोसने के लिए ठहर गई। सेठ राजा के साथ उद्यान को चला गया। इधर सिन्धुमती ने 'यह मुनिराज मेरी जलक्रीड़ा में बाधक हुआ है, मैं इसे देखती हूँ' इस प्रकार सोचकर घोड़े के लिए मँगायी गयी कड़ुवी तूंबड़ी मुनिराज के लिए दे दी। मुनिराज उक्त तूंबड़ी का भोजन करके वसतिका को चले गये। इससे उनके शरीर में अतिशय दाह

उत्पन्न हुई। तब उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया। अन्त में संन्यासपूर्वक शरीर को छोड़कर वे अच्युत स्वर्ग को प्राप्त हुए। उधर उद्यान से वापिस आकर नगर के भीतर प्रवेश करते हुए राजा ने उनके विमान को निकलते हुए देखा। तब उसने किसी से पूछा कि ये कौन-से मुनिराज मरण को प्राप्त हुए हैं? यह सुनकर किसी ने कहा कि एक मास का उपवास पूर्ण करके गुणसागर मुनिराज पारणा के लिए गये थे। उन्हें सिन्धुमती ने घोड़े के लिये तैयार की गई तूंबड़ी दे दी। इससे उनका स्वर्गवास हो गया है। इस घटना से सेठ ने दीक्षा धारण कर ली। उधर राजा ने सिन्धुमती के कान और नाक कटवा लिये तथा उसे गधे के ऊपर चढ़ाकर नगर से बाहर निकलवा दिया। तत्पश्चात् सिन्धुमती को कोढ़ निकल आया। इससे उसका शरीर दुर्गन्धमय हो गया। वह मरकर छठे नरक में पहुँची। वहाँ से निकलकर वह वन में कुत्ती हुई और वनाग्नि में जलकर मर गई। फिर वह तृतीय नरक को प्राप्त हुई। वहाँ से निकलकर वह कौशाम्बी नगरी में शूकरी हुई तत्पश्चात् अर्जीर्ण से मरकर वह कौशल देश के अन्तर्गत नन्दिग्राम में चुहिया हुई। इस पर्याय में वह प्यास से पीड़ित होकर मरी और जलूका (जोंक) हुई। वहाँ उसने जल पीने के लिए आयी हुई भैंस के शरीर में लगकर उसका रक्तपान किया। उस रक्त के बोझ से धूप में गिर जाने पर उसे कौओं ने खा लिया। तब वह मरकर उज्जयिनी पुरी में चाण्डालिनी हुई फिर वह जीर्ण-ज्वर से मरकर अहिछत्र नगर में धोबी के घर पर गधी हुई। तत्पश्चात् मरण को प्राप्त होकर वह यहाँ हस्तिनापुर में एक ब्राह्मण के घर पर कपिला गाय उत्पन्न हुई। वह कीचड़ में फँसकर मरी और फिर तू हुई है। इस प्रकार अपने पूर्व भवों की परंपरा को सुनकर दुर्गन्धा ने फिर पूछा कि हे नाथ! मेरे इस शरीर की दुर्गन्ध के नष्ट होने का क्या उपाय है? इस पर मुनिराज ने कहा कि हे पुत्री! सत्ताईसवें दिन रोहिणी नक्षत्र आता है। उस दिन तू उपवास कर। इस उपवास का क्रम इस प्रकार है- कृत्तिका नक्षत्र के समय में स्नान करके जिन भगवान् की पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् एकाशन की प्रतिज्ञा लेकर भोजन करे और स्वयं या अन्य किसी के साक्षी में उपवास का नियम ले ले। इस उपवास को मार्गशीर्ष मास से प्रारम्भ करना चाहिये। उस दिन जिन भगवान्

का अभिषेक व पूजनादि करके धर्मध्यान में कालयापन करना चाहिये। फिर पारणा के दिन जिनपूजानादि व पात्रदान करके तत्पश्चात् पारणा करे। वह रोहिणीव्रत की विधि उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य के भेद से तीन प्रकार की है। उनमें उक्त व्रत का सात वर्ष तक पालन करने पर वह उत्कृष्ट, पाँच वर्ष तक पालन करने पर मध्यम और तीन वर्ष तक पालने पर जघन्य होता है।

अब उसके उद्यापन की विधि बतलाते हैं– उसी मार्गशीर्ष माह में रोहिणी नक्षत्र के होने पर जिनप्रतिमा का निर्माण कराकर उसकी प्रतिष्ठा करानी चाहिये। तत्पश्चात् पाँच पाँच संख्या में घी आदि के कलशों से जिन भगवान् का अभिषेक करके पाँच अक्षतपुँजों, पाँच प्रकार के पुष्पों, पाँच पात्रों में स्थित नैवद्यों, पाँच द्वीपों, पंचांग धूपों और पाँच प्रकार के फलों से जिनपूजन करना चाहिये। साथ ही पाँच उपकरणों सहित प्रतिमाओं को वसतिका के लिए देना चाहिये। इसके अतिरिक्त पाँच आचार्यों के लिए पाँच पुस्तकों को, यथाशक्ति साधुओं को पूजा (अर्घ), आर्यिकाओं के लिए वस्त्र और श्रावक–श्राविकाओं के लिए परिधान (धोती आदि पहिरने के वस्त्र) को भी देना चाहिये। अन्त में जैसी जिसकी शक्ति हो तदनुसार अभय की घोषणा करके आहारदानादि के द्वारा ध र्मप्रभावना भी करना चाहिये। उस दिन जिनालय में पाँच वर्ण के चावलों से अढ़ाई द्वीपों की रचना करके पूजन करना चाहिये। जो व्रती उद्यापन करने में असमर्थ हो उसे उक्त व्रत का पालन नियमित समय से दुगुणे काल तक करना चाहिये। इस व्रत के फल से भव्य जीव परलोक में तो सुख प्राप्त करते ही हैं, साथ में वे उसके फल से इस लोक में भी सुख पाते हैं। इस प्रकार रोहिणीव्रत के विधान को सुनकर पूतिगन्धा ने उसे ग्रहण कर लिया।

तत्पश्चात् पूतिगन्धा ने उनसे पुनः प्रश्न किया कि इस संसार में मेरे समान दूसरा भी कोई ऐसे दुर्गन्धयुक्त शरीर से सहित हुआ है अथवा नहीं? मुनिराज बोले– कलिंग देश के भीतर एक महावन में ताम्रकर्ण और श्वेतकर्ण नाम के दो हाथी थे। वे हथिनी के निमित्त से परस्पर लड़े और मरकर चूहा एवं बिलाव हुए, इनमें चूहे को बिलाव ने मार डाला। वह मरकर नेवला हुआ। उधर वह बिलाव मरकर सर्प हुआ।

इस सर्प को उन नेवले ने मार डाला। वह मरकर कुक्कुट (मुर्गा) हुआ और नेवला समयानुसार मरण को प्राप्त होकर मत्स्य हुआ। तत्पश्चात् वे दोनों मरकर कबूतर हुए। यहीं हस्तिनापुर में किसी समय सोमप्रभ राजा राज्य करता था। रानी का नाम कनकप्रभा था। इस राजा के यहा रविस्वामी नाम का पुरोहित था। इसकी पत्नी का नाम सोमश्री था। वे दोनों कबूतर बिजली के निमित्त से मरकर इस सोमश्री के सोमशर्मा और सोमदत्त नाम के दो युगल पुत्र हुए थे। इन दोनों की स्त्रियों का नाम क्रमशः सुकान्ता और लक्ष्मीमती था। जब इनका पिता मरा तब राजा ने छोटे पुत्र (सोमदत्त) को पुरोहित बनाया। तब वह राजमान्य होकर स्थित हुआ। तत्पश्चात् सोमशर्मा मेरी पत्नी के साथ संभोग करता है, यह जानकर उस सोमदत्त ने जिनदीक्षा ले ली। वह समस्त आगम का ज्ञाता होकर एकल विहारी हो गया। इस प्रकार से विहार करता हुआ वह एक समय हस्तिनापुर के बाह्य प्रदेश में आया। इसी समय सोमप्रभ राजा ने मगध देश के राजा के पास उसकी कन्या मदनावली और व्यालसुन्दर हाथी को माँगने के लिए अपने विशिष्ट (दूत) को भेजा। साथ में 'वह देगा कि नहीं' इस सन्देह के वश होकर राजा ने स्वयं भी प्रस्थान किया। उधर सोमप्रभ राजा ने सोमदत्त को दीक्षित हो गया जानकर पुरोहित का पद सोमशर्मा के लिए दे दिया था। उस समय प्रस्थान करते हुए राजा ने जब सोमदत्त मुनिराज को देखा तब उसने सोमशर्मा पुरोहित से पूछा कि प्रस्थान के समय में यदि दिगम्बर मुनिराज दिखें तो क्या करना चाहिये? यह सुनकर सोमशर्मा ने सोमदत्त मुनिश्री को अपना भाई जानकर जन्मान्तर के द्वेषवश राजा से कहा कि इसे अपशकुन कारक समझकर दिशाओं के लिये बलि दे देना चाहिये और तत्पश्चात् आगे गमन करना चाहिये। इस बात को सुनकर राजा ने 'यह पाप है' कहते हुए अपने कानों के छेदों को दोनों हाथों से आच्छादित कर लिया। उस समय विश्वदेव नामक शकुन शास्त्र के जानकार ने उससे पूछा कि हे पुरोहित! दिगम्बर साधु का दर्शन अपशकुन कारक है, यह किस शास्त्र में कहा गया है; मुझे शीघ्र बतलाओं। इस पर जब वह सोमशर्मा चुप रहा तब विश्वदेव ने राजा

से कहा कि हे देव! दिगम्बर साधु का दर्शन कल्याणकारी होता है। शकुनशास्त्र में भी ऐसा ही कहा गया है–

दिगम्बर साधु, घोड़ा, राजा, मोर, हाथी और बैल; ये सब प्रस्थान और प्रवेश के समय में कल्याणकारी माने गये हैं।

फिर विश्वदेव बोला कि हे राजन्! आप यहाँ पर ही स्थित रहिए। यदि वह दूत पाँच दिन के भीतर मदनावली और उस हाथी के साथ वापिस नहीं आता है तो मुझे शकुन का ज्ञाता ही नहीं समझना। तब राजा वहीं पर पड़ाव डालकर स्थित हो गया। तत्पश्चात् जैसा कि विश्वदेव ने कहा था, तदनुसार ही वह दूत राजपुत्री और उस हाथी को साथ लेकर वहाँ आ पहुँचा। इससे राज़ा को बहुत सन्तोष हुआ। तब वह विश्वदेव को पुरोहित बनाकर नगर के भीतर प्रविष्ट हुआ। इस घटना से सोमशर्मा को बहुत क्रोध आया। इससे उसने रात में उन सोमदत्त मुनिराज को मार डाला। इस प्रकार से शरीर को छोड़कर सोमदत्त मुनिराज सर्वार्थसिद्ध विमान को प्राप्त हुए। उधर जब राजा को यह किसी प्रकार से ज्ञात हुआ कि सोमशर्मा ने मुनिराज की हत्या की है तब उसने उसका गर्दभारोहण आदि कराकर उसे देश से निकाल दिया। तब वह महान् कष्ट के साथ मरकर सातवें नरक को प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् वहाँ से निकलकर वह स्वयंभूषण समुद्र में महामत्स्य हुआ। वह भी मरकर छठें नरक में गया। तत्पश्चात् वह महावन में सिंह हुआ और मरकर पाँचवें नरक में गया। वहाँ से निकलकर वह व्याघ्र हुआ और फिर मरकर चौथे नरक में गया। तत्पश्चात् वह दृष्टिविष सर्प होकर तीसरे नरक में गया। फिर उसमें से निकलकर वह भेरूण्ड पक्षी हुआ और मरकर दूसरे नरक में गया। तत्पश्चात् वह शूकर हुआ और मरकर पहिले नरक में गया। वहाँ से निकलकर वह मगधदेश में सिंहपुर के राजा सिंहसेन और हेमप्रभा का पुत्र हुआ है। शरीर से अतिशय दुर्गन्ध निकलने के कारण उसका नाम अतिदुर्गन्ध कुमार प्रसिद्ध हुआ। समयानुसार वह वृद्धि को प्राप्त हुआ।

एक समय उस नगर के समीप में विमलवाहन नाम के केवली आकर विराजमान हुए। तब राजा आदि भी उनकी वन्दना के लिए निकले। वहाँ असुरकुमारों को देखकर वह पूतिगन्धकुमार मूर्च्छित हो

गया। यह देखकर राजा ने केवली से उसके मूर्च्छित हो जाने का कारण पूछा। तदनुसार केवली ने उपर्युक्त हाथी आदि के भवों से सम्बन्ध रखने वाली पूर्वोक्त कथा को कहकर यह बतलाया कि पूतिगन्धकुमार चूँकि चिरकाल तक नरकों में रहकर असुरकुमारों के द्वारा अनेक बार लड़ाया गया था, अतएव उनको देखकर यह मूर्छित हो गया है। तत्पश्चात् पूतिगन्ध ने केवली से अपने दुःख के नष्ट होने का उपाय पूछा। उसका उपाय केवली ने रोहिणी व्रत का अनुष्ठान बतलाया। तब पूतिगन्धकुमार ने उक्त व्रत का सात वर्ष तक पालन किया। इसके प्रभाव से उसका दुर्गन्धमय शरीर सुगन्ध स्वरूप से परिणत हो गया। इससे अब उसका नाम सुगन्धकुमार प्रसिद्ध हो गया। उधर सिंहसेन राजा ने उसके लिए राज्य देकर विमलवाहन केवली के समीप में दीक्षा ग्रहण कर ली। वह तपश्चरण करके मुक्ति को प्राप्त हुआ। सुगन्धकुमार ने बहुत समय तक राज्य किया। तत्पश्चात् उसने विनय नामक पुत्र के लिए राज्य देकर समयगुप्ताचार्य के समीप में मुनि दीक्षा ले ली। फिर वह तत्पश्चरण करके अच्युत स्वर्ग में देव उत्पन्न हुआ।

इस जम्बूद्वीप के अन्तर्गत पूर्व विदेह में एक पुष्कलावती नाम का देश है। उसके अन्तर्गत पुण्डरीकिणी पुरी में विमलकीर्ति नामक राजा राज्य करता था। रानी का नाम पद्मश्री था। उपर्युक्त अच्युत स्वर्ग का वह देव वहाँ से च्युत होकर इन दोनों के अर्ककीर्ति नाम का पुत्र हुआ। वह अपने मेघसेन नामक मित्र के साथ क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होकर समस्त कलाओं में पारंगत हो गया। एक समय उस पुर (पुण्डरीकिणी) में उत्तर मथुरा से वसुदत्त और लक्ष्मीमती अपने पुत्र मुदित के साथ आये तथा दक्षिण मथुरा से धनमित्र और सुभद्रा अपनी पुत्री गुणवती के साथ आये। वहाँ पर मुदित और गुणवती का परस्पर विवाह सम्पन्न हुआ। उस समय मेघसेन ने वेदी के ऊपर गुणवती को देखकर राजपुत्र (अर्ककीर्ति) से कहा कि हे मित्र! तुम जैसे मित्र को पा करके भी यदि मझे यह कन्या नहीं प्राप्त हो सकी तो तुम्हारी मित्रता से क्या लाभ हुआ? यह सुनकर अर्ककीर्ति ने मेघसेन के लिए उस कन्या का अपहरण कर लिया। तब वैश्यों के चिल्लाने पर विमलकीर्ति ने उस मित्र के साथ अपने पुत्र अर्ककीर्ति को भी निकाल दिया। इस प्रकार वह अर्ककीर्ति

वीतशोकपुर को चला गया। वहाँ विमलवाहन राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम सुप्रभा था। उनके जयावती, वसुकान्ता, सुवर्णमाला, सुभद्रा, सुमति, सुव्रता, सुनन्दा और विमला नाम की आठ पुत्रियाँ थीं। इनके पिता ने पहिले अवधिज्ञानी मुनियों से पूछा था कि मेरी इन पुत्रियों का वर कौन होगा। उत्तर में उन्होंने बतलाया था कि जो चन्द्रक वेध्य को वेध सकेगा वह तुम्हारी इन पुत्रियों का पति होवेगा। इस पर राजा ने स्वयंवर मण्डप को बनवाकर चन्द्रक वेध्य को भी स्थापित कराया। इससे स्वयंवर मण्डप में राजाओं का समूह जमा हो गया। परन्तु उसमें से उस चन्द्रक वेध्य को कोई भी नहीं वेध सका। अन्त में अर्ककीर्ति ने उसको वेध कर उन पुत्रियों के साथ विवाह कर लिया। इस प्रकार वह सुखपूर्वक कालयापन करने लगा।

एक समय राजा आदि निर्वाण क्षेत्र की वन्दना करने के लिए विमल पर्वत पर गये। वहाँ आवश्यक जिनपूजनादि कार्यो को करके वे रात में वहीं पर सो गये। उनमें से अर्ककीर्ति को चित्रलेखा विद्याधरी ने ले जाकर सिद्धकूट के शिखर पर स्थापित किया। उसको वहाँ ले जाने के कारण निम्न प्रकार हैं- वहाँ विजयार्ध पर्वत के ऊपर उत्तर श्रेणी में मेघपुर नाम का एक नगर है। वहाँ वायुवेग नामक राजा राज्य करता था। रानी का नाम गगनवल्लभा था। इनके एक वीतशोका नाम की पुत्री थी। एक दिन उसके पिता ने मन्दर पर्वत पर जाकर किसी दिव्यज्ञानी से पूछा था कि मेरी पुत्री का वर कौन होगा। उत्तर में उक्त दिव्यज्ञानी ने बतलाया था कि जिसके दर्शन से सिद्धकूट चैत्यालय का द्वार खुल जावेगा वह तुम्हारी पुत्री का वर होगा। परन्तु वहाँ इस प्रकार का कोई भी विद्याधर नहीं था। इसीलिए उक्त कन्या की सखी अर्ककीर्ति के विषय में सुनकर उसे वहाँ ले गई। उसके दर्शन से वह द्वार खुल गया। इसलिए अर्ककीर्ति ने उस वीतशोका के साथ विवाह कर लिया। तत्पश्चात् उसने वहाँ अनेक विद्याओं को सिद्ध किया। फिर वह वीतशोका को वहीं पर छोड़कर वीतशोकपुर आते हुए आर्यखण्डस्थ अंजनगिरिपुर को प्राप्त हुआ। वहाँ के राजा का नाम प्रभंजन और रानी का नाम नीलांजना था। इनके मदनलता, विद्युल्लता, सुवर्णलता, विद्युत्प्रभा, मदनवेगा, जयावती और सुकान्ता नाम की सात पुत्रियाँ थीं। एक समय वे उद्यान वन से

आकर नगर में प्रवेश कर ही रही थीं कि इतने में एक हाथी बन्धन को तोड़कर उनकी ओर मारने के लिए आया। उसे देखकर सेवक आदि सब भाग गये। तब वे हा-हाकार करने लगीं। उनके आक्रन्दन को सुनकर अर्ककीर्ति ने उस हाथी को बाँध लिया और उन कन्याओं के साथ विवाह कर लिया। तत्पश्चात् वह वीतशोकपुर में जाकर मित्रादिकों से मिला। फिर उसने अपने नगर (पुण्डरीकिणी) में जाकर और गुप्तरूप में स्थित रहकर राजा के मण्डप या हडप्प में स्थित सुपाड़ी फलों को बकरी की लेंड़ी, पानों को अकौवों के पत्ते, कस्तूरी एवं केसर आदि को विष्ठा, स्त्रियों के दाढ़ी-मूँछे, पुरुषों के स्तन, हाथियों को शूकर, घोड़ों को गधे, पानी को गोमूत्र और अग्नि को शीतल बनाकर अनेक प्रकार के विनोद कार्य किये। इनको देखकर राजा आदि को बहुत आश्चर्य हुआ। तत्पश्चात् दूसरे दिन उसने भील के वेष में नगर के जीवधन (पशुधन) का अपहरण कर लिया। तब ग्वालों के कोलाहल से इस समाचार को जानकर उसके प्रतिकार के लिए राजा ने जो सेना भेजी थी उसको अर्ककीर्ति ने माया से नष्ट कर दिया। इस पर राजा को बहुत क्रोध आया। तब उसने स्वयं जाकर उसके साथ घोर युद्ध किया। तत्पश्चात् मेघसेन ने राजा को बतलाया कि यह तुम्हारा पुत्र अर्ककीर्ति है। इस बात को सुनकर राजा विमलकीर्ति को बहुत हर्ष हुआ। तब उसने शरीर से नम्रीभूत हुए अपने उस पुत्र का आलिंगन किया। फिर वे दोनों महाविभूति के साथ नगर में प्रविष्ट हुए। इसके पश्चात् अर्ककीर्ति अपनी पूर्व विवाहित पत्नियों को ले आया और सुख से रहने लगा।

किसी समय विमलकीर्ति राजा दर्पण में अपना मुख देख रहा था। उस समय उसे अपने शिर के ऊपर श्वेत बाल दिखा। उसे देखकर उसके हृदय में वैराग्यभाव जागृत हुआ। तब उसने अर्ककीर्ति के लिए राज्य देकर सुव्रत मुनिराज के निकट में दीक्षा ग्रहण कर ली। अन्त में वह मुनिराज तप को करके मुक्ति को प्राप्त हुए। उधर अर्ककीर्ति सकलचक्रवर्ती (छह खण्डों का अधिपति) हो गया। उसने बहुत समय तक राज्य किया। तत्पश्चात् उसने अपने पुत्र जितशत्रु को राज्य देकर चार हजार भव्य जीवों के साथ शीलगुप्ताचार्य मुनिराज के पास में मुनि दीक्षा ले ली। अन्त में वह शरीर को छोड़कर अच्युतेन्द्र हुआ है। वह इस समय

स्वर्ग में ही है। भविष्य में वह वहाँ से आकर के इस हस्तिनापुर में वीतशोक राजा का पुत्र अशोक होगा और तू यहाँ पुण्य का उपार्जन करके स्वर्ग में देवी होगी। फिर वहाँ से आ करके चम्पापुर में मघवा राजा की पुत्री रोहिणी होती हुई उस अशोक की पटरानी होगी। इस प्रकार वह पूतिगन्धा पिहितास्रव मुनिराज से उपर्युक्त वृत्तान्त को सुनकर उन्हें नमस्कार करती हुई अपने घर वापिस गई। वह रोहिणी उपवासविधि का उद्यापन करके सुगन्धित शरीर वाली हो गई। फिर उसने पूर्वोक्त आर्यिका के निकट में दीक्षा ले ली। अन्त में वह तत्पश्चरण पूर्वक संन्यास के साथ शरीर को छोड़कर ईशान स्वर्ग के अन्तर्गत उस अच्युतेन्द्र से सम्बद्ध विमान में देवी हुई। वह अच्युतेन्द्र आकर तुम हुए हो और वह देवी आकर रोहिणी हुई है। रोहिणी व्रत के अनुष्ठान से उपार्जित पुण्य के प्रभाव से यह शोक को नहीं जानती है।

अब मैं तुम्हारे पुत्रों के भवों को कहता हूँ, सुनो। उत्तर मथुरा में सूरसेन नाम का राजा राज्य करता था। रानी का नाम विमला था। इनके एक पद्मावती नाम की पुत्री थी। इसी नगर में एक अग्निशर्मा नाम का ब्राह्मण रहता था उसकी पत्नी का नाम सावित्री था। इनके शिवशर्मा, अग्निभूति, श्रीभूति, वायुभूति, विशाखभूति, सोमभूति, और सुभूति नाम के सात पुत्र थे। वे एक समय भिक्षा माँगने के लिए पाटलीपुत्र गये थे। वहाँ उस समय सुप्रतिष्ठ नाम का राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम कनकप्रभा था। इनके एक सिंहरथ नाम का पुत्र था। इसको देने के लिए कोई उस पद्मावती पुत्री को वहाँ ले आया था। इन दोनों के विवाह के ठाट-बाट को देखकर उक्त शिवशर्मा आदि सातों ब्राह्मण पुत्रों ने विचार किया कि देखो हम लोग भीख माँगकर उदरपूर्ति करते हैं, हमारा जीना व्यर्थ है। इस प्रकार विचार करते हुए उन्हें वैराग्यभाव उत्पन्न हुआ। तब उन सबने सीमन्धर स्वामी के समीप में दीक्षा ले ली। अन्त में वे समाधिपूर्वक शरीर को छोड़कर सौधर्म स्वर्ग को प्राप्त हुए। पूर्वोक्त पूतिगन्धा के पिता के एक भल्वातक नाम का दासी पुत्र था। यह पिहितास्रव मुनिराज के समीप में जैन हो गया। वह मरकर सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ था। इस प्रकार पूर्वोक्त सात

ब्राह्मण पुत्र और यह भल्वातक ये आठों वहाँ से च्युत होकर क्रम से तुम्हारे आठ पुत्र हुए हैं।

अब अपनी पुत्रियों के भवों को सुनो- यहीं पर पूर्वविदेह में स्थित विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में अलका पुरी है वहाँ पर मरुदेव राजा राज्य करता था। रानी का नाम कमलश्री था। उनके पद्मावती, पद्मगन्धा, विमलश्री और विमलगन्धा नाम की चार पुत्रियाँ थीं। उन चारों ने गगनतिलक चैत्यालय में समाधिगुप्त मुनिराज के पास में पंचमी के उपवास को ग्रहण किया था। किन्तु वे नियमित समय तक उसका पालन और उद्यापन नहीं कर सकी। कारण यह कि उन चारों की मृत्यु अकस्मात् बिजली के गिरने से हो गई थी। फिर भी वे उस प्रकार से मरकर स्वर्ग में देवियाँ हुई और तत्पश्चात् वहाँ से च्युत होकर वे तुम्हारी पुत्रियाँ हुई हैं। इस प्रकार अपने सब प्रश्नों के उत्तर को सुनकर वह अशोक उन दोनों मुनियों को नमस्कार करके नगर में वापिस आ गया। उसने इन पुत्रियों को श्रीपाल के पुत्र भूपाल के लिए देकर बहुत समय तक राज्य किया। एक समय वह विखरते हुए मेघ को देखकर भोगों से विरक्त हो गया। तब वह अपने पद पर वीतशोक पुत्र को प्रतिष्ठित करके, श्री वासुपूज्य तीर्थंकर का गणधर हुआ। रोहिणी ने कमलश्री आर्यिका के पास दीक्षित होकर बहुत तप किया। अन्त में वह शरीर को छोड़कर अच्युत स्वर्ग में देव हुई। अशोक मुनिराज मुक्ति को प्राप्त हुए। उसी समय से लेकर यहाँ से भव्य जीव रोहिणी व्रत विधि के उद्यापन के समय वासुपूज्य जिनेन्द्र देव की प्रतिमा के समीप में वेदी पर आठ पुत्र और चार पुत्रियों के साथ अशोक व रोहिणी की आकृतियों को कराते हैं तथा उनके चरित्र की पुस्तकों को लिखाकर प्रदान करते हैं। इस प्रकार पूतिगन्ध राजपुत्र और दुर्गन्धा वैश्यपुत्री ये दोनों भोगों की अभिलाषा से नियत समय तक प्रोषध को करके इस प्रकार की विभूति को प्राप्त हुए हैं। फिर भला जो भव्य जीव कर्मक्षय की अभिलाषा से उक्त व्रत का अनियत समय तक परिपालन करता है वह क्या अनुपम सुख का भोक्ता नहीं होगा? अवश्य होगा।।11-12।।

# 13. नन्दिमित्र-कथा

*अभवदमरलोके दीक्षितो वल्भनायानशनजनितपुण्याद्देवकान्तामनोज्ञः।*
*विगतसुकृतवैश्यो नन्दिमित्राभिधान उपवसनमतोऽहं तत्करोमि त्रिशुद्धया ॥13॥*

नन्दिमित्र नाम का जो पुण्यहीन वैश्य भोजन के लिए दीक्षित हुआ था वह उपवास से प्राप्त हुए पुण्य के प्रभाव से स्वर्ग में देवांगनाओं का प्रिय (देव) हुआ है। इसीलिए मैं मन, वचन और काय की शुद्धिपूर्वक उस उपवास को करता हूँ।।13।।

**13. इसकी कथा-** भद्रबाहुचरित्र में आई है। उसका यहाँ निरूपण किया जाता है- इसी आर्यखण्ड में पुण्डवर्धन देश के भीतर कोटिक नाम का नगर है। वहाँ पद्मधर नाम का राजा राज्य करता था। रानी का नाम पद्मश्री था। इस राजा के यहाँ सोमशर्मा नाम का एक पुरोहित था। उसकी पत्नी का नाम सोमश्री था। उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। सोमशर्मा ने उसके जन्ममुहूर्त को शोधकर 'मेरा पुत्र जैनों में सम्मानीय होगा' यह प्रगट करने के लिए जिनमन्दिर के ऊपर ध्वजा खड़ी कर दी थी। उसने उसका नाम भद्रबाहु रखा। भद्रबाहु क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होने लगा। सोमशर्मा ने सात वर्ष के पश्चात् उसका मौंजीबन्धन (उपनयन) संस्कार किया। तत्पश्चात् वह उसे वेद पढ़ाने में संलग्न हो गया। एक समय भद्रबाहु बालकों के साथ गेंद खेलने के लिये नगर के बाहर गया। वहाँ उन सबने वट्टक (वर्तक- एक प्रकार का खिलौना) के ऊपर वट्टक रखने का निश्चय किया। तदनुसार उनमें से किसी ने दो और किसी ने तीन वट्टक ऊपर-ऊपर रक्खे। परन्तु भद्रबाहु ने उन्हें एक के ऊपर दूसरे और दूसरे के ऊपर तीसरे, इस क्रम से तेरह वर्तक रख दिये। जम्बू स्वामी के मोक्ष जाने के पश्चात् विष्णु, नन्द्रिमित्र, अपराति, गोवर्धन और भद्रबाहु ये पाँच श्रुतकेवली होंगे; यह आगमवचन हैं जिस समय उक्त भद्रबाहु आदि बालक खेल रहे थे उस समय वहाँ अनेक सहस्र मुनियों के साथ बिहार करते हुए गोवर्धन नाम के चौथे श्रुतकेवली आये। वे अष्टांग निमित्त के ज्ञाता थे। उन्होंने भद्रबाहु को देखकर यह निश्चित किया कि यह अन्तिम श्रुतकेवली होगा। उनके इस

संघ को देखकर वे सब बालक भाग गये, परन्तु भद्रबाहु नहीं भागा। उसने आकर गोवर्धन श्रुतकेवली को नमस्कार किया। तब उन्होंने उससे पूछा कि तुम्हारा क्या नाम है और तुम किसके पुत्र हो? उसने उत्तर दिया कि मैं सोमशर्मा ब्राह्मण का पुत्र हूँ व नाम मेरा भद्रबाहु हैं तब मुनि ने फिर से पूछा कि तुम मेरे पास पढ़ोगे? उसने कहा कि 'हाँ, पढूँगा'। इस पर वे स्वयं ही उसका हाथ पकड़कर उसके पिता के पास ले गये। उन्हें आते हुए देखकर सोमशर्मा अपने आसन से उठकर उनके सम्मुख गया। उसने उन्हें हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए आसन दिया और फिर इस प्रकार से आने का कारण पूछा। तब मुनिराज ने कहा कि यह तुम्हारा पुत्र मेरे पास पढ़ने के लिए कहता है। यदि तुम्हें यह स्वीकार है तो मैं उसे पढ़ाऊँगा। यह सुनकर सोमशर्मा बोला कि यह जैन सिद्धान्त का उपकार करेगा, यह इसके जन्म मुहूर्त से सिद्ध है। वह भला असत्य कैसे हो सकता है? हम इसको आपके लिये देते हैं। आप जैसा उचित समझे, करें। यह कहकर उसने उन गोवर्धन मुनिराज के लिये भद्रबाहु को दीक्षा न देने की प्रार्थना की। तब गोवर्धन मुनिराज ने कहा कि हे बहिन! मैं पढ़ाकर इसे तेरे पास भेज दूँगा, तू इतना विश्वास रख। इस प्रकार गोवर्धन श्रुतकेवली भद्रबाहु को अपने साथ ले गये। फिर उन्होंने उसके भोजन और निवास आदि की व्यवस्था श्रावकों से कराकर उसे पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार से वह समस्त शास्त्रों में पारंगत हो गया। तत्पश्चात् उसने समस्त दर्शनों की सारता व असारता को जानकर गुरू से दीक्षा देने की प्रार्थना की। इस पर गोवध र्नि मुनीन्द्र ने कहा कि तुम पहिले अपने नगर में जाकर अपनी विद्वत्ता को दिखलाओ और तत्पश्चात् माता-पिता की स्वीकृति लेकर आओ। तब तुम्हें हम दीक्षा दे देंगे। यह कहकर उन्होंने भद्रबाहु को उसके घर भेज दिया। तदनुसार भद्रबाहु ने जाकर माता-पिता को प्रणाम कर उनके समक्ष अपने गुरू के सद्गुणों की खूब प्रशंसा की। तत्पश्चात् दूसरे दिन उसने पद्मधर राजा के भवन के द्वार पर पत्र को लगाकर ब्राह्मणादि सब वादियों को वाद में जीत लिया। इस प्रकार उसने जैन धर्म की भारी प्रभावना की। फिर वह माता-पिता की स्वीकृति लेकर उन गोवर्धन मुनिराज के पास गया और दीक्षित हो गया। अन्त में वे गोवर्धन

श्रुतकेवली भद्रबाहु को श्रुतकेवलीरूप आचार्य बनाकर संन्यास के साथ स्वर्गवासी हुए। तब वे गुरुभक्त भद्रबाहु स्वामी साधुओं के साथ विहार करते हुए स्थित हुए।

यहाँ एक दूसरी कथा है जो इस प्रकार है– किसी समय पाटलिपुत्र नगर में नन्द नाम का राजा राज्य करता था। उसके ये चार मंत्री थे– बन्धु, सुबन्धु, कवि और शकटाल। एक समय कुछ म्लेच्छ देश के निवासी एकत्रित होकर आक्रमण करने के विचार से नन्द राजा के देश की सीमा पर आकर स्थित हो गये। तब शकटाल ने राजा से निवेदन किया कि अपने देश पर आक्रमण करने के लिये म्लेच्छ देश के निवासी यवन उपस्थित हुए हैं, इसके लिये क्या उपाय किया जाय? यह सुनकर नन्द बोला कि इस विषय में तुम ही प्रवीण हो, तुम जो कहोगे वही किया जावेगा। तब शकटाल ने कहा कि शत्रु बहुत हैं, उन्हें धन देकर शान्त करना चाहिये। कारण यह है कि अभी युद्ध के लिये उपयुक्त समय नहीं है। इस पर राजा ने कहा कि तुम्हारा कहना योग्य ही है, उन्हें द्रव्य देकर शान्त करो। तब शकटाल ने उन्हें द्रव्य देकर वापिस कर दिया। दूसरे समय राजा अपने खजाने को देखने के लिये गया। वहाँ जब उसे सम्पत्ति नहीं दिखी तब उसने पूछा कि यहाँ की सब सम्पत्ति कहाँ चली गई है? इसके उत्तर में कोषाध्यक्ष ने कहा कि शकटाल ने उसे शत्रुओं को दे डाली है। यह सुनकर नन्द ने क्रोधित होकर शकटाल को उसके कुटुम्ब के साथ तलघर के भीतर बन्द करवा दिया। वह उसे वहा सकोरा मात्र के जाने योग्य छेद में से प्रतिदिन थोड़ा-सा भात और जल दिलाने लगा। उस अल्प भोजन को देखकर शकटाल बोला कि कुटुम्ब के बीच में जो कोई भी नन्द के वंश को समूल नष्ट कर सकता हो वह इस भोजन और जल को ग्रहण करे। इस पर सबने कहा कि इसके लिए तुम ही समर्थ हो। इस प्रकार सबकी सम्मति से वह उस अन्न-जल का उपयोग करने लगा। तब एक मात्र वही जीवित रहा, शेष सब मरण को प्राप्त हो गये।

इधर उन म्लेच्छों ने जब फिर से नन्द के राज्य में उपद्रव प्रारम्भ किया तब उसे शकटाल का स्मरण हुआ। उस समय उसने पूछा कि क्या कोई शकटाल के वंश में अभी विद्यमान है। इस पर किसी ने उत्तर दिया

कि कोई अन्न और जल को ग्रहण तो करता है। तब शकटाल को वहाँ से निकालकर उसे पहिनने के लिए वस्त्र (पोशाक) दिये। फिर नन्द ने उससे कहा कि तुम इन शत्रुओं को शान्त करो। इस पर शकटाल ने जिस किसी भी प्रकार से उन्हें शान्त कर दिया। तब राजा ने उससे पुनः मंत्री के पद को ग्रहण करने के लिए कहा। परन्तु शकटाल ने इसे स्वीकार नहीं किया। तब वह उसकी इच्छानुसार अतिथिगृह का अध्यक्ष बना दिया गया। एक दिन शकटाल ने नगर के बाहर घूमते हुए चाणक्य नामक ब्राह्मण को देखा। वह उस समय काँस को खोदकर फेंक रहा था। शकटाल ने नमस्कार करतें हुए उससे पूछा कि यह आप क्या कर रहे हैं? चाणक्य ने उत्तर दिया कि इस काँस के अग्रभाग से मेरा पाँव विध गया है, इसलिए मैं इसे जड़-मूल से उखाड़कर सुखाऊँगा और तत्पश्चात् नदी में प्रवाहित कर दूँगा। इस उत्तर को सुनकर शकटाल को विश्वास हुआ कि यह व्यक्ति नन्द को नष्ट करने में समर्थ है। तब उसने प्रार्थना की कि आप प्रतिदिन हमारे अतिथि गृह में उच्च आसन पर बैठकर भोजन किया करें। चाणक्य ने इसे स्वीकार कर लिया। तब से शकटाल उसे आदर के साथ भोजन कराने लगा। एक दिन अध्यक्ष ने उसके स्थान का परिवर्तन कर दिया। इसे देखकर चाणक्य ने पूछा कि यह स्थान परिवर्तन क्यों किया गया है? इसके उत्तर में अध्यक्ष ने कहा कि राजा का ऐसा नियम (आदेश) है कि आगे का आसन किसी दूसरे के लिए दिया जाय। तत्पश्चात् चाणक्य मध्यम आसन के ही ऊपर बैठकर भोजन करने लगा। तत्पश्चात् उसे अन्तिम (निकृष्ट) आसन के ऊपर बैठाया गया। तब भी वह क्रोध न करके वहीं बैठकर खाने लगा। इसके पश्चात् दूसरे दिन जब चाणक्य भोजनगृह के भीतर प्रवेश कर रहा था तब अध्यक्ष ने उसे रोकते हुए कहा कि राजा ने आपके भोजन का निषेध किया है, मैं क्या कर सकता हूँ। इससे चाणक्य को अतिशय क्रोध उत्पन्न हुआ। तब उसने नगर से बाहर निकलते हुए कहा कि जो व्यक्ति नन्द के राज्य को चाहता हो वह मेरी पीछे लग जावे। यह सुनकर चन्द्रगुप्त नाम का क्षत्रिय उसके पीछे लग गया। वह अतिशय दरिद्र था। इसीलिए उसने सोचा कि इसका साथ देने से मेरी कुछ भी हानि होने वाली नहीं है। तब चाणक्य ने म्लेच्छों से मिलकर प्रयत्नपूर्वक

नन्द को नष्ट कर दिया और उसके स्थान पर चन्द्रगुप्त को राजा बना दिया। इस प्रकार चन्द्रगुप्त ने कुछ समय तक राज्य किया। तत्पश्चात् उसने अपने पुत्र बिन्दुसार को राज्य देकर चाणक्य के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। आगे चाणक्य भट्टारक की कथा भिन्न है उसे आराधना कथाकोश से जानना चाहिए। फिर उस बिन्दुसार ने भी अपने पुत्र अशोक के लिए राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर ली। अशोक के कुनाल नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। जब वह बालक पढ़ रहा था तब अशोक म्लेच्छों के ऊपर आक्रमण करने के लिए गया था। वहाँ से उसने नगर में स्थित प्रधान के लिए यह राजाज्ञा भेजी कि उपाध्याय के लिए शालि धान का भात और मसि (स्निग्ध पदार्थ) देकर कुमार को शिक्षण दिलाओ। इस लेख को बाँचने वाले ने विपरीत (च मसिं दत्त्वा कुमारमन्धापयताम् भात के साथ भसम देकर कुमार को अन्ध करा दो) पढ़ा तदनुसार उपाध्याय के लिए शालि धान का भात और राख खिलाकर कुमार के नेत्रों को निकलवा लिया गया। तत्पश्चात् जब शत्रुओं को जीतकर अशोक वापिस आया और उसने कुमार को अन्धा देखा तो उसे बहुत पश्चाताप हुआ। कुछ दिनों में उसने कुमार का विवाह चन्द्रानना नाम की कन्या के साथ करा दिया। उसके संप्रति चन्द्रगुप्त नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। उसको राज्य देकर अशोक ने दीक्षा ले ली। संप्रति चन्द्रगुप्त राज्य करने लगा।

एक समय वहाँ उद्यान में कोई अवधिज्ञानी मुनिराज आये। वनपाल से उनके आगमन को जानकर संप्रति चन्द्रगुप्त उनकी वन्दना के लिए गया। वन्दना करके उसने धर्मश्रवण किया। तत्पश्चात् उसने उनसे अपने पूर्व भवों को पूछा। मुनिराज बोले- इसी आर्यखण्ड के भीतर अवन्ति देश में वैदिश (विदिशा ?) नगर में राजा जयवर्मा राज्य करता था। रानी का नाम धारिणी था। इसी नगर के पास में एक पलासकूट नाम का गाँव है। वहाँ एक देविल नाम का वैश्य रहता था। उसकी पत्नी का नाम पृथिवी था। इनके एक नन्दिमित्र नाम का पुत्र था जो पुण्यहीन था। वह मात्रा में बहुत अधिक भोजन किया करता था। इसलिए माता-पिता ने उसे घर से निकाल दिया था। तब वह वैदिशपुर गया। वहाँ जाकर वह नगर के बाहर एक वट-वृक्ष के नीचे बैठ गया। उसके पहुँचने के पूर्व में वहाँ एक काष्टकूट नाम का लकड़हारा लकड़ियों के

बोझ को उतारकर विश्राम कर रहा था। उसको देखकर नन्दिमित्र बोला कि यदि तुम मुझे प्रतिदिन भोजन दिया करोगे तो मैं इससे चौगुना लकड़ियों का बोझ लाया करूँगा। काष्ट्कूट ने इस बात को स्वीकार कर लिया, तदनुसार वह उस लकड़ियों के बोझ को नन्दिमित्र के सिर पर रखकर घर को गया। उसने अपनी स्त्री जयघंटा को सीख दी कि तुम इसको कभी भी पूरा पेट भोजन नहीं देना। तदनुसार उसकी स्त्री उसे थोड़ा भोजन देने लगी। इस प्रकार काष्टकूट भारी लकड़ियों के गट्ठों को मँगाने और उन लकड़ियों को बेचकर धनसंचय करने लगा। अब वह स्वयं लकड़ियों को न लाकर उसी से मँगाया करता था। एक बार त्योहार के समय जयघण्टा ने सोचा कि इसके प्रसाद से मुझे सम्पत्ति प्राप्त हुई है। परन्तु मैंने इसे कभी भी पूर्ण भोजन नहीं दिया। आज इसे इच्छानुसार भोजन कराना चाहिए। यह सोचकर उसने उस दिन नन्दिमित्र के लिए उसकी इच्छानुसार खीर, घी और शक्कर आदि देकर अन्त में पान भी दिया, तब उसने सन्तुष्ट होकर काष्ठकूट से वस्त्र आदि माँगे। उस समय काष्टकूट ने अपनी स्त्री से पूछा कि आज इसे तूने खाने के लिए क्या दिया है? इसके उत्तर में उसने यथार्थ बात कह दी। इससे क्रोधित होकर काष्ठकूट ने यह कहते हुए कि तूने उसे ऐसा उत्तम भोजन क्यों दिया है? उसे डण्डों से खूब मारा। यह देखकर नन्दिमित्र ने विचार किया कि काष्ठकूट ने इसे मेरे कारण मारा है, इसलिए अब इसके घर में रहना उचित नहीं है। यही सोचकर वह उसके घर से निकल गया। फिर वह एक लकड़ियों के भारी गट्ठे को लाया और उसे बेचने के लिए बैठ गया। ग्राहकजन छोटे गट्ठों को खरीदकर चले जाते थे, परन्तु इसके गट्ठे के विषय में कोई बात भी नहीं करता था। इस तरह दोपहर हो गयी तब वह भूख से व्याकुल हो उठा। इतने में वहाँ से विनयगुप्त नाम के एक मासोपवासी मुनिराज चर्या के लिए निकले। उन्हें देखकर उसने विचार किया कि मेरे पास तो पहिनने के लिए फटा-पुराना वस्त्र भी है, परन्तु इसके पास तो वह भी नहीं है। देखूँ भला यह किधर जाता है। यह सोचता हुआ वह लकड़ियों के गट्ठे को वहीं पर छोड़कर उनके पीछे लग गया। उन मुनिराज का पड़िगाहन राजा ने करके उन्हें नवधा भक्तिपूर्वक आहार दिया। नन्दिमित्र को देखकर उसने समझा कि यह

कोई श्रावक है। इसलिए उसने दासी के द्वारा उसके पाँव धुलवाकर उसे भी दिव्य भोजन दिया। मुनिराज का निरन्तराय आहार हो जाने पर राजा के यहाँ पंचाश्चर्य हुए। उनको देखकर नन्दिमित्र ने समझा कि यह कोई देव है। इसके साथ रहने से मैं भी इसके समान हो जाऊँगा। यही सोचता हुआ वह उनके साथ गुफा में चला गया। वहाँ पहुँचकर उसने उनसे प्रार्थना की कि हे स्वामिन्! मुझे भी आप अपने समान बना लीजिए। तब भव्य और अल्पायु जानकर विनयगुप्त मुनि ने उसे दीक्षा दे दी। उस दिन नन्दिमित्र उपवास ग्रहण करके पंचनमस्कार मंत्र का पाठ करता रहा। पारणा के दिन 'मैं उन्हें आहार दूँगा, मैं उन्हें आहार दूँगा' इस प्रकार श्रावकों के बीच में विवाद आरम्भ हो गया। उसे देखकर नन्दिमित्र के परिणाम कापोतलेश्या जैसे हुए। कल इसके आश्रम से श्रावकों में कैसा क्षोभ होता है, यह देखने के लिए उसने दूसरा उपवास ग्रहण कर लिया। तीसरे दिन पारणा के निमित्त से राजसेठ आदि ने जाकर उसकी वन्दना करते हुए कहा कि 'मैं पडिगाहन करूँगा, मैं पडिगाहन करूँगा'। इस पर वह नन्दिमित्र बोला मैंने आज भी उपवास किया है। तब सेठ आदि ने कहा कि ऐसा न कीजिए। इसके उत्तर में उसने कहा कि मैं तो वैसा कर ही चुका हूँ। तत्पश्चात् सेठ ने राजदरबार में नवीन तपस्वी के गुणों का वर्णन किया। उसे सुनकर रानी ने विचार किया कि प्रातःकाल में मैं उनको आहार दूँगी। इसी विचार से वह तीन दिन के उपवास के पश्चात् पारणा के समय समस्त अन्तःपुर के साथ वहाँ गई। उसने गुरू और शिष्य दोनों की वंदना की। उस समय नन्दिमित्र ने मन में विचार किया कि आज भी मैं उपवास करने में समर्थ हूँ, जब राजा आवेगा तब मैं पारणा करूँगा; यही सोचकर उसने कहा हे स्वामिन्! आज भी मेरा उपवास है। रानी ने उसके पाँवों में गिरकर कहा कि अब उपवास न कीजिए। इस पर उसने उत्तर दिया कि ग्रहण किये हुए उपवास को मैं कैसे छोड़ दूँ। गुरू ने भी कहा कि ग्रहण किये हुए उपवास को छोड़ना योग्य नहीं है। तब रानी वापिस चली गई। उधर वह नन्दिमित्र पंचनमस्कार मंत्र के पदों का चिन्तन करता हुआ स्थित रहा। तत्पश्चात् रात्रि के अन्तिम पहर में गुरू ने कहा कि नन्दिमित्र! अब तेरी अन्तमुहूर्त मात्र की आयु शेष रही है, इसलिए तू

सन्यास को ग्रहण कर ले। तब उसने प्रसाद मानकर गुरू के कहे अनुसार विधिपूर्वक सन्यास ग्रहण कर लिया। इस प्रकार वह सन्यास के साथ शरीर को छोड़कर सौधर्म स्वर्ग में देव उत्पन्न हुआ। इधर राजा आदि नन्दिमित्र मुनिराज के स्वर्गवास को जानकर वहाँ सुवर्णादि की वर्षा द्वारा क्षपक की प्रभावना कर रहे थे और उधर इसी समय उस देव ने अपने परिवार के साथ वहाँ पहुँचकर विमानों से आकाश को व्याप्त कर दिया था। स्वयं समस्त देवियों के साथ विमान में स्थित था। तब वह नन्दिमित्र के गृहस्थ अवस्था में वेष में क्षपक के आगे नृत्य करता हुआ। यह बोल रहा था- (मूल में देखिये) अर्थात् देखो देखो! जो नन्दिमित्र केवल भोजन के निमित्त से दीक्षित हुआ था वह अब रमणीय देव होकर अप्सराओं के मध्य में स्थित है। इसलिए मनुष्य को जिस किसी भी कारण सन्यास लेना ही चाहिए।

इस देव को देखकर सब ही जनों को आश्चर्य हुआ। नन्दिमित्र के उक्त वृत्तान्त को जानकर कितने ही भव्य जीव दीक्षित हो गये और कितनों ने विशेष अणुव्रतों को ग्रहण कर लिया। जयवर्मा राजा ने अपने पुत्र श्रीवर्मा के लिए राज्य देकर उक्त मुनिराज के निकट में बहुत जनों के साथ दीक्षा ले ली। ये सब भी यथायोग्य गति को प्राप्त हुए। नन्दिमित्र का जीव जो देव हुआ था वह स्वर्ग से च्युत हो कर तुम हुए हो। इस प्रकार अपने पूर्व भवों के वृत्तान्त को सुनकर सम्प्रति चन्द्रगुप्त को बहुत हर्ष हुआ। वह मुनिराज को नमस्कार करके नगर में वापिस गया और सुख से रहने लगा।

उसने एक दिन रात्रि के अन्तिम पहर में इन सोलह स्वप्नों को देखा- (1) सूर्य का अस्त होना, (2) कल्पवृक्ष की शाखा का टूटना, (3) आते हुए विमान का वापिस होना, (4) बारह सिरों से युक्त सर्प, (5) चन्द्रमण्डल का भेद, (6) काले हाथियों का युद्ध, (7) जुगुनू, (8) मध्य भाग में सूखा हुआ तालाब, (9) धुआँ, (10) सिंहासन के ऊपर स्थित बन्दर, (11) सुवर्ण की थाली में खीर खाता हुआ कुत्ता, (12) हाथी के ऊपर स्थित बन्दर, (13) कचरे में कमल, (14) मर्यादा को लाँघता हुआ समुद्र, (15) जवान बैलों से संयुक्त रथ और (16) जवान बैलों के ऊपर चढ़ें हुए क्षत्रिय। तत्पश्चात् दूसरे दिन अनेक देशों में विहार करते हुए

भद्रबाहु स्वामी संघ के साथ वहाँ आये और आहार के लिए उस नगर के भीतर प्रविष्ट हुए। वे सब ऋषियों को विविध श्रावकों के घर भेजकर स्वयं भी एक श्रावक के घर पर स्थित हुए। वहाँ पर अतिशय अव्यक्त बोलने वाला एक बालक बोला कि जाओ। इस पर आचार्य ने पूछा कि कितने वर्ष? बालक ने उत्तर दिया 'बारह वर्ष'। इसे अन्तराय मानकर आचार्य भद्रबाहु आहार ग्रहण न करके उद्यान में वापिस चले गये। उधर संप्रति चन्द्रगुप्त भद्रबाहु के आगमन को जानकर परिवार के साथ उनकी वंदना के लिए गया। वंदना करने के पश्चात् उनसे पूर्वोक्त स्वप्नों के फल को पूछा। मुनिराज बोले- भविष्य में इस दुःषमा काल की जैसी कुछ प्रवृत्ति होने वाली है उस सबको तुमने इन स्वप्नों में देख लिया है। यथा- (1) तुमने जो अस्त होते हुए सूर्य को देखा है वह यह सूचना करता है कि अब समस्त वस्तुओं को प्रकाशित करने वाला परमागम (द्वादशांग श्रुत) नष्ट होने वाला है। (2) कल्पवृक्ष की शाखा टूटने से यह ज्ञात होता है कि अब क्षत्रिय जन राज्य को छोड़कर तप को ग्रहण नहीं करेंगे। (3) आते हुए विमान का लौटना यह बतलाता है कि आज से यहाँ देवों एवं चारण ऋषियों का आगमन नहीं होगा। (4) बारह सिरों से संयुक्त सर्प से यह विदित होता है कि यहाँ बारह वर्ष तक दुर्भिक्ष रहेगा। (5) चन्द्रबिंब का भेद यह प्रकट करता है कि अब जैन दर्शन में संघ, गण एवं गच्छ आदि का भेद प्रवृत्त होगा। (6) काले हाथियों का युद्ध यह सूचित करता है कि अब से यहाँ अभीष्ट वर्षा का अभाव रहेगा। (7) जुगुनू के देखने से यह प्रकट होता है कि सकल श्रुत का अभाव हो जाने पर अब यहाँ उसका कुछ थोड़ा-सा उपदेश मात्र अवस्थित रहेगा। (8) मध्य भाग में सूखा हुआ तालाब कहता है कि अब आर्यखण्ड के मध्य भाग में धर्म का नाश होगा। (9) धूम का दर्शन दुर्जन आदिकों की अधिकता को सूचित करता है। (10) सिंहासन के ऊपर स्थित बन्दर के देखने से सूचित होता है कि अब कुलहीन राजा का राज्य प्रवृत्त होगा। (11) सुवर्ण की थाली में खीर को खाने वाला कुत्ता यह बतलाता है कि अब राजसभा में कुलिंगियों की पूजा हुआ करेगी। (12) हाथी के ऊपर स्थित बन्दर के देखने से सूचित होता है कि अब राजपुत्र कुलहीन मनुष्यों की सेवा किया करेंगे। (13) कचरें में स्थित कमल यह

बतलाता है कि अब तप का अनुष्ठान राग-द्वेष से कलुषित मनुष्य किया करेंगे। (14) मर्यादा को लाँघने वाले समुद्र के देखने से प्रगट होता है कि राजा लोग जो जब तक छठे भाग को कर (टैक्स) के रूप में ग्रहण किया करते थे वे अब उक्त नियम का उल्लंघन करके इच्छानुसार कर को ग्रहण किया करेंगे। (15) जवान बैलों से युक्त रथ यह बतलाता है कि अब बालक तप का अनुष्ठान करेंगे और वृद्धावस्था में उस तप को दूषित करेंगे। (16) जवान बैलों के ऊपर चढ़े हुए क्षत्रियों को देखकर यह निश्चय होता है कि अब क्षत्रिय जन कुधर्म से अनुराग करेंगे। इस प्रकार उन स्वप्नों के फल को सुनकर संप्रति चन्द्रगुप्त ने अपने पुत्र सिंहसेन के लिए राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर ली।

भद्रबाहु स्वामी ने उद्यान में पहुँचकर बाल व वृद्ध सब मुनियों को बुलाया और कहा कि जो मुनि यहाँ रहेगा उसका तप नष्ट होगा, यह निमित्तज्ञान से निश्चित है। इसलिए हम सब दक्षिण की ओर चलें। उस समय रामिल्लाचार्य, स्थूलभद्राचार्य और स्थूलाचार्य ये तीन आचार्य किसी समर्थ श्रावक का वचन पाकर अपने-अपने संघ के साथ वहीं पर रहे। परन्तु श्रीभद्रबाहु आचार्य बारह हजार मुनियों के साथ दक्षिण की ओर चले गये। वे वहाँ स्वाध्याय को सम्पन्न करने के लिए एक महावन के भीतर निशीथिका (स्वाध्याय भूमि) पूर्वक किसी गुफा में प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्हें 'यहीं पर ठहरो' यह आकाशवाणी सुनाई दीं उससे भद्रबाहु ने यह निश्चय किया कि अब मेरी आयु बहुत थोड़ी शेष रही है। तब उन्होंने ग्यारह अंगों के धारक अपने विशाखाचार्य नामक शिष्य को संघ का नायक बनाकर उनके साथ संघ को आगे भेज दिया। उस संघ के साथ वे संप्रति चन्द्रगुप्त को भी भेजना चाहते थे। परन्तु उसने यह आगमवाक्य सुन रक्खा था कि बारह वर्ष तक गुरु के चरणों की सेवा करनी चाहिए इसलिए एक वहीं नहीं गया, शेष सब चले गये। उधर भद्रबाहु ने संन्यास ग्रहण कर लिया। तब वे आराधनाओं की आराधना करते हुए स्थित रहे। संप्रति चन्द्रगुप्त उस समय उपवास करता हुआ उनके पास में स्थित था। उस समय भद्रबाहु स्वामी ने संप्रति चन्द्रगुप्त से कहा कि हे मुने! हमारे दर्शन में- जैनागम में- कान्तार चर्या का मार्ग है- वन में आहार ग्रहण करने का विधान है। इसलिए तुम कुछ

वृक्षों के पास तक चर्या के लिए जाओ। यदि वह अयोग्य नहीं है तो गुरू के वचन का उल्लंघन कभी नहीं करना चाहिए, यह सोचकर संप्रति चन्द्रगुप्त मुनिराज उनकी आज्ञानुसार चर्या के लिए चले गये। उस समय उनके चित्त की परीक्षा करने के लिए एक यक्षी ने स्वयं अदृश्य रहकर सुवर्णमय कड़े से विभूषित हाथ में कलछी ली और उसे दाल एवं घी आदि से संयुक्त शालि धान का भात दिखलाया। उसको देखकर मुनिराज ने विचार किया कि इस प्रकार का आहार लेना योग्य नहीं है। इस प्रकार वे बिना आहार लिए ही वापिस चले गये। इस प्रकार वापिस जाकर उन्होंने गुरू के पास में उपवास को ग्रहण करते हुए उनसे उपर्युक्त घटना कह दी। गुरू ने चन्द्रगुप्त के पुण्य के माहात्म्य को जानकर उनसे कहा कि तुमने यह योग्य ही किया है। दूसरे दिन चन्द्रगुप्त आहार के निमित्त दूसरी ओर गये। उधर उन्हें रसोई, बर्तन, सुवर्णमय थाली और पानी का घड़ा आदि दिखा। {परन्तु पाडिगाहन करने वाला वहाँ कोई नहीं था।} इसलिए वे दूसरे दिन भी बिना आहार ग्रहण किये ही वापिस आ गये। आज की घटना भी उन्होंने गुरू से कह दी। इस पर गुरू ने कहा कि बहुत अच्छा किया। तत्पश्चात् तीसरे दिन वे किसी दूसरी ओर गये। वहाँ उनका पड़िगाहन केवल एक ही स्त्री ने किया। तब चन्द्रगुप्त मुनि ने उससे कहा कि तुम अकेली और इधर मैं भी अकेला हूँ, ऐसी अवस्था में हम दोनों की ही निन्दा हो सकती है। इसलिए यहाँ रहना योग्य नहीं है। यह कहकर बिना आहार किये ही वे वापिस चले गये। चौथे दिन वे और दूसरे स्थान पर गये। वहाँ उन्होंने उस यक्षी के द्वारा निर्मित नगर को देखा। वहाँ एक घर पर वे आहार करके आ गये। आज निरन्तराय भोजन प्राप्त हो जाने का भी वृत्तान्त उन्होंने गुरू से कह दिया। गुरू ने भी कह दिया कि अच्छा किया। इस प्रकार वे इच्छानुसार कभी उपवास रखते और कभी वहाँ आहार ग्रहण करके आ जाते। इस प्रकार संप्रति चन्द्रगुप्त मुनिराज गुरूदेवता की सेवा करते हुए वहाँ स्थित रहे। कुछ ही दिनों में भद्रबाहु स्वामी स्वर्गवासी हो गये। चन्द्रगुप्त मुनिराज ने उनके निर्जीव शरीर को किसी ऊँचे स्थान में एक शिला के ऊपर रख दिया। फिर वे गुफा की भित्ति के ऊपर गुरू

के चरणों को लिखकर उनकी आराधना करते हुए वहाँ स्थित रहे। उधर विशाखाचार्य आदि चोलदेश में जाकर वहाँ सुखपूर्वक स्थित हुए।

इधर पाटलिपुत्र में यद्यपि भारी दुर्भिक्ष प्रारम्भ हो गया था तो भी वहाँ रामिल्ल आदि तीन आचार्यों के संघ स्थित थे उनके लिए श्रावक जन विशिष्ट भोजन दे ही रहे थे। एक दिन जब कोई एक मुनिराज आहार लेकर वापिस आ रहे थे तब कुछ दरिद्र जनों ने उनके पेट को फाड़कर तद्गत अन्न को खा लिया था। इस प्रकार मुनिराज के ऊपर आये हुए उपसर्ग को देख कर कुछ श्रावकों ने उन आचार्यों से कहा कि हे मुनिजनों! आप लोग पात्रों को लेकर हम लोगों के घर पर रात में आवें। तब हम लोग उन पात्रों को भोजन से भरकर दे दिया करेंगे। आप लोग उनको वसतिका में ले जावें और फिर वहाँ भोजन के योग्य समय में द्वार को बंद करके झरोखों के प्रकाश में एक दूसरे के हाथ में देकर उस भोजन को ग्रहण कर लिया करें। मुनिजन इसे स्वीकार करके तदनुसार प्रवृत्ति करने लगे। एक दिन की बात है कि एक साधु, जिसका कि शरीर लम्बा था, एक हाथ में पीछी और कमण्डलुओं तथा दूसरे हाथ में कुत्तों आदि के भय से दण्ड को लेकर जा रहा था। उसकी वेताल जैसी आकृति को देखकर किसी गर्भवती स्त्री का गर्भपात हो गया। इस अनर्थ को देखकर श्रावकों ने कहा के श्वेत कंबल की घड़ी करके उसे अपने कन्धे से ऊपर इस प्रकार से डाल लीजिए कि जिससे लिंग और कटि भाग ढँक जाय। इस प्रकार के श्रावक के घर जाने पर ऐसा अनर्थ नहीं हो सकेगा, अन्यथा उसकी सम्भावना बनी ही रहेगी। इस बात को भी उन सबने स्वीकार कर लिया। इस प्रकार प्रवृत्ति करने से उनका नाम अर्धकर्पटितीर्थ प्रसिद्ध हो गया। इस प्रकार से वे वहाँ उसी प्रकार सुख से स्थित रहे।

इधर बारह वर्ष के बाद जब वह दुर्भिक्ष नष्ट हो गया तब विशाखाचार्य आदि ने दक्षिण से उत्तर की ओर फिर से विहार करने का विचार किया। तदनुसार उत्तर की ओर जाते हुए वे मार्ग में भद्रबाहु की आज्ञा का वदना करने के लिए उस गुफा में पहुँचे। तब तक वहाँ पर संप्रति चन्द्रगुप्त मुनिराज गुरू के चरणों की आराधना करते हुए स्थित थे तथा दूसरी बार केशलुंच न करने से जिन का जटाभार बढ़ रहा था,

उन्होंने संघ के सन्मुख आकर उसकी वंदना की। परन्तु यह यहाँ कन्दमूलादि का आहार करते हुए स्थित रहा है, ऐसा सोचकर संघ के किसी भी मुनिराज ने उनकी वंदना के उत्तर में प्रतिवंदना नहीं की। उस संघ ने वहाँ भद्रबाहु के शरीर का अग्निसंस्कार करते हुए उस दिन उपवास रक्खा। दूसरे दिन जब विशाखाचार्य पारणा के निमित्त से किसी गाँव की ओर जाने लगे तब संप्रति चन्द्रगुप्त ने उन्हें रोकते हुए कहा कि स्वामिन्! पारणा करने के पश्चात् विहार कीजिए। इस पर विशाखाचार्य ने कहा कि जब यहाँ पास में कोई गाँव आदि नहीं है तब पारणा कहाँ पर हो सकता है? इसके उत्तर में चन्द्रगुप्त ने कहा कि उसकी चिन्ता नहीं कीजिए। तत्पश्चात् मध्यान्ह के समय में चन्द्रगुप्त के द्वारा दिखलाये गये मार्ग से वह संघ आश्चर्यपूर्वक चर्या के लिए निकला। आगे जाते हुए उसे एक नगर दिखाई दिया। तब वह उसके भीतर प्रविष्ट हुआ। वहाँ बहुत से श्रावकों ने उन मुनियों का बड़े उत्साह के साथ पड़िगाहन किया। इस प्रकार से सब निरन्तराय आहार करके वहाँ से उस गुफा में वापिस आ गये। उस संघ का ब्रह्मचारी वहाँ कमण्डलु भूल गया था। वह उसे लेने के लिए फिर से वहाँ गया। परन्तु उसे वह नगर नहीं दिखा। इससे उसे बहुत आश्चर्य हुआ। फिर उसने कमण्डलु को खोजते हुए एक झाड़ के नीचे देखा। तब वह उसे लेकर वापिस गुफा में आया। उसने उस नगर के उपलब्ध न होने की बात गुरु से कही। इससे विशाखाचार्य ने समझ लिया कि वह नगर संप्रति चन्दगुप्त के पुण्य के प्रभाव से उसी समय हो जाया करता है। इस घटना को जानकर विशाखाचार्य ने संप्रति चन्द्रगुप्त की बहुत प्रशंसा की। तत्पश्चात् उन्होंने चन्द्रगुप्त मुनिराज का केशलुंच करके उन्हें प्रायश्चित दिया तथा अव्रती के द्वारा दिये गये आहार को ग्रहण करने के कारण संघ के साथ स्वयं भी प्रायश्चित लिया।

इधर दुर्भिक्ष के समाप्त हो जाने पर रामिल्लाचार्य और स्थूलभद्राचार्य ने आलोचना करायी। स्थूलाचार्य चूँकि अतिशय वृद्ध हो चुके थे अतएव उन्होंने स्वयं आलोचन कर ली। उनके संघ के साधुओं ने कंबल आदि को नहीं छोड़ा था, और आलोचना भी नहीं करना चाहते थे। जब स्थूलाचार्य से इसके लिए उनसे अनेक बार कहकर कंबल आदि के छोड़

देने पर बल दिया तब रात्रि के समय एकान्त स्थान में उनकी हत्या कर दी गई। इस प्रकार से मरण को प्राप्त होकर स्थूलाचार्य स्वर्ग में पहुँचे। तब सबने मिलकर उनका अग्निसंस्कार किया। फिर वे साधु उसी प्रकार कंबल आदि के साथ स्थित रहे। जब वहाँ विशाखाचार्य आदि पहुँचे तब उन्होंने उनके पास कंबल आदि को देखकर उनकी वंदना के उत्तर में प्रतिवंदना नहीं की। यह देखकर उन सबने 'केवली भोजन किया करते हैं, स्त्री को भी मोक्ष प्राप्त होता है' इत्यादि प्रकार के भिन्न मत को प्रचलित किया। उन्होंने किसी राजा की पुत्री स्वामिनी को पढ़ाया। वह सुराष्ट्रदेशस्थ वल्लभीपुर के राजा वप्रपाद को दी गई थी। वह उसके लिए अतिशय स्नेह की भाजन हुई। उसने अपने उन गुरुओं को वल्लभीपुर में बुलाया। तदनुसार उनके वहाँ आ जाने पर वह उनके स्वागतार्थ राजा के साथ आधे मार्ग तक गई। उन सबको देखकर राजा ने कहा कि प्रिये! ये तुम्हारे गुरु कैसे हैं? वे न तो पूर्णरूप से वस्त्र ही पहिने हुए हैं और न नग्न भी हैं ये यदि उक्त दोनों मार्गो में से एक मार्ग स्वीकार कर लेते हैं तब तो पुर के भीतर प्रवेश कर सकते हैं, अन्यथा वापिस जावें। यह कहने पर उन सबों ने श्वेत वस्त्र को पहिन लिया। तब स्वामिनी की इच्छानुसार उनका नाम श्वेतपट (श्वेताम्बर) प्रचलित कर दिया गया। स्वामिनी के एक जक्खलदेवी नाम की पुत्री थी। उसको श्वेताम्बरों ने पढ़ाया था। वह करहाटपुर के राजा भूपाल की अतिशय प्यारी पत्नी हुई। उसने भी अपने गुरुओं को अपने पास बुलाया। तदनुसार जब वे वहाँ आ पहुँचे तब उसने राजा से प्रार्थना की कि मेरे गुरु यहाँ आये हुए हैं, आपको आधे मार्ग तक जाकर उनका स्वागत करना चाहिए। तब उसके आग्रह से राजा उनका स्वागत करने के लिए नगर से बाहर निकला। इस समय वे दण्ड और कम्बल को लेकर एक वट-वृक्ष के नीचे ग्वाले जैसे वेष को धारण करने वाले हैं, अतः यापनी (हटा देने के योग्य) हैं इस प्रकार से वह राजा उनकी अवज्ञा करके नगर में वापिस चला गया। तब जक्खलदेवी ने उनसे कहा कि आप जैसों का इस वेष में यहाँ निर्वाह होना सम्भव नहीं है। अतएव आप दिगम्बर हो जावें। ऐसा कहने पर वे अपने अभिप्राय को न छोड़ते हुए दिगम्बर हो गये। इससे उनका संघ जाल्पसंघ नाम से प्रसिद्ध हुआ। संप्रति चन्दगुप्त घोर तपश्चरण करके सन्यास के साथ मरण को प्राप्त हुआ और

स्वर्ग गया। इस प्रकार कापोतलेश्यारूप परिणाम से उपवास को करके जब वह नन्दिमित्र स्वर्गादि के सुख का भोक्ता हुआ है तब जो भव्य जीव विशुद्ध परिणामों से उस उपवास को करेगा वह क्या वैसे सुख का भोक्ता नहीं होगा? अवश्य होगा।।13।।

## 14. जाम्बवती-कथा

*इह हि नृपतिपुत्री प्रोषधाज्जातपुण्या त्ररसुरगतिभोगान् दीर्घकालं सिषेवे।*
*अजनि तदनु विषणेर्जाम्बवत्याह्वया स्त्री उपवासनमतोऽहं तत्करोमि त्रिशुद्धया ।।14।।*

यहाँ बन्धुषेण राजा की पुत्री बन्धुयशा उपवास करके उससे उत्पन्न हुए पुण्य के प्रभाव से चिर काल तक मनुष्य और देवगति के भोगों को भोगकर अन्त में कृष्ण की जाम्बवती नाम की पत्नी हुई है। इसलिए मैं मन, वचन और काय की शुद्धिपूर्वक उस उपवास को कहता हूँ।।14।।

**14. इसकी कथा इस प्रकार है-** द्वारकावती नगरी में बलदेव और कृष्ण ये दोनों भाई राज्य करते थे। एक समय वे दोनों ऊर्जयन्त पर्वत के ऊपर स्थित श्री नेमिनाथ जिनेन्द्र की देव वंदना करने के लिए गये। उनकी वंदना और स्तुति करके वे दोनों अपने (मनुष्य के) कोठे में बैठ गये वहाँ पर कृष्ण की पत्नी जाम्बवती ने वरदत्त नामक गणधर को नमस्कार करके उनसे अपने पूर्व भवों को पूछा। गणधर बोले- इसी जम्बूद्वीप के भीतर अपर विदेह में पुष्कलावती देशस्थ वीतशोकपुर में एक देविल नाम का वैश्य रहता था। उसकी पत्नी का नाम देवलमती था। उनके एक यशस्विनी नाम की पुत्री उत्पन्न हुई। उसका विवाह मंत्री के पुत्र सुमित्र के साथ कर दिया गया। परन्तु वह मर गया था। इसलिए वह बहुत दुःखी हुई। तब जिनदेव ने सदुपदेश देकर उसके लिए सम्यक्त्व ग्रहण करा दिया। परन्तु उसने उसे छोड़ दिया। अन्त में वह मरकर आनन्दपुर के राजा अन्तर की मेरुनन्दना नाम की स्त्री हुई। उसने अस्सी पुत्रों को प्राप्त किया। वह चार हजार वर्ष तक भोगों को भोगकर आर्तध्यान के साथ मृत्यु को प्राप्त हुई। इसलिए वह अनेक योनियों में चिर काल तक परिभ्रमण करती हुई इसी जम्बूद्वीप सम्बन्धी ऐरावत क्षेत्र के भीतर विजयपुर के स्वामी बन्धुषेण और बन्धुमती के बन्धुयशा नाम

की पुत्री हुई। उसे श्रीमती आर्यिका ने प्रोषध ग्रहण कराया। वह कुमारी अवस्था में ही मरण को प्राप्त होकर धनदत्त की स्वयंप्रभा नामकी प्रिय पत्नी हुई। तत्पश्चात् वह जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह सम्बन्धी पुष्कलावती देश के भीतर जो पुण्डरीकिणी नगरी अवस्थित है उसके स्वामी वज्रमुष्टि और सुप्रभा की सुमति नाम की पुत्री हुई। उसने सुदर्शना आर्यिका जी के समीप में आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर ली। फिर वह समयानुसार मृत्यु को प्राप्त होकर ब्रह्मेन्द्र की देवी हुई। वहाँ से च्युत होकर विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिणश्रेणी के अन्तर्गत जम्बूपुर के स्वामी जम्बव और सिंहचन्द्रा की पुत्री तू हुई है। अब तू यहाँ तप करके देव और फिर वहाँ से च्युत होकर मण्डलेश्वर होगी। अन्त में उसी पर्याय में तपश्चरण करके मुक्ति को भी प्राप्त करेगी। इस प्रकार विवेक से रहित वह कन्या भी जब प्रोषध के प्रभाव से इस प्रकार वैभव को प्राप्त हुई है तब भला जो भव्य विवेकपूर्वक उस प्रोषध का पालन करेंगे वे क्या वैसे वैभव को नहीं प्राप्त होंगे? अवश्य होंगे।।14।।

## 15. ललितघट श्रीवर्धन कुमारादि-कथा

*इह ललितघटाख्या मांससेवादियुक्ता मृतिसमयगृहीताच्चोपवासाद्विशुद्धात्।*
*अगमदमलसौख्यां चारुसर्वार्थसिद्धिम् उपवसनमतोऽहं तत्करोमि त्रिशुद्धया॥15॥*

ललितघट इस नाम से प्रसिद्ध जो श्रीवर्धन आदि कुमार यहाँ मांस भक्षण आदि व्यसनों में आसक्त थे वे सब मरण के समय में ग्रहण किये गये निर्मल उपवास के प्रभाव से उत्तम सुख के स्थानभूत सुन्दर सर्वार्थसिद्धि विमान को प्राप्त हुए हैं। इसलिए मैं मन, वचन व काय की शुद्धिपूर्वक उस उपवास को करता हूँ।।15।।

**15. इसकी कथा इस प्रकार है-** इसी वत्स देश के भीतर कौशाम्बी पुरी में हरिध्वज नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम वारूणी था। उनके श्रीवर्धन आदि बत्तीस पुत्र थे। बत्तीसें राजपुत्र तथा पांच सौ मन्त्रिपुत्रों इनमें परस्पर मित्रता थी। वे सब एक ही स्थान में आते-जाते व ठहरते थे। चूँकि वे सब ही सुन्दर थे, इसलिए मनुष्य उन सबको 'ललितघट' नाम से सम्बोधित करने लगे थे। वे सब एक

दिन शिकार के विचार से श्रीकान्त पर्वत पर गये। वहाँ जाकर उन सबने जब मृगों के ऊपर बाण छोड़े तब उनके धनुष चूर्ण-चूर्ण हो गये और वे सब गिर गये। तत्पश्चात् वे उठकर इस आश्चर्यजनक घटना की खोज करने लगे। उस समय उन्हें एक अभयघोष नाम के मुनिराज दिखाई दिये। उनमें से कितनों के मन में विचार आया कि यह कृत्य इसी मुनि ने किया है। इससे वे क्रोधित होकर मुनिराज का अनिष्ट करने के लिए उद्यत हो गये। परन्तु श्रीवर्धन ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया। तब उन सबने मुनिराज को नमस्कार किया। मुनि ने सबको धर्मवृद्धि कहकर आशीर्वाद दिया। श्रीवर्धन के पूछने पर मुनिराज ने धर्म की प्ररूपणा की। धर्मश्रवण करने के पश्चात् श्रीवधन कुमार ने उनसे अपनी आयु के प्रमाण को पूछा। मुनिराज ने कहा कि तुम सबकी आयु अब एक मास प्रमाण ही शेष रही है। यदि तुम इस बात का निश्चय करना चाहते हो तो इस घटनाओं को देखकर कर सकते हो- जब तुम सब अपने नगर को वापिस जाओगे तब तुम्हें बीच में अनेक फणों से भयानक सर्प तुम्हारे मार्ग को रोककर स्थित मिलेगा। परन्तु वह आप लोगों की भर्त्सना करने पर दृष्टि से ओझल हो जावेगा। उसके आगे तुम सब मार्ग में बैठे हुए एक मनुष्य बालक को देखोगे। वह तुम लोगों को देखकर वृद्धिंगत होता हुआ भयानक राक्षस के रूप में तुम सबको निगलने के लिए आवेगा। परन्तु वह भी तुम्हारी भर्त्सना से दृष्टि से ओझल हो जावेगा। तत्पश्चात् नगर के भीतर प्रवेश करके जब तुम राजमार्ग से अपने भवन को जाओगे तब कोई अन्धी स्त्री महल के उपरिम भाग से बालक के मल को पृथ्वी पर फेंकेगी और वह श्रीवर्धनकुमार के सिर पर पड़ेगा। तथा अगली रात को आप लोगों की मातायें यह स्वप्न देखेंगी कि आप लोगों ने राक्षस को खा लिया। बस, इन सब घटनाओं को देखकर मेरे वचन को तुम सत्य समझ लेना। इस प्रकार मुनिराज के कथन को सुनकर वे आश्चर्यान्वित होते हुए नगर की ओर गये। मार्ग में जाते हुए उन सबने जैसा कि मुनिराज ने कहा था उन सभी घटनाओं को देख लिया। इससे विरक्त होकर उन सबने अपने-अपने माता-पिता की स्वीकृति लेकर उन मुनिराज के निकट में दीक्षा धारण कर ली। तत्पश्चात् वे सन्यास को ग्रहण करके प्रायोपगमन (स्व-परवैयावृत्ति का त्याग) के साथ यमुना नदी के तट पर स्थित हुए ठीक एक मास के

अन्त में वे असमय में हुई वर्षा के कारण वृद्धि को प्राप्त हुए यमुना के प्रवाह में बह गये। इस प्रकार समाधि के साथ मरण को प्राप्त होकर वे सब सर्वार्थसिद्धि विमान में देव हुए। इस प्रकार वे मांस भक्षणादि में आसक्त होकर भी अन्त में ग्रहण किये उपवास के प्रभाव से जब वैसी समृद्धि को प्राप्त हुए हैं तब दूसरा जो जिनभक्त जीव अपनी शक्ति के अनुसार विशुद्धिपूर्वक उपवास को करता है वह क्या वैसी समृद्धि को नहीं प्राप्त होगा? अवश्य होगा।।15।।

## 16. चण्ड-चाण्डाल-कथा

*श्वपचकुलभवो ना भूरिदुःखी च कुष्ठी व्यभवदमरदेही दिव्यकान्तामनोजः।*
*अनशनसुविधायी स्वस्थ देहावसाने उपवसनमतोऽहं तत्करोमित्रिशुद्ध्या॥16॥*

जो मनुष्य चाण्डाल के कुल में उत्पन्न होकर अतिशय दुःखी और कोढ़ी था वह उपवास को करके उसके प्रभाव से अपने शरीर को छोड़ता हुआ देव पर्याय को प्राप्त हुआ। तब वह देवांगनाओं के लिए कामदेव के समान सुन्दर प्रतीत होता था। इसलिए मैं मन, वचन और काय की शुद्धिपूर्वक उस उपवास को करता हूँ।।16।।

**16. इसकी कथा-** इस प्रकार है- जम्बूद्वीप के भीतर पूर्व विदेह में एक पुष्कलावती नाम का देश व उसमें पुण्डरीकिणी नगरी है। वहाँ राजा श्रीपाल और वसुपाल राज्य करते थे। एक समय उस नगर के बाहर शिवंकर उद्यान में भीम नामक केवली का समवशरण स्थित हुआ। वहाँ खचरवती (सुखावती), सुभगा, रतिसेना ओर सुसीमा नाम की चार व्यन्तर देवियाँ आईं। उन्होंने केवली से पूछा कि हमारा पति कौन होगा? केवली ने कहा कि इसी नगर में पहले एक चण्ड नाम का चाण्डाल उत्पन्न हुआ था। उसे वसुपाल राजा ने विद्युद्वेग चोर के साथ लाख के घर में रखकर मार डाला था। उसके एक अर्जुन नाम का पुत्र था। उसके शरीर में उदुम्बर कुष्ठ रोग हो गया था। इससे कुटुम्बी जनों ने उसे घर से निकाल दिया था। वह घर से निकलकर इस समय सुरगिरि पर्वत के ऊपर कृष्ण गुफा में सन्यास के साथ स्थित है। वह पाँचवें दिन शरीर को छोड़कर तुम्हारा पति होगा। इसको सुनकर वे चारों

व्यन्तर देवियाँ उस सुरगिरि पर्वत पर गई और उससे बोली कि हे अर्जुन! तुम पाँचवे दिन शरीर को छोड़कर हम लोगों के पति होओगे, यह हमें भीम केवली ने बतलाया है। इसलिए तुम परीषह से पीड़ित हो करके भी संक्लेश न करना। इस प्रकार से सम्बोधित करती हुई वे चारों उसी के पास स्थित हो गईं। उस समय कुबेरपाल नाम का राजपुत्र वहाँ क्रीड़ा के लिये आया। उनको देखकर उसने क्रोध के आवेश में कहा कि यह चाण्डाल कोढ़ी है, इसलिए इस निकृष्ट को छोड़कर तुम मुझसे अनुराग करो। उन्होंने उत्तर दिया कि हम देवियाँ हैं और तुम हो मनुष्य, इसलिए तुम यह असम्बद्ध बात क्यों बोलते हो? यदि तुम भोगों की अभिलाषा रखते हो तो धर्म में निरत हो जाओ। इससे हम लोगों की बात ही क्या, तुम्हें सौधर्मादि स्वर्गों में हमसे भी विशिष्ट देवियाँ प्राप्त हो सकेंगी। तब वह वहाँ से चला गया। तत्पश्चात् वहाँ नागदत्त सेठ का पुत्र भवदत्त आया। उसने भी उनको देखकर वैसा ही कहा। तब उन सबने उसे भी वही उत्तर दिया जो कि कुबेरपाल के लिए दिया था। तत्पश्चात् वह कामज्वर से मरकर अपने पिता के द्वारा बनवाये गये नागभवन में उत्पल नाम का व्यन्तर हुआ। वह अर्जुन उन बहुत-सी देवियों का सुरदेव नाम का देव उत्पन्न हुआ। वह परिवार के साथ भीमकेवली की वंदना के लिये आया। उसको देखकर और उसके वृत्तान्त को जानकर भीमकेवली की समवशरण सभा में स्थित कितने ही जीव प्रोषध में निरत हो गये। इस प्रकार अनेक प्राणियों की हिंसा करने वाला वह चाण्डाल उपवास के प्रभाव से जब देव उत्पन्न हुआ है तब अन्य भव्य जीव क्या उसके फल से समृद्धि को प्राप्त नहीं होगा अवश्य होगा।।1 6।।

जो जीव उपवास के फल की प्ररूपणा करने वाले इस आठ संख्यारूप पद्य (आठ कथामय प्रकरण) को पढ़ेगा वह देव और उत्तम कीर्ति का धारक चक्रवर्ती होकर मुक्ति को प्राप्त होगा।।5।।

***इस प्रकार केशवनन्दी दिव्य मुनि के शिष्य रामचन्द्र मुमुक्षु के द्वारा विरचित पुण्यास्रव नाम ग्रन्थ में उपवास के फल को बतलाने वाला अष्टक समाप्त हुआ।।5।।***

## 17. श्रीषेण राजा-कथा

*श्रीश्रीषेणो नृपालः सुरनरगतिजं दाता सुतनुक*
*स्तज्जाये चानुमोदाद् द्विजवरतनुजा दानस्य सुमुनेः।*
*भुक्ता दीर्घे हि सौख्यं वितनुस्वगुणका जाताः सुविदिता*
*स्तस्मादानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये॥17॥*

मुनिराज के लिये आहार देने वाला श्रीषेण राजा सुन्दर शरीर से सहित होता हुआ देव और मनुष्य गति के लम्बे सुख को भोगकर शरीर से रहित सिद्धों के आठ गुणों से संयुक्त हुआ है- मुक्त हुआ है। तथा उसकी दोनों पत्नियों और उस ब्राह्मणपुत्री (सत्यभामा) ने भी उक्त मुनिदान की अनुमोदना से देव व मनुष्य गतियों के सुख को भोगा। यह भली-भाँति विदित है। इसलिये निर्मल गुणों के धारक भव्य जीवों को उत्तम मुनिराज के लिये दान देना चाहिये।।17।।

**17. इसकी कथा-** इस प्रकार है- इसी जम्बूद्वीप के भीतर भरतक्षेत्रगत आर्यखण्ड में मलय नाम का देश है। उसके अन्तर्गत रत्नसंचयपुर में श्रीषेण नाम का राजा राज्य करता था। उसके सिंहनन्दिता और अनिन्दिता नाम की दो पत्नियाँ थी। उन दोनों के क्रम से इन्द्र और उपेन्द्र नाम के दो पुत्र हुए। उसी नगर में एक सात्यक नाम का ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी का नाम जम्बू और पुत्री का नाम सत्यभामा था। ये सब वहाँ सुखपूर्वक स्थित थे। यहाँ एक दूसरी कथा है जो इस प्रकार है- मगध देश के अन्तर्गत अचल गाँव में धरणीजड़ नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी का नाम अग्निला था। इनके चन्द्रभूति और अग्निभूति नाम के दो पुत्र थे। उसके एक कपिल नाम का दासी पुत्र भी था जो अतिशय बुद्धिमान् और सुन्दर था। ब्राह्मण जब अपने पुत्रों को वेद आदि पढ़ाता तब वह भी उसे सुना करता

था। इससे वह वेदादि का अच्छा ज्ञाता हो गया था। उसके शास्त्र ज्ञान को देखकर धरणीजङ्घ ने उसे अपने घर से निकाल दिया था। तब वह यज्ञोपवीत आदि को धारण करके रत्नसंचयपुर में आया। सात्यक ने उसे गुणी और सुन्दर देखकर उसके साथ अपनी पुत्री सत्यभामा का विवाह कर दिया। वह ब्राह्मण के योग्य क्रियाकाण्ड में शिथिल होकर अतिशय कामी हो गया था। उसकी ऐसी प्रवृत्ति को देखकर सत्यभामा के मन में उसके कुल के विषय में सन्देह उत्पन्न हुआ। कुछ दिनों के पश्चात् धरणीधर उसकी वृद्धि को सुनकर धन की इच्छा से उसके पास आया। उसने 'यह मेरा पिता है' कहकर सब लोगों में प्रसिद्ध कर दिया। इस प्रकार धरणीजङ्घ उसके घर पर सुख से रहने लगा। एक दिन जब पति बाहर गया था तब सत्यभामा ने ससुर धरणीजङ्घ के सामने धन को रखकर उससे पूछा कि कपिल की जाति कौन-सी है? इसके उत्तर में उसने यथार्थ वृत्तान्त कह दिया। तब सत्यभामा ने राजभवन में जाकर उसके वृत्तान्त को राजा से कहा। राजा ने इस घटना पर विचार करके कपिल को गधे के ऊपर सवार कराया और नगर में घुमाते हुए देश से निकाल दिया। सत्यभामा राजभवन में ही रही। एक दिन अनन्त गति और अरिंजय नाम के दो चारण मुनिराज चर्या के निमित्त से राजभवन में आये। राजा ने पड़िगाहन करके उनको अतिशय विशुद्धिपूर्वक आहारदान दिया। उसकी दोनों रानियों और उस ब्राह्मणी (सत्यभामा) ने इस आहार दान की अनुमोदना की।

इस समय इन्द्र और उपेन्द्र नाम के दोनों राजपुत्र अनन्तमती वेश्या के निमित्त से परस्पर युद्ध करने के लिए उद्यत हो गये। राजा ने उन्हें इसके लिए बहुत रोका। परन्तु दोनों ने युद्ध के विचार को नहीं छोड़ा। तब राजा, दोनों रानियों और उस ब्राह्मणी सत्यभामा ने विषपुष्प को सूँघकर अपने प्राणों का परित्याग कर दिया। मुनियों के लिये दिये गये उस दान के प्रभाव से वह राजा धातकी खण्डद्वीप के पूर्व मेरु सम्बन्धी उत्तम भोग भूमि में आर्य हुआ। उक्त दान की अनुमोदना करने से सिंहनन्दिता उस आर्य की आर्या हुई। अनन्दिता का जीव उसी भोगभूमि में आर्य तथा उक्त ब्राह्मणपुत्री इस आर्य की आर्या हुई। ये सब वहाँ पानकांग, तूर्यांग, भूषणांग, ज्योतिरंग, गृहांग, भाजनांग,

दीपांग; माल्यांग, भोजनांग और वस्त्रांग; इस दस प्रकार के कल्पवृक्ष के फल को भोगते हुए दिव्य सुख का अनुभव करने लगे। उनकी आयु तीन पल्य प्रमाण थीं वे व्याधि आदि के दुख से सर्वथा रहित थे। तत्पश्चात् वह श्रीषेण राजा का जीव मरकर सौधर्म स्वर्ग के भीतर श्रीप्रभ विमान में श्रीप्रभ नाम का देव हुआ। वहाँ से च्युत होकर वह विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में स्थित रथनूपुर के राजा अर्ककीर्ति और रश्मिमाला का अमिततेज नाम का पुत्र हुआ जो विद्याधरों का चक्रवर्ती था। उसने बहुत समय तक राज्य किया। तत्पश्चात् वह तप के प्रभाव से आनत स्वर्ग में नन्दश्रमण विमान के भीतर मणिचूड नाम का देव हुआ। फिर वहाँ से च्युत होकर वह इसी जम्बूद्वीप के भीतर पूर्व विदेह में जो वत्सकावती देश व उसके भीतर प्रभाकरी पुरी है उसके स्वामी स्तिमितसागर और वसुन्धरी के अपराजित नाम का पुत्र हुआ जो बलदेव था। उसने बहुत समय तक राज्य करके अन्त में तप को स्वीकार किया। उसके प्रभाव से वह अच्युत स्वर्ग में देव हुआ। फिर वहाँ से आकर इसी द्वीप के पूर्व विदेह में मंगलावती देशस्थ रत्नपुर के स्वामी क्षेमंधर महाराजा और हेमचित्रा के वज्रायुध नाम का पुत्र हुआ। क्षेमंकर महाराज तीर्थंकर थे। वज्रायुध ने सकल चक्रवर्ती होकर बहुत काल तक राज्य किया। तत्पश्चात् वह तपश्चरण करके उसके प्रभाव से उपरिम-अधस्तन ग्रैवेयक में सौमनस विमान के भीतर अहमिन्द्र हुआ। फिर वहाँ से चयकर वह इसी द्वीप के पूर्व विदेह में स्थित पुष्कलावती देश के अन्तर्गत पुण्डरीकिणी पुरी में तीर्थंकर कुमार अभ्ररथ (धनरथ) राजा और मनोहरी रानी के मेघरथ नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। वह महामण्डलेश्वर था। तत्पश्चात् वह तपश्चरण करके उसके प्रभाव से सर्वार्थसिद्धि में देव हुआ। वहाँ से च्युत होकर वह गर्भावतरण कल्याणपूर्वक कुरुजांगल देश के अन्तर्गत हस्तिनापुर के राजा विश्वसेन और रानी ऐरा का पुत्र शान्तिनाथ तीर्थंकर हुआ। यह चक्रवर्ती के साथ कामदेव होकर मोक्ष को प्राप्त हुआ। इस प्रकार यहाँ केवल दान के फल का उल्लेख मात्र किया गया है। विस्तार से इस कथा का निरूपण मैंने शान्तिचरित्र में किया है, इसलिये उसकी विशेष प्ररूपणा यहाँ नहीं की जा रही है। इसको वहाँ से जान लेना चाहिये। इस प्रकार से एक बार दान देने वाला वह मिथ्यादृष्टि भी

श्रीषेण राजा जब उसके फल से बारह भवों में सुख को भोगकर मुक्ति को प्राप्त हुआ है तब जो सम्यग्दृष्टि भव्य जीव दान देता है वह क्या मुक्तिकान्ता का प्रिय नहीं होगा? अवश्य होगा।।17।।

## 18. वज्रजंघ राजा-कथा

*ख्यातः श्रीवज्रजङ्घो विगलिततनुका जाताः सुवनिता*
*तस्य व्याघ्रो वराहः कपिकुलतिलकः क्रूरो हि नकुलः।*
*भुक्त्वा ते सारसौख्यं सुरनरभुवने श्रीदानफलत*
*स्तस्माद्दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये॥18॥*

प्रसिद्ध वज्रजंघ राजा, उसकी पत्नी (श्रीमती), व्याघ्र, शूकर, वानर कुल में श्रेष्ठ बंदर और दुष्ट नेवला; ये सब मुनिदान के फल से देवलोक और मनुष्यलोक में उत्तम सुख को भोगकर अन्त में शरीर से रहित (सिद्ध) हुए हैं। इसीलिये निर्मल गुणों के धारक भव्य जीवों को उत्तम पात्र के लिए दान देना चाहिये।।18।।

**18. इसकी कथा-** आदिपुराण में प्रसिद्ध है। वहाँ से ही उसका निरूपण किया जाता है- इसी जम्बूद्वीप में अपरविदेह क्षेत्र के भीतर गन्धिला देश के मध्य में विजयार्ध पर्वत है। उसकी उत्तर श्रेणी में एक अलकापुर नाम का नगर है। उसमें अतिबल नाम का राजा राज्य करता था। रानी का नाम मनोहरी था। इन दोनों के एक महाबल नाम का पुत्र था। उसको राज्य के कार्य में नियुक्त करके अतिबल ने दीक्षा ले ली। वह तपश्चरण करके केवलज्ञानी होता हुआ मोक्ष को प्राप्त हुआ। महाबल विद्याधरों का चक्रवर्ती था। उसके महामति, संभिन्नमति, शतमति और स्वयम्बुद्ध नाम के चार मन्त्री थे। इनकी सहायता से वह राज्य कार्य करता था। एक समय महाबल राजा के सभा भवन की छटा को देखकर स्वयम्बुद्ध मन्त्री बोला कि हे राजन्! यह तुम्हारा सौन्दर्य आदि सब धर्म प्रभाव से उत्पन्न हुआ। इसलिए तुम्हें धर्म करना चाहिये। स्वयम्बुद्ध के इस उपदेश को सुनकर दूसरे शून्यवादी मन्त्री बोले कि धर्मी के होने पर धर्मों का विचार करना योग्य है। पहिले परलोक से

सम्बन्ध रखने वाला जीव (धर्मी) सिद्ध होना चाहिये। तत्पश्चात् परलोक के सुख-दुख का विचार करना उचित माना जा सकता है। परन्तु जब जीव ही नहीं है तब भला धर्म करने से क्या अभीष्ट सिद्ध होगा? इस पर स्वयम्बुद्ध ने प्रथमतः उन लोगों के लिए युक्तिपूर्वक जीव की सिद्धि की। तत्पश्चात् उसने दृष्टान्त के रूप में जीव के अस्तित्व को प्रगट करने वाली एक देखी, सुनी और अनुभव में आयी हुई कथा को कहते हुए सदस्यों से उसके सुनने की प्रार्थना की। वह बोला-

पहिले इस महाबल राजा के वंश में एक अरविन्द नाम का राजा था। उसकी पत्नी का नाम विजया था। इनके हरिश्चन्द्र और कुरुविन्द नाम के दो पुत्र थे। एक समय अरविन्द के लिए दाहज्वर उत्पन्न हुआ। तब उसने हरिश्चन्द्र से प्रार्थना की कि हे पुत्र! मुझे किसी ठण्डे स्थान में ले चलो। तब पुत्र ने उसके शीतलतारूप कार्य को सम्पन्न करने के लिए जलवर्षिणी विद्या को भेजा। परन्तु वह उसके दाहज्वर को शान्त नहीं कर सकी। इस प्रकार जब वह अरविन्द दुःख का अनुभव करता हुआ स्थित था तब वहाँ दो छिपकलियाँ परस्पर लड़ रही थीं। उनमें से एक के क्षत शरीर से रुधिर की बूँद निकलकर अरविन्द के शरीर के ऊपर जा गिरी। इससे उसे कुछ शान्ति प्राप्त हुई। रौद्र परिणाम के कारण उसे विभंगज्ञान पहिले ही उत्पन्न हो चुका था। इससे उसने मृगों के रहने के स्थान को जान करके पुत्र से प्रार्थना की कि इस (अमुक) वन में मृग रहते हैं, उनके रुधिर से तुम एक वापिका को पूर्ण करो। उसमें जलक्रीड़ा करने से मुझे सुख प्राप्त हो सकता है। इसके बिना मुझे किसी प्रकार से सुख नहीं हो सकता है। तब पिता की भक्ति से वह पुत्र उस वन में जाकर मृगों को पकड़ने लगा। उसे इससे रोकते हुए मुनिराज बोले कि तुम्हारे पिता की आयु अतिशय अल्प शेष रही है। वह मरकर नरक जाने वाला है। ऐसी अवस्था में तुम व्यर्थ पाप का संग्रह क्यों करते हो? इसे सुनकर कुमार ने कहा कि मेरे पिता बहुत ज्ञानी है, वह भला नरक में क्यों जायेगा? तत्पश्चात् मुनिराज बोले कि वह केवल पाप के कारण को ही जानता है, पुण्य के कारण को नहीं जानता। तुम जाकर उससे पूछो कि उस वन में और क्या है। यदि वह मुझे जानता है तो समझो कि तुम्हारा पिता ज्ञानी है। तब पुत्र ने

जाकर पिता से वैसा ही पूछा। परन्तु वह इसे नहीं जानता था। ऐसी स्थिति में पुत्र ने एक वापिका को बनवाकर उसे रुधिर के स्थान पर लाख के रस से भरवा दिया। तब अरविंद क्रीड़ा करने के लिए उसके भीतर प्रविष्ट हुआ। परन्तु जब उसने उसका आनन्द के साथ पान किया तो उसे ज्ञात हो गया कि यह रुधिर नहीं है, किन्तु लाख का रस है। तब पुत्र की इस धोखा-देही से क्रोधित होकर वह उसे छूरी से मारने के लिए दौड़ा, किन्तु ऐसा करते हुए वह स्वयं ही अपनी उस छूरी के ऊपर गिरकर मर गया और नरक में जा पहुँचा। इस वृत्तान्त को नगर के सब ही वृद्ध जन कहा करते हैं।

इसके अतिरिक्त इसकी वंशपरम्परा में दण्डक नाम का एक दूसरा राजा भी हो गया है। उसकी पत्नी का नाम सुन्दरी था। इनके एक मणिमाली नाम का पुत्र था। दण्डक मरकर अपने भाण्डागार में सर्प हुआ था। वह केवल मणिमाली को ही उसके भीतर प्रवेश करने देता और दूसरे के लिए काटने को दौड़ता था। एक बार मणिमाली ने इस घटना के सम्बन्ध में किसी रतिचारण नाम के अवधिज्ञानी मुनिराज से पूछा। मुनि ने उसके पूर्वोक्त वृत्तान्त को कह दिया। उसको सुनकर मणिमाली ने भण्डागार में जाकर उस सर्प को सम्बोधित किया। इससे सर्प ने अणुव्रतों को ग्रहण कर लिया। वह आयु के अन्त में मरकर सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। उसने आकर मणिमाली की दिव्य वस्त्राभरणों से पूजा की। इस महाबल के कण्ठ आदि स्थानों में सुशोभित ये आभूषण क्या वे ही नहीं हैं? अर्थात् वे ही हैं।

इसके अतिरिक्त आप लोग इस देखी और अनुभव में आयी हुई कथा के ऊपर भी विश्वास करें- महाबल राजा के प्रपितामह सहस्रबल ने अपने पुत्र शतबल को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर ली थी। वे मुक्ति प्राप्त हुए हैं। पश्चात् शतबल भी अपने पुत्र अतिबल के लिए राज्य देकर दीक्षित हो गया था। वह मरण को प्राप्त होकर महेन्द्र स्वर्ग में देव हुआ। अतिबल ने भी इसके लिए (महाबल के लिए) राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर ली। इसकी कुमारावस्था में हम चारों ही इसके साथ क्रीड़ा करने के लिए मन्दर पर्वत के ऊपर गये थे। वहाँ जिनालय में से जब यह जिनपूजा करके आ रहा था तब महेन्द्र स्वर्ग का वह देव इसको देखकर

बोला कि तुम मेरे नाती हो। फिर उसने इसे दिव्य वस्त्रादि दिये। उक्त देव को उन सबने भी देखा था। इसके अतिरिक्त जब तुम्हारे पिता को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था तब उनकी पूजा के लिए आते हुए देवों को हम सबने ही देखा था।

उक्त प्रकार से स्वयम्बुद्ध मंत्री ने अनेक युक्तियों के द्वारा जीव की सिद्धि करके महाबल के द्वारा दिये गये जयपत्र (विजय के प्रमाणपत्र) को प्राप्त किया। किन्तु फिर भी महाबल धर्म में दृढ़ नहीं हुआ। वह अनुक्रम से अतिशय वृद्ध हो गया था। एक समय स्वयम्बुद्ध मन्दर पर्वत पर गया। वह जिनालयों की पूजा करके जैसे ही अपने नगर की ओर आने को उद्यत हुआ वैसे ही युगंधर तीर्थंकर के समवशरण से आदित्यगति और अरिंजय नाम के दो चारण ऋषि आकाश मार्ग से नीचे आये। उस समय युगंधर तीर्थंकर का समवशरण पूर्वविदेह के भीतर सीता नदी के उत्तर तट पर स्थित कच्छा देश में अरिष्टपुर को सुशोभित कर रहा था। उनको नमस्कार कर स्वयम्बुद्ध ने पूछा कि प्रभो! महाबल धर्म को ग्रहण नहीं कर रहा है, इसका कारण क्या है। उत्तर में मुनिराज बोले कि मैं महाबल के पूर्व भव के वृत्तान्त कहता हूँ– इसी देश में आर्यखण्ड के भीतर एक सिंहपुर नाम का नगर है। उसमें श्रीषेण नाम का राजा राज्य करता था। रानी का नाम सुन्दरी था। उनके जयवर्मा और श्रीवर्मा नाम के दो पुत्र थे। उनमें बड़ा पुत्र जयवर्मा बुद्धिहीन था। इसीलिए श्रीषेण ने दीक्षा लेते समय जयवर्मा को राजा न बनाकर श्रीवर्मा को राजा बनाया था। इससे विरक्त होकर जयवर्मा स्वयम्प्रभाचार्य के समीप में दीक्षित हो गया। उसे बालों (केशों) को बिल के भीतर रखते समय सर्प ने काट लिया। इसी समय एक महीधर नाम का विद्याधर विमान में बैठकर विभूति के साथ वहाँ से जा रहा था। उसे देखकर महाबल ने निदान किया कि इस तप के प्रभाव से मैं विद्याधर होऊँगा। इसी निदान के कारण वह महाबल होकर विषय भोगों को छोड़ने के लिए असमर्थ हो रहा है। परन्तु आज रात्रि में उसने स्वप्न में देखा है कि उसे महामति आदि तीन मन्त्रियों ने पकड़कर दुर्गन्धयुक्त कीचड़ में डुबा दिया है। उसमें से निकालकर तुमने उसे स्नान कराते हुए सिंहासन पर बैठाया और पूजा की। अपने इस स्वप्न के वृत्तान्त को सुनाने के

लिए वह तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। जब तक वह उस स्वप्न के वृत्तान्त को तुम्हें नहीं सुनाता है तब तक तुम उसके पहिले ही उस स्वप्न के वृत्तान्त को कह देना। इससे वह दृढ़तापूर्वक धर्म को ग्रहण कर लेगा। अब उसकी आयु केवल एक मास की ही शेष रही है। इस वृत्तान्त को सुनकर स्वयम्बुद्ध ने उन दोनों मुनियों को नमस्कार किया और अपने नगर को वापिस चला गया। वहाँ पहुँचकर उसने महाबल राजा से उस स्वप्न के वृत्तान्त को उसी प्रकार से कह दिया। इससे वह अतिशय वैराग्य को प्राप्त हुआ। तब उसने अपने पुत्र अतिबल को राजपद पर प्रतिष्ठित किया और फिर सर्व जिनालयों में जाकर अष्टान्हिक पूजा की। तत्पश्चात् सिद्धकूट के ऊपर जाकर उसने परिजन को विदा किया और स्वयम्बुद्ध के उपदेशानुसार केशलोंच करते हुए दीक्षा ले ली। दीक्षा के साथ ही उसने प्रायोपगमन सन्यास को भी ग्रहण कर लिया। इस प्रकार से वह बाईस दिन में शरीर को छोड़कर ईशान कल्प के अन्तर्गत स्वयंप्रभ विमान में ललितांग नाम का महर्द्धिक देव हुआ। उसके स्वयंप्रभा, कनकमाला, कनकलता और विद्युल्लता ये चार महादेवियाँ थी। आयु उसकी दो सागरोपम प्रमाण थी। इस बीच पाँच-पाँच पल्यों की आयु में उसकी वे बहुत-सी देवियाँ मरण को प्राप्त हो गईं। अन्त में जब उसकी पाँच पल्य मात्र आयु शेष रह गई तब स्वयंप्रभा नाम की जो देवी उत्पन्न हुई वह उसे अतिशय प्यारी हुई। उसके साथ वह सुखपूर्वक स्थित रहा। तत्पश्चात् छह मास प्रमाण आयु के शेष रह जाने पर जब मरण के चिन्ह दिखने लगे तब वह बहुत दुःखी हुआ। उसकी वैसी अवस्था देखकर सामानिक देवों ने उसे सम्बोधित किया। तब वह समचित्त होकर- विषाद को छोड़कर-मरा और फिर इसी पूर्वविदेह के भीतर पुष्कलावती देश में स्थित उत्पलखेट पुर के राजा वज्रबाहु और वसुंधरी के वज्रजंघ नामक पुत्र हुआ। और वह स्वयंप्रभा देवी उस ईशान कल्प से च्युत होकर उसी पुष्कलावती देश के भीतर स्थित पुण्डरीकिणीपुर के राजा वज्रदन्त एवं रानी लक्ष्मीमती के श्रीमती नाम की पुत्री हुई। वह क्रमशः यौवन अवस्था को प्राप्त होकर सुखपूर्वक स्थित थी।

एक समय वज्रदन्त राजा सभाभवन में बैठा हुआ था। उस समय दो पुरुषों ने आकर निवेदन किया कि हे देव! आपके पिता यशोधर

भट्टारक तीर्थंकर को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। तथा आयुधशालामें चक्ररत्न भी उत्पन्न हुआ। उसी समय किसी स्त्री ने आकर प्रार्थना की कि हे देव! देवों के आगमन को देखकर श्रीमती मूर्च्छित हो गई है। तब वज्रदन्त राजा उससे शीतोपचार क्रिया के द्वारा श्रीमती की मूर्च्छा को दूर करने के लिए कहकर समवशरण में चला गया। वहाँ यशोधर जिनेन्द्र की वंदना करने के पश्चात् विशुद्धि की अधिकता से उस वज्रदन्त चक्रवर्ती को देशावधिज्ञान प्राप्त हो गया। तत्पश्चात् उसने दिग्विजय की। इधर श्रीमती ने मौन धारण कर लिया। तब पण्डिता ने उससे एकान्त में इस मौन के कारण को पूछा। उत्तर में श्रीमती ने कहा कि देवों के आगमन को देखकर मुझे पूर्वभवों का स्मरण हुआ है। इसी से मैंने मौन का आश्रय लिया है। तब पण्डिता बोली कि तो फिर तुम उन भवों का वृत्तान्त मुझे सुनाओं। इस पर उसने अपने पूर्व भवों का वृत्तान्त इस प्रकार से कहा– हे पण्डिते! धातकी खण्ड द्वीप के पूर्व मेरू सम्बन्धी अपरविदेह में एक गन्धिला देश है। उसमें एक पाटली नाम का गाँव है। वहाँ पर एक नागदत्त नाम का वैश्य रहता था। उसकी पत्नी का नाम वसुमती था। इनके नन्दी, नन्दिमित्र, नन्दिसेन, वरसेन और जयसेन नाम के पाँच पुत्र और मदनकान्ता व श्रीकान्ता नाम की दो पुत्रियाँ थीं। इनके पश्चात् जब मैं आठवीं पुत्री माता के गर्भ में आयी तब पिता का मरण हो गया। तत्पश्चात् मेरा जन्म होने पर वे सब भाई और दोनों बहिनें भी मर गई। इसके पश्चात् कुछ ही दिनों में मेरी माता की माता और फिर थोड़े ही वर्षो में माता भी कूच कर गई। तब निर्नामिका नाम की एक मैं ही शेष रही। एक समय मैं चारणचरित नाम के वन में प्रविष्ट होकर उसके बीच में स्थित अम्बरतिलक पर्वत के ऊपर चढ़कर गई। वहाँ मैंने पाँच-सौ चारण ऋषियों के साथ विराजमान पिहितास्रव मुनिराज को देखा। उनको नमस्कार करके मैंने पूछा कि मैं किस पाप के कारण इस प्रकार की हुई हूँ? मुनिराज बोले– इसी देश के भीतर पलालकूट नाम के गाँव में एक देविल नाम का ग्रामकूट (गाँव का मुखिया) रहता था। उसका स्त्री का नाम वसुमती था। इनके एक नागश्री नाम की पुत्री थी। एक बार नागश्री ने अपने क्रीड़ास्थान के पास में स्थित वटवृक्ष के खोते में विराजमान समाधिगुप्त मुनिराज को देखा। वे उस समय परमागम

का पाठ कर रहे थे। नागश्री को यह सहन नहीं हुआ। इसलिए उसे रोकने के लिए उसने एक कुत्ते के सड़े-गले दुर्गन्धित शरीर को उस वटवृक्ष के नीचे डाल दिया। उसको देखकर मुनिराज ने कहा कि हे पुत्री! ऐसा करके तूने अपने को अनन्त दुःख का भाजन बना लिया है। यह सुनकर नागश्री ने वहाँ से उक्त कुत्ते के मृत शरीर को हटा दिया। तत्पश्चात् उसने मुनिराज के पाँवों में गिरकर इसके लिए बार-बार क्षमा प्रार्थना की। वही आयु के अन्त में मरकर तू उत्पन्न हुई है। पीछे शान्त परिणाम हो जाने से तूने मनुष्य पर्याय को प्राप्त कर लिया है। इस प्रकार मुनिराज के कहने पर मैंने (निर्नामिका ने) अपने योग्य व्रतों को ग्रहण कर लिया। साथ ही मैंने कनकावली और मुक्तावली आदि उपवासों को भी किया। इस प्रकार से आयु के अन्त में शरीर को छोड़कर मैं श्रीप्रभ विमान में ललितांग देव की स्वयंप्रभा नाम की देवी हुई थी। जब मेरी आयु छह महीने शेष रही थी तब ललितांग वहाँ ये च्युत हो गया। वह कहाँ पर उत्पन्न हुआ है, यह मैं नहीं जानती हूँ। इस जन्म में यदि वही वर प्राप्त हो जाता है तो मैं भोगों का उपभोग करूँगी, अन्यथा नहीं। इस प्रकार से प्रतिज्ञा करके वह श्रीमती श्रीप्रभ विमान में स्थित अपने स्वयं के और ललितांग देव के चित्रों के पट पर लिखकर उन्हें देखती हुई समय बिताने लगी।

उधर वज्रदन्त चक्रवर्ती छह खण्ड स्वरूप पृथ्वी को स्वाधीन करके अपने नगर में आया और भव में प्रविष्ट हुआ। जिस दिन वह चक्रवर्ती वापिस आया उसी दिन पण्डिता उस चित्रपट को लेकर गई। चक्रवर्ती के साथ में आये हुए राजाओं में से शायद इसे देखकर किसी को जातिस्मरण हो जाय, इस विचार से वह पण्डिता समस्त जनों से आराधनीय महापूत नामक जिनालय में पहुँची। वह वहाँ उस चित्रपट को एक स्थान में टाँगकर गुप्तरूप से उसे देखती हुई वहीं पर स्थित हो गई। इधर श्रीमती पिता को नमस्कार करके उसके पास में आ बैठी। उसके मलिन मुख को देखकर चक्रवर्ती बोला कि पुत्री! तेरे पति का मिलाप अवश्य होगा, तू इसके लिए चिन्ता मर कर। यह आपको कैसे ज्ञात हुआ, इस प्रकार पुत्री के पूछने पर वज्रदन्त ने कहा कि तेरे और मेरे भी गुरू वही एक पिहितास्रव रहे हैं। तब उसने फिर से भी पूछा कि

यह किस प्रकार से? इस पर चक्रवर्ती ने उस वृत्तान्त को इस प्रकार से कहा-

मैं इस भव के पूर्व पाँचवें भव में इसी पुण्डरीकिणी नगरी में अर्धचक्री का पुत्र चन्द्रकीर्ति था। मेरे मित्र का नाम जयकीर्ति था। हम दोनों श्रावक के व्रतों का पालन करते हुए प्रीतिवर्धन नामक उद्यान के भीतर चन्द्रसेन आचार्य के समीप में सन्यास के साथ मरण को प्राप्त होकर महेन्द्र स्वर्ग में देव हुए। फिर वहाँ से च्युत होकर चन्द्रकीर्ति का जीव पुष्करार्द्ध द्वीप के पूर्व मन्दर सम्बन्धी पूर्वविदेह में मंगलावती देश के भीतर जो रत्नसंचयपुर नाम का नगर है उसके राजा श्रीधर और रानी मनोहरी के श्रीवर्मा नाम का पुत्र हुआ, जो कि बलभद्र था। दूसरा (जयकीर्ति का जीव) उसी की दूसरी रानी श्रीमती के विभीषण नाम का पुत्र हुआ, जो कि वासुदेव (नारायण) था। श्रीधर राजा ने इन दोनों को अपने पद पर प्रतिष्ठित करके दीक्षा ग्रहण कर ली। वह तपश्चरण करके मुक्ति को प्राप्त हुआ। मनोहरी ने पुत्र के प्रेमवश दीक्षा नहीं ली, वह समाधि के साथ मरण को प्राप्त होकर ईशान कल्प के अन्तर्गत श्रीप्रभ विमान में देव हुई। इधर बलदेव और नारायण दोनों राज्य करते हुए स्थित रहे। आयु के अन्त में जब नारायण की मृत्यु हुई तब बलदेव बहुत व्याकुल हुआ। उस समय वह उन्मत्त के समान व्यवहार करने लगा। तब भूतपूर्व उसकी माता के जीव ललितांग देव ने आकर उसे सम्बोधित किया। इससे प्रबोध को प्राप्त होकर उसने अपने पुत्र भूपाल को राज के पद पर प्रतिष्ठित करते हुए युगंधर तीर्थंकर के निकट में दस हजार राजाओं के साथ दीक्षा ले ली। अन्त में वह शरीर को छोड़कर अच्युत स्वर्ग में इन्द्र हुआ। उसे जब ललितांग के द्वारा किये गये उपकार का स्मरण हुआ तब वह ईशान कल्प में जाकर उस ललितांग देव को प्रीतिवर्धन विमान से अपने कल्प में ले आया। वहाँ उसने उसकी पूजा की वह ललितांग देव वहाँ से च्युत होकर इसी जम्बूद्वीप के भीतर मंगलावती देश में स्थित विजयार्ध पर्वत की दक्षिणश्रेणिगत गन्धर्वपुर के राजा वासव ओर रानी प्रभावती के महीधर नाम का पुत्र हुआ। उसको राज्य देकर वासव राजा ने अरिंजय मुनिराज के समीप में दीक्षा ले ली। वह क्रम से मुक्ति को प्राप्त हुआ। प्रभावती रानी पद्मावती आर्यिका के

निकट में दीक्षित होकर अच्युत कल्प में प्रतीन्द्र हुई। पुष्करार्धद्वीप के पश्चिम मेरू सम्बन्धी पूर्व विदेह में वत्सकावती देश है उसके भीतर स्थित प्रभाकरी पुरी में विनयंधर भट्टारक के केवलज्ञान उत्पन्न होने पर सब देव उनकी पूजा के लिए आये। महीधर भी उस मेरू पर्वत के ऊपर स्थित जिनालयों की पूजा के लिए गया था। उसको देखकर अच्युतेन्द्र ने पूछा कि हे महीधर! तुम क्या मुझे जानते हो? महीधर ने उत्तर दिया कि नहीं। इस पर अच्युतेन्द्र ने कहा कि जब तुम मनोहरी हुए थे तब तुम्हारा पुत्र मैं श्रीवर्मा था। तुमने ललितांग होकर मुझे सम्बोधित किया था। इससे मैं अच्युतेन्द्र हुआ हूँ। मैंने अच्युत कल्प में ले जाकर तुम्हारी पूजा की थी। मैं वही अच्युतेन्द्र हूँ। इस पूर्व वृत्तान्त को सुनकर महीधर को जातिस्मरण हो गया। तब उसने अपने पुत्र महीकम्प को राज्य देकर जगन्नन्दन नामक मुनिराज के समीप में दीक्षा ले ली। वह मरकर प्राणतेन्द्र हुआ। वहाँ से च्युत होकर वह धातकी खण्ड द्वीप के पूर्व मेरू सम्बन्धी अपरविदेहगत गन्धिला देश में जो अयोध्यापुरी है उसके राजा जयवर्मा और रानी सुप्रभा के अजितंजय नाम का पुत्र हुआ। उसको राज्य देकर वह जयवर्मा अभिनन्दन मुनिराज के पास दीक्षित हो गया। अन्त में वह मुक्ति को प्राप्त हुआ। रानी सुप्रभा सुदर्शन आर्यिका के समीप में दीक्षित होकर तप के प्रभाव से अच्युत स्वर्ग में देव हुई। अजितंजय अभिनन्दन केवली की पूजा करके पापास्रव से रहित हुआ। इसलिए उसका नाम पिहितास्रव हुआ, वह क्रम से सकल चक्रवर्ती हुआ। तत्पश्चात् उसी अच्युतेन्द्र से सम्बोधित होकर उसने अपने पुत्र को राज्य देकर बीस हजार राजकुमारों के साथ मन्दरधैर्य (मन्दस्थविर) नामक मुनिराज के समीप में दीक्षा ले ली। वह चारण ऋद्धि का धारी हो गया। जब वह पाँच सौ चारण मुनियों के साथ अम्बरतिलक पर्वत के ऊपर स्थित था तब तूने निर्नामिका के भव में उसकी वंदना की थी। वह अच्युतेन्द्र वहाँ से आकर यशोधर तीर्थंकर और वसुमती का पुत्र मैं हुआ हूँ। पिहितास्रव ने ललितांग के भव में मुझ बलदेव को सम्बोधित किया था, इसलिए वह पिहितास्रव जैसे तेरे गुरू है वैसे ही मेरे भी गुरू हुए। उस श्रीप्रभ विमान में जो ललितांग देव हुआ उसकी मैंने अच्युतेन्द्र के रूप में वहाँ ले जाकर पूजा की थी। तेरे ललितांग को गर्भित करके मैंने

बाईस ललितांग की पूजा की है। यह तू भी जानती है। और क्या तुझे यह स्मरण है। कि जब पिहितास्रव भट्टारक को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था तब तूने, मैंने और ललितांग आदि सब देवों ने अम्बरतिलक पर्वत के ऊपर उनकी पूजा की थी। यह अन्य भी एक अभिज्ञान (चिन्ह) है- उस समय तेरा ललितांग, तू स्वयंप्रभा, ब्रह्मेन्द्र, लान्तवेन्द्र और मैं अच्युतेन्द्र; इस प्रकार हम सबने मिलकर युगंधर तीर्थंकर के चरित्र के विषय में उनके गणधर से पूछा था, जिसके उत्तर में उन्होंने यह कहा था-

जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह वत्सकावती देश है। इसके अन्तर्गत सुसीमानगरी में अजितंजय राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम सत्यभामा था। इनके प्रहसित और विकसित नाम के दो पुत्र थे, जो शास्त्र विषयक ज्ञान के मद में चूर रहते थे। राजा के मन्त्री का नाम अमितगति था। एक समय वह राज नगर में आये हुए मतिसार नामक मुनिराज की वंदना करने के लिए गया। उसके साथ जाकर उन दोनों पुत्रों ने मुनिराज से शास्त्रार्थ किया, जिसमें वे पराजित हुए। इससे विरक्त होकर उन दोनों ने वहीं पर मुनि दीक्षा ले ली। वे दोनों आयु के अन्त में समाधिपूर्वक शरीर को छोड़कर महाशुक्र कल्प में देव हुए। तत्पश्चात् वहाँ से च्युत होकर वे धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वविदेह में जो पुष्कलावती देश है उसके अन्तर्गत पुण्डरीकिणी पुर के राजा धनन्जय की जयावती और जयसेना नाम की दो रानियों के क्रमशः महाबल और अतिबल नाम के पुत्र हुए। ये क्रम से बलदेव और नारायण पद के धारक थे। राजा धनन्जय ने उन्हें राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर ली। अन्त में वह तप के प्रभाव से मुक्ति को प्राप्त हुआ। वे दोनों मण्डलीक और अर्धचक्री होकर सुखपूर्वक स्थित रहे। तत्पश्चात् अतिबल का मरण हो जाने पर महाबल ने समाधिगुप्त मुनिराज के पास में दीक्षा ग्रहण कर ली। वह तप के प्रभाव से प्राणत स्वर्ग में पुष्पचूड नाम का देव हुआ। तत्पश्चात् वहाँ से च्युत होकर धातकी खण्ड द्वीप के पूर्व मन्दर सम्बन्धी पूर्व विदेह में जो वत्सकावती देश है उसमें स्थित प्रभावतीपुर के राजा महासेन और रानी वसुंधरी के जयसेन नामक पुत्र हुआ। वह क्रमशः राजा और फिर सकलचक्रवर्ती हुआ। बहुत समय तक राज्य करने

के पश्चात् उसने सीमंधर स्वामी के निकट में दीक्षित होकर दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओं का चिंतन किया। अन्त में वह प्रायोपगमन सन्यासपूर्वक उपरिम ग्रैवेयक में अहमिन्द्र हुआ। वहाँ से च्युत होकर पुष्करार्धद्वीप के पश्चिम मन्दर सम्बन्धी पूर्वविदेह में जो मंगलावती देश है। उसके अन्तर्गत रत्नसंचय पुर के राजा अजितंजय और रानी वसुमती के गर्भावतरण आदि कल्याण कों के साथ ये युगंधर स्वामी हुए हैं। इस प्रकार जो उक्त गणधर ने उस समय कहा था उसका तुझे स्मरण आता है कि नहीं? इसके उत्तर में श्रीमती ने कहा कि इस सबका मुझको स्मरण है। परन्तु मेरा वह प्रियतम कहाँ पर उत्पन्न हुआ है, यह मुझे बतलाइये। इस प्रकार श्रीमती के पूछने पर वज्रदन्त ने कहा कि वह उल्पलखेट पुर के राजा वज्रबाहु और मेरी बहिन (रानी) वसुंधरी के वज्रजंघ नाम का पुत्र हुआ है। वज्रबाहु भी मुझसे मिलने के लिए यहाँ कल प्रातःकाल में आवेगा। साथ में वज्रजंघ भी आवेगा। उसे पण्डिता के द्वारा ले जाये गये चित्रपट को देखकर जातिस्मरण हो जावेगा। तब वह पण्डिता से अपने पूर्व भवों के वृत्तान्त को कहेगा पण्डिता भी उसकी इस खोज को लेकर वापिस आ जावेगी। तू कन्यागृह में जाकर अपने को सुसज्जित कर । यह कहकर वज्रदन्त ने उसे वहाँ से विदा कर दिया।

दूसरे दिन वासव और दुर्दान्त नाम के दो विद्याधर उस महापूत जिनालय में पहुँचे। उनमें वासव उस विचित्र चित्रपट को देखकर लोगों को आश्चर्यचकित करने के लिए कपट पूर्वक मूर्च्छित हो गया। जब उसकी मूर्च्छा दूर हुई तब लोगों ने उससे इसका कारण पूछा। तब उसने अपनी मूर्च्छा का कारण इस प्रकार बतलाया-मैं अच्युत स्वर्ग में देव हुआ था। यह मेरी देवी है। वह उस स्वर्ग से आकर कहाँ उत्पन्न हुई है, यह मैं नहीं जानता हूँ। इसको देखकर पूर्वभव का स्मरण हो जाने के कारण मुझे मूर्च्छा आ गई थी। अच्युत स्वर्ग का नाम लेने पर पण्डिता ने उसकी हँसी करते हुए कहा कि जा, यह तेरी प्रियतमा नहीं है; अन्य किसी स्त्री को देख। इसी समय वज्रबाहु ने आकर नगर के बाहर पड़ाव डाला। उसका पुत्र वज्रजंघ उस जिनालय का दर्शन करने के लिए गया। उसने जैसे ही उस चित्रपट को देखा वैसे ही उसे जातिस्मरण हो जाने

से मूर्छा आ गई। पण्डिता ने उससे इस सम्बन्ध में जो कुछ भी पूछा उसका उसने ठीक-ठीक उत्तर दिया। तब पण्डिता ने भी उससे श्रीमती के वृत्तान्त को कह दिया। तत्पश्चात् पण्डिता ने वापिस आकर श्रीमती से वज्रजंघ के वृत्तान्त को सुना दिया। फिर वज्रदन्त चक्रवर्ती वज्रबाहु के सम्मुख जाकर उसे बड़ी विभूति के साथ नगर के भीतर ले आया। उसने बज्रबाहु का खूब अतिथि-सत्कार किया। तत्पश्चात् उसने वज्रजंघ के साथ श्रीमती का विवाह कर दिया। फिर वज्रदन्त ने श्रीमती के बड़े भाई अमिततेज के लिए वज्रबाहु से बज्रजंध की छोटी बहिन अनुन्धरी को माँगा। तदनुसार वज्रबाहु ने अमिततेज के साथ अनुन्धरी का विवाह कर दिया। इस प्रकार वज्रबाहु परस्पर स्नेह के साथ कुछ दिन वहाँ पर रहकर पुत्र, पुत्रवधू और पण्डिता के साथ अपने नगर को चला गया। तत्पश्चात् कुछ ही दिनों में वज्रबाहु ने पण्डिता को पुण्डरीकिणी नगरी में वापिस भेज दिया। इस प्रकार वह सुखपूर्वक कालयापन करने लगा। समयानुसार श्रीमती को वीरबाहु आदि इक्यावन युगल पुत्र (102) प्राप्त हुए उनके विवाह आदि को करके वज्रबाहु सुखपूर्वक स्थित था। एक दिन उसे देखते-देखते नष्ट हुए मेघ को देखकर भोगों से वैराग्य हो गया। तब उसने वज्रजंघ के लिए राज्य देकर समस्त नातियों और पाँच सौ क्षत्रियों के साथ दमधर मुनिराज के पास में दीक्षा ग्रहण कर ली। वह कर्मों को नष्ट करके मुक्ति को प्राप्त हुआ।

इधर एक दिन वज्रदन्त चक्रवर्ती सभाभवन में स्थित था, तब वनपाल ने आकर उसे कुछ विकसित एक कमल की कली को दिया। उसमें मरे हुए भ्रमर को देखकर वज्रदन्त चक्रवर्ती को वैराग्य हो गया। तब उसने पुत्रों को राज्य देना चाहा। किन्तु उसके अमिततेज आदि हजार पुत्रों में से किसी ने भी राज्य को लेना स्वीकार नहीं किया। तब उसने अमिततेज के पुत्र पुण्डरीक (अपने नाती) को, जो कि वज्रजंघ का भानजा था, राज्य देकर एक हजार पुत्रों, बीस हजार मुकुटबद्धों और साठ हजार स्त्रियों के साथ यशोधर भट्टारक के चरण सानिध्य में दीक्षा ग्रहण कर ली। अन्त में वह मोक्ष को प्राप्त हुआ। अन्य जन अपने-अपने पुण्य के योग्य गति को प्राप्त हुए। इधर अनार्य देशवासी (अथवा समीपवर्ती) शत्रु पुण्डरीक बालक को कुछ भी न समझकर उसके देश में उपद्रव करने

लगे। उसको रोकने के लिए लक्ष्मीमती ने विजयार्ध पर्वतस्थ गन्धर्वपुर के राजा चिन्तागति और मनोगति नाम के दो विद्याधरों के हाथ में एक लेख (पत्र) देकर वज्रजंघ के लिये भेजा। उक्त लेख को पढ़कर जब वज्रजंघ को वज्रदन्त चक्रवर्ती के दीक्षा ग्रहण कर लेने का समाचार ज्ञात हुआ तब उसे बहुत आश्चर्य हुआ तब वह चतुरंग सेना के साथ उसी समय निकल पड़ा। वह पुण्डरीकिणी पुरी को जाता हुआ मार्ग में सर्प सरोवर के किनारे डेरा डालकर स्थित हुआ। उस समय वहाँ दमवर और सागरसेन नाम के दो चारण मुनिराज चर्या मार्ग से आहार के निमित्त आये। तब श्रीमती और वज्रजंघ ने उन्हें नवधा भक्तिपूर्वक आहार दिया। इससे वहाँ पंचाश्चर्य हुए। उस समय उस वन में निवास करने वाले व्याघ्र, शूकर, बन्दर और नेवला ये चार पशु आये और उन दोनों मुनियों को नमस्कार कर उनके समीप बैठ गये। तत्पश्चात् वज्रजंघ ने मुनियों को नमस्कार करके पूछा कि मतिवर, आनन्द, अकम्पन और धनमित्र नाम के जो ये मेरे मन्त्री, पुरोहित, सेनापति और राजसेठ हैं इनके ऊपर मेरे स्नेह का कारण क्या है; इन व्याघ्र आदिकों के क्रूरता को छोड़कर शान्त हो जाने का कारण क्या है; तथा आप दोनों के ऊपर मेरे अनुराग का भी कारण क्या है? इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए दमवर मुनिराज बोले–

जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह में वत्सकावती देश के भीतर प्रभाकरी नाम की एक नगरी है। वहाँ का राजा अतिगृद्ध बहुत लोभी था। उसने अपने नगर के समीप में स्थित एक पर्वत के ऊपर बहुत-सा द्रव्य गाड़ रक्खा था। वह रौद्र ध्यान से मरकर पंकप्रभा पृथ्वी (चौथे नरक) में गया। फिर वह वहाँ से निकलकर उसी पर्वत के ऊपर व्याघ्र हुआ। उस समय उस नगर का राजा प्रीतिवर्धन अनार्य देशवासियों (शत्रुओं) के ऊपर आक्रमण करने के लिए जा रहा था। वह नगर के बाहर पड़ाव डालकर स्थित हुआ। उस समय एक मास का उपवास करने वाले पिहितास्रव मुनिराज उस नगर के बाहर एक वृक्ष के खोते में स्थित थे। जब उनका उपवास पूरा होकर पारणा का दिन आया। तब किसी ज्योतिषी ने आकर उस राजा से प्रार्थना की कि हे राजन्! यदि ये मुनिराज आपके घर पर पारणा करेंगे तो आपको महान् धन का लाभ होगा। यह ज्ञात करके प्रीतिवध

नि ने नगर के मार्ग में कीचड़ कराकर उसके ऊपर फूलों को बिखरवा दिया। उक्त कीचड़ और फूलों के कारण मुनिराज का नगर के भीतर जाना असम्भव हो गया था, अतएव वे प्रीतिवर्धन राजा के डेरे पर चर्या के लिए आ पहुँचे, राजा ने उन्हें निरन्तराय आहार दिया। आहार के हो जाने के पश्चात् उसके डेरे पर पंचाश्चर्य हुए। उस समय मुनिराज पिहितास्रव ने कहा कि इस पर्वत के ऊपर बहुत-सा द्रव्य है। उसकी रक्षा व्याघ्र कर रहा है। उसे तुम्हारे प्रस्थान कालीन भेरी के शब्द को सुनकर जातिस्मरण हो गया है। वह कौन है, इसका सम्बन्ध बतलाने के लिए उन्होंने पूर्वोक्त कथा कही। वह व्याघ्र इस समय सन्यास लेकर स्थित है। वह तुम्हें उस सब धन को दिखला देगा। यह सुनकर प्रीतिवर्धन राजा को बहुत सन्तोष हुआ। वह उन मुनिराज को नमस्कार करके उस पर्वत के ऊपर गया। वहाँ उसने उक्त व्याघ्र को सम्बोधित किया। तब व्याघ्र ने उस धन को दिखला दिया, जिसे प्रीतिवर्धन राजा ने ग्रहण कर लिया। व्याघ्र अठारह दिनों में मरकर ईशान स्वर्ग के अन्तर्गत दिवाकरप्रभ विमान में दिवाकरप्रभ देव हुआ। प्रीतिवर्धन राजा के द्वारा किये गये आहारदान की अनुमोदना करने से जो पुण्य प्राप्त हुआ उसके प्रभाव से उसके मन्त्री, पुरोहित और सेनापति ये तीनों जम्बूद्वीप के उत्तरकुरु में आर्य हुए। राजा प्रीतिवर्धन उक्त मुनिराज के समीप में दीक्षित होकर तप के प्रभाव से मुक्ति को प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् प्रीतिवर्धन के मन्त्री का जीव वह आर्य ईशान कल्प के अन्तर्गत काचंन विमान में कनकप्रभ नाम का देव हुआ। सेनापति का जीव आर्य उसी स्वर्ग के भीतर प्रभंकर विमान में प्रभाकरदेव हुआ। पुरोहित का जीव आर्य रूषित विमान प्रभंजन देव हुआ। जब तुम ललितांग देव थे, तब ये चारों ही देव तुम्हारे परिवार के देव थे। तत्पश्चात् वह दिवाकरप्रभ देव स्वर्ग से च्युत होकर मतिसागर और श्रीमती के यह तुम्हारा मन्त्री मतिवर हुआ है। वह प्रभाकर देव वहाँ से च्युत होकर अपराजित और आर्यवेग के यह अकम्पन सेनापति हुआ है। वह प्रभाकर देव वहाँ से च्युत होकर श्रुतकीर्ति और अनन्तमति के यह आनन्द पुरोहित हुआ है। तुम (वज्रजंघ) इस भव से आठवें भव में इसी भरत क्षेत्र के भीतर जब प्रथम तीर्थंकर होओगे तब यह मतिवर भरत, यह अकम्पन बाहुबली, यह

आनन्द वृषभसेन और यह धनमित्र अनन्तवीर्य; इन नामों से प्रसिद्ध तुम्हारे चरमशरीरी चार पुत्र होवेंगे।

अब व्याघ्र और शूकर आदि के भव कहे जाते हैं– इसी देश के भीतर हस्तिनापुर में वैश्य धनदत्त और धनमती के एक उग्रसेन नाम का पुत्र था। वह चोरी में पकड़ा गया था। उसे कोतवालों ने लातों ओर घूँसों से खूब मारा। इस प्रकार से वह क्रोध के वशीभूत होकर मरा और वह व्याघ्र हुआ।

इसी देश के भीतर विजयपुर में आनन्द और वसन्तसेना के हरिकान्त नामक एक पुत्र था जो बड़ा अभिमानी था। वह किसी को नमस्कार नहीं करता था। कुछ लोगों ने पकड़कर उसे माता-पिता के चरणों में डाल दिया। तब उसने अभिमान से अपने शिर को पत्थर पर पटक लिया। इस प्रकार से वह मरकर यह शूकर हुआ।

इस देश के भीतर धान्यपुर में वैश्य धनदत्त और वसुदत्ता के एक नागदत्त नाम का पुत्र था, जो बहुत कपटी था। वह वेश्या के निमित्त अपनी बहिन के आभूषणों को ले गया था। जब वह उन्हें मांगती तो 'लाता हूँ' कहकर रह जाता। वह मरकर यह बन्दर हुआ है।

इसी देश के भीतर सुप्रतिष्ठापुर में कोई पूरी आदि का बेचनेवाला वैश्य (हलवाई) रहता था। वह बहुत लोभी था। वहाँ राजा सुवर्णमय ईंटों के द्वारा एक चैत्यालय बनवा रहा था। ये ईंटे बाह्य में मिट्टी के समान काली दिखती थीं, पर थीं वे सोने की। एक दिन उन ईंटों को ले जाते हुए किसी मजदूर को देखकर उक्त हलवाई ने उसे पूरियाँ दीं और पाँव धोने के निमित्त एक ईंट ले ली। फिर वह उसे सुवर्ण की जानकर उक्त मजदूर के हाथ में प्रतिदिन पूरियाँ देता ओर एक ईंट मँगा लेता था। एक दिन वह अपने पुत्र से ईंटों को ले लेने के लिये कहकर किसी दूसरे गाँव को गया था। परन्तु पुत्र ने उस ईंट को नहीं लिया था। जब वह लोभी घर वापिस आया और उसे ज्ञात हुआ कि लड़के ने ईंट नहीं ली है तो इससे क्रोधित होकर उसने पुत्र को लाठियों के द्वारा मार डाला तथा स्वयं अपने पाँवों के ऊपर एक भारी पत्थर को पटक लिया। इससे उसके पाँव मुड़ गये। इस प्रकार वह बहुत कष्ट से मरा और यह नेवला हुआ है। ये चारों अपने भव्यत्व गुण के प्रभाव से इस समय शान्ति

को प्राप्त हुए हैं। इस आहार दान की अनुमोदना से ये चारों तुम्हारे साथ दोनों गतियों के सुख को भोगकर जब तुम तीर्थंकर होओगे तब ये तुम्हारे अनन्त, अच्युत, वीर और सुवीर नाम के चरमशरीरी पुत्र होवेंगे। हम दोनों चूँकि तुम्हारे अन्तिम पुत्रयुगल हैं, इसलिए हम दोनों के ऊपर भी तुम दोनों को मोह हैं इस प्रकार से उक्त वृत्तान्त को कहकर वे दोनों मुनिराज चले गये।

वज्रजंघ पुण्डरीक के राज्य को स्थिर करके अपने नगर में वापिस आ गया। उसने बहुत समय तक राज्य किया। एक दिन रात में शयनागार की व्यवस्था करने वाला सेवक सूर्यकान्त मणिमय धूपघट में कालागरू को डालकर खिड़की को खोलना भूल गया। उसके धुएँ से उस शयनागार में सोये हुए श्रीमती और वज्रजंघ मर गये। वे मुनिराज को दिये गये आहार के प्रभाव से इसी जम्बूद्वीप के उत्तरकुरू में आर्य दम्पती (पति-पत्नी) हुए। उधर वे व्याघ्र आदि भी उपर्युक्त शयनागार में उसी धुएँ के द्वारा मरकर उस मुनिराज को दिये गये आहार की अनुमोदना करने से प्राप्त हुए पुण्य के प्रभाव से उसी उत्तरकुरू में आर्य हुए। इधर मतिवर आदि ने वज्रजंघ और श्रीमती के शरीर का अग्नि-संस्कार करके वज्रजंघ के पुत्र वज्रबाहु को राजा के पद पर प्रतिष्ठित किया। तत्पश्चात् वे जिनदीक्षा लेकर तप के प्रभाव से अधोग्रैवेयक में देव हुए। इधर भोग भूमि में उस युगल (वज्रजंघ और श्रीमती के जीव) को सूर्यप्रभ नामक कल्पवासी देव के देखने से जातिस्मरण हो गया। उसी समय वहाँ दो चारण मुनिराज आकाश मार्ग से नीचे आये। उनको नमस्कार करके वज्रजंघ आर्य बोला कि आप दोनों के ऊपर मुझे मोह क्यों हो रहा है? इसके उत्तर में उनमें से प्रीतिंकर मुनिराज बोले कि जब तुम महाबल हुए थे तब तुम्हारा मन्त्री स्वंयबुद्ध तप के प्रभाव से सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ था। फिर वहाँ से आकर इसी पूर्व विदेह में पुण्डरीकिणी पुर के राजा प्रियसेन और रानी सुन्दरी के मैं प्रीतिंकर हुआ हूँ? यह प्रीतिदेव नाम का मेरा छोटा भाई है। तप के प्रभाव से हम दोनों को चारण ऋद्धि और अवधि ज्ञान प्राप्त हुआ है। हम तुम्हें सम्यग्दर्शन ग्रहण कराने के लिये यहाँ पर आये हैं। तत्पश्चात् वे दोनों मुनिराज उन छहों को सम्यग्दर्शन ग्रहण कराकर वापिस चले गये। तीन

पल्य-प्रमाण आयु के अन्त में मरण को प्राप्त होकर उन छहों में वज्रजंघ आर्य का जीव ईशान स्वर्ग के भीतर श्रीप्रभ विमान में श्रीधर देव, श्रीमती आर्या का जीव स्वयंप्रभ देव, व्याघ्र आर्य का जीव चित्रांगद विमान में चित्रांगद देव, शूकर आर्य का जीव नन्द विमान में मणिकुण्डल देव, बानर आर्य का जीव नन्द्यावर्त विमान में मनोहर देव और नेवला आर्य का जीव प्रभाकर विमान में मनोरथ देव हुआ। इस प्रकार इन सबका परस्पर सम्बन्ध जानना चाहिये।

एक समय श्रीप्रभ पर्वत के ऊपर प्रीतिंकर मुनिराज के लिए केवलज्ञान के प्राप्त होने पर वे श्रीधर आदि देव उनकी वन्दना के लिये आये। वन्दना करने के पश्चात् श्रीधर देव ने केवली भगवान से पूछा कि महाबल के मंत्री महामति आदि कहाँ पर उत्पन्न हुए हैं? इस पर केवली ने कहा कि उनमें से दो (महामति और संभिन्नमति) तो निगोद अवस्था को प्राप्त हुए हैं और एक शतमति शर्कराप्रभा पृथ्वी (दूसरा नरक) में नारकी हुआ है। तब श्रीधर देव ने वहाँ जाकर उसको सम्बोधित किया। वह नारकी उक्त पृथ्वी से निकल कर पुष्करार्ध द्वीप के पूर्व विदेह में जो मंगलावती देश है उसके अन्तर्गत रत्नसंचयपुर के राजा महीधर और रानी सुन्दरी के जयसेन नाम का पुत्र हुआ है। वह अपने विवाह के लिए उद्यत ही हुआ था कि इतने में उसी श्रीधर देव ने आकर उसको फिर से सम्बोधित किया। इससे प्रबुद्ध होकर उसने दीक्षा ले ली। तत्पश्चात् वह समाधिपूर्वक शरीर को छोड़कर ब्रह्मेन्द्र हुआ। वह श्रीधरदेव स्वर्ग से च्युत होकर पूर्व विदेह के भीतर वत्सकावती देश में स्थित सुसीमा नगरी के राजा सुदृष्टि और रानी सुन्दरी के सुविधि नाम का पुत्र हुआ। उस समय वहाँ अभयघोष नाम का सकल चक्रवर्ती था। सुविधि ने उक्त चक्रवर्ती की पुत्री मनोरमा के साथ विवाह कर लिया। वह स्वयंप्रभदेव (श्रीमती का जीव) स्वर्ग से आकर उस सुविधि के केशव नाम का पुत्र हुआ। वह चित्रांगद (व्याघ्र का जीव) देव उसी देश के मण्डलीक राजा विभीषण और प्रियदत्ता के वरदत्त नाम का पुत्र हुआ। वह मणिकुण्डल देव (शूकर का जीव) स्वर्ग से च्युत होकर उसी देश के मण्डलीक राजा नन्दिसेन और रानी अनन्तमती के वरसेन नाम का पुत्र हुआ। वह मनोहर (बंदर का जीव) देव वहाँ से आकर उसी देश के

मण्डलीक राजा रतिसेन और रानी चन्द्रमति के चित्रांगद नाम का पुत्र हुआ। वह मनोरथ देव (नेवले का जीव) स्वर्ग से अवतीर्ण होकर उसी देश मण्डलीक राजा प्रभंजन और रानी शान्तमदन नाम का पुत्र हुआ। वे वरदत्त आदि चारों ही सुविधि के मित्र थे।

एक समय अभयघोष चक्रवर्ती, सुविधि आदि राजाओं के साथ विमलवाहन जिनेन्द्र देव की वन्दना करने के लिए गया। वह उनकी विभूति को देखकर संसार के सुख से विरक्त हो गया। तब उसने अपने पाँच हजार पुत्रों, दस हजार स्त्रियों और अठारह हजार अन्य राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। अन्त में वह तपश्चरण करके मुक्ति को प्राप्त हुआ। उन सुविधि आदि छहों ने विशिष्ट अणुव्रतों को धारण कर लिया था। उनमें सुविधि अपनी आयु के अन्त में सन्यास के साथ मरण को प्राप्त होकर अच्युतेन्द्र हुआ। शेष केशव आदि पाँचों दीक्षित हो गये थे। उनमें केशव तो अच्युत कल्प में प्रतीन्द्र हुआ और शेष चार वहीं पर सामानिक देव उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् वह अच्युतेन्द्र उक्त कल्प से आकर उसी जम्बूद्वीप पूर्व विदेह में जो पुष्कलावती देश है उसके भीतर स्थित पुण्डरीकिणी नगरी के राजा तीर्थंकरकुमार वज्रसेन और रानी श्रीकान्ता के वज्रनाभि नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। वह प्रतीन्द्र भी स्वर्ग से अवतीर्ण होकर उसी नगरी में राजसेठ कुबेरदत्त और अनन्तमती का धनदेव नाम का पुत्र हुआ। वरदत्त आदि जो सामानिक देव हुए थे वे भी स्वर्ग से च्युत होकर राजा वज्रसेन और रानी श्रीकान्ता इन्हीं दोनों के विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नाम के पुत्र उत्पन्न हुए। मतिवर आदि जो ग्रैवेयक में अहमिन्द्र हुए थे वे भी वहाँ से आकर उन दोनों के बाहु, महाबाहु, पीठ और महापीठ नाम के पुत्र उत्पन्न हुए। वज्रसेन वज्रनाभि को अपना पद देकर आम्रवन में एक हजार राजकुमारों के साथ दीक्षित होता हुआ दीक्षाकल्याण को प्राप्त हुआ।

एक दिन जब वज्रनाभि सभाभवन में स्थित था तब दो पुरुषों ने आकर क्रम से निवेदन किया कि तुम्हारे पिता को केवलज्ञान प्राप्त हुआ है तथा आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है। इस शुभ समाचार को सुनकर वज्रनाभि ने पहिले केवली की पूजा की और तत्पश्चात् छह खण्ड स्वरूप पृथ्वी को जीत कर उसे अपने स्वाधीन किया। तब वह

धनदेव उस वज्रनाभि चक्रवर्ती का गृहपतिरत्न हुआ। वज्रनाभि चक्रवर्ती ने उस विजय आदि भ्राताओं को अपने समान अधिकार प्रदान करके बहुत काल तक राज्य किया। तत्पश्चात् वह अपने पुत्र वज्रदत्त को राज्य देकर अन्य पाँच हजार पुत्रों, विजयादि भाईयों, धनदेव, सोलह हजार मुकुटबद्ध राजाओं और पचास हजार स्त्रियों के साथ अपने पिता (वज्रसेन तीर्थंकर) के पास दीक्षित हो गया। तत्पश्चात् उसने दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओं के द्वारा तीर्थंकर नामकर्म को बाँधकर प्रायोपगमन संन्यास को ग्रहण कर लिया। इस प्रकार से वह शरीर को छोड़कर सर्वार्थसिद्धि विमान को प्राप्त हुआ। विजय आदि वे दश जीव भी वहीं पर (सर्वार्थसिद्धि में) सुख से स्थित हुए।

उस समय इस भरत क्षेत्र में जघन्य भोगभूमि जैसी प्रवृत्ति चल रही थी। क्या भरत क्षेत्र के भीतर एक-सी प्रवृत्ति नहीं रहती है, ऐसा प्रश्न उपस्थित होने पर उसका उत्तर यह 'नहीं' के रूप में देकर उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार से किया गया है- इस भरत क्षेत्र में उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी ये दो काल प्रवर्तमान रहते हैं। उनमें से एक-एक के छह विभाग हैं। उनमें भी इस समय यह अवसर्पिणी काल चालू है। इस अवसर्पिणी के प्रथम विभाग का नाम सुखमासुखमा है। उसका प्रमाण चार कोड़ाकोड़ि सागरोपम है। इस काल के प्रारम्भ में मनुष्यों के शरीर की ऊँचाई छह हजार धनुष (तीन कोस) और आयु तीन पल्योपम प्रमाण होती है। उनके शरीर की कान्ति उदय को प्राप्त होते हुए नवीन सूर्य के समान होती है। वे पानकांग, तूर्यांग, भूषणांग, ज्योतिरंग, गृहांग, भाजनांग, दीपांग, माल्यांग, भोजनांग और वस्त्रांग इन दस प्रकार के कल्पवृक्षों के फल को भोगते हैं। वे तीन दिन के बाद बेर के बराबर आहार को ग्रहण किया करते हैं। युगलस्वरूप से उत्पन्न होने वाले उनमें भाई-बहिन की कल्पना न होकर पति-पत्नी जैसा व्यवहार होता है। जन्म-दिन से लेकर इक्कीस दिनों में वे यौवन अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं। उन्हें व्याधि, जरा, इष्टवियोग और अनिष्टसंयोगादि क्लेश कभी नहीं होता है। वहाँ जब नौ महिना प्रमाण आयु शेष रह जाती है तब स्त्रियाँ गर्भ को धारण करती हैं और प्रसूति के पश्चात् जंभाई लेकर शरीर को छोड़ती

हुई देवगति को प्राप्त होती हैं। पुरुष भी उसी समय छींक लेकर मरण को प्राप्त होते हुए स्त्रियों के ही समान स्वर्ग (देवगति) को प्राप्त होते हैं।

तत्पश्चात् सुखमा नाम का दूसरा काल प्रविष्ट होता है। उसका प्रमाण तीन कोड़ाकोड़ि सागरोपम है। उसके प्रारम्भ में शरीर की ऊँचाई चार हजार धनुष (दो कोस) और आयु दो पल्योपम प्रमाण होती है। उस समय के नर-नारी पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान कान्तिवाले होते हैं। वे जन्म-दिन से लेकर पैंतीस दिनों में यौवन अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं। उनका भोजन दो दिन के अन्तर से बहेड़े के बराबर होता है। शेष वर्णन पूर्वोक्त सुखमासुखमा के समान है। इसके पश्चात् सुखमादुखमा नाम का तीसरा काल प्रविष्ट होता है। इसका प्रमाण दो कोड़ाकोड़ि सागरोपम है। इसके प्रारम्भ में शरीर की ऊँचाई दो हजार धनुष (एक कोस) और वर्ण प्रियंगु के समान होता है। आयु उस काल में एक पल्योपम प्रमाण होती है। उस काल में मनुष्य उनचास दिनों में यौवन अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं। आहार उनका एक दिन के अन्तर से आँवले के बराबर होता है। शेष वर्णन पूर्व के समान है। दुःखमासुखमा नाम का चौथा काल ब्यालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ि सागरोपम प्रमाण है। उसके प्रारम्भ में मनुष्य पाँच सौ धनुष ऊँचे, एक पूर्वकोटि प्रमाण आयु के भोक्ता, प्रतिदिन भोजन करने वाले और पाँचों वर्णों वाले होते हैं। दुःखमा नामक पाँचवे काल का प्रमाण इक्कीस हजार वर्ष है। उसके प्रारम्भ में मनुष्य सात हाथ ऊँचे, एक सौ बीस वर्ष प्रमाण आयु के भोक्ता, प्रतिदिन अनियमित (अनेक बार) भोजन करने वाले और मिश्र वर्ण से सहित होते हैं। तत्पश्चात् अतिदुःखमा नाम का छठा काल प्रविष्ठ होता है। उसका प्रमाण भी पाँचवें काल के समान इक्कीस हजार वर्ष है। उस समय मनुष्य नग्न रहकर मछली आदिकों का आहार करने वाले, धुएँ के समान श्यामवर्ण, दो हाथ ऊँचे और बीस वर्ष प्रमाण आयु के भोक्ता होते हैं इस काल के अन्त में मनुष्य के शरीर की ऊँचाई एक हाथ प्रमाण और आयु पन्द्रह वर्ष प्रमाण रह जाती है। जो प्रवृत्ति-उत्सेध व आयु आदि का प्रमाण- द्वितीय (आगे के) काल के प्रारम्भ में होता है वही प्रथम काल के अन्त में होता है। इस प्रकार से जो

आगे-आगे के काल के प्रारम्भ में प्रवृत्ति होती है वही पूर्व काल के अन्त में होती है, यह जान लेना चाहिए।

उनमें से तृतीय काल में जब पल्य का अन्तिम आठवाँ भाग शेष रह जाता है तब चौदह कुलकर उत्पन्न होते हैं। वे इस प्रकार से- सर्वप्रथम प्रतिश्रुति नाम का पहला कुलकर हुआ। उसकी देवी का नाम स्वंयप्रभा था। उसके शरीर की ऊँचाई एक हजार आठ सौ धनुष और आयु पल्य के दसवें भाग (1/10) प्रमाण थी। उसके शरीर का वर्ण सुवर्ण के समान था। उसके समय में ज्योतिरंग कल्पवृक्षों के नष्ट हो जाने से चन्द्र और सूर्य देखने में आने लगे थे। उनके देखने से आर्यों के हृदय में भय का संचार हुआ तब उनको भयभीत देखकर प्रतिश्रुति कुलकर ने समझाया कि ये सूर्य चन्द्र प्रतिदिन ही उदित होते हैं, परन्तु अभी तक ज्योतिरंग कल्पवृक्षों के प्रकाश में वे दीखते नहीं थे। जब चूँकि वे ज्योतिरंग कल्पवृक्ष प्रायः नष्ट हो चुके हैं, अतएव ये देखने में आने लगे हैं। उनसे डरने का कोई कारण नहीं हैं इस कुलकर ने उन्हें 'हा' नीति का अनुसरण कर शिक्षा (दण्ड) दी थी। इसके पश्चात् पल्य का अस्सीवाँ भाग (1/80) बीतने पर सन्मति नाम का दुसरा कुलकर उत्पन्न हुआ। इसकी देवी का नाम यशस्वती था। उसके शरीर की ऊँचाई एक हज़ार तीन सौ धनुष, और आयु पल्य के सौवें भाग (1/100) प्रमाण और वर्ण सुवर्ण के समान था। ज्योतिरंग कल्पवृक्षों के सर्वथा नष्ट हो जाने पर जब आर्यों के लिए ताराओं आदि को देखकर भय उत्पन्न हुआ तब उनके उस भय को इस कुलकर ने दूर किया था। प्रजाजनों को इसने भी 'हा' इस नीति का ही अनुसरण करके शिक्षा दी थी। इसके पश्चात् पल्य का आठ सौवाँ भाग (1/800) बीत जाने पर क्षेमंकर नाम का तीसरा कुलकर उत्पन्न हुआ। इसकी प्रिया का नाम सुनन्दा था। उसके शरीर की ऊँचाई आठ सौ धनुष, वर्ण सुवर्ण के समान और आयु पल्य के हजारवें भाग (1/1000) प्रमाण थी। इसके समय में सर्पादिकों का स्वभाव क्रूर हो गया था, अतएव प्रजाजन उनसे भयभीत होने लगे थे। क्षेमंकर ने संबोधित करके उनसे इस भय को दूर किया था। इसने भी 'हा' इसी दण्डनीति की प्रवृत्ति चालू रक्खी थी। उसके पश्चात् पल्य का आठ हजारवाँ भाग (1/8000) बीतने पर क्षेमंधर नाम का चौथा

कुलकर उत्पन्न हुआ। इसकी प्रिया का नाम विमला था। उसके शरीर की ऊँचाई सात सौ पचहत्तर धनुष, वर्ण सुवर्ण के समान और आयु पल्य के दस हजारवें भाग (1/10000) प्रमाण थी। इसने प्रजाजन के लिए दीपक आदि को जलाकर अन्धकार के नष्ट करने का उपदेश दिया था। प्रजा के दोष को दूर करने के लिए इसने भी 'हा' इसी नीति का आलम्बन लिया था। इसके पश्चात् पल्य का अस्सी हजारवाँ भाग (1/800000) बीतने पर सीमंकर नाम का पाँचवाँ कुलकर उत्पन्न हुआ। इसकी प्रिया का नाम मनोहरी था। उसके शरीर की ऊँचाई साढ़े सात सौ धनुष, वर्ण सुवर्ण के समान और आयु पल्य के लाखवें भाग (1/100000) प्रमाण थी। इसने कल्पवृक्ष की मर्यादा करके प्रजाजन के कल्पवृक्षों सम्बन्धी विवाद को दूर किया था। दण्डनीति इसके समय में भी 'हा' यही चालू रही। इसके पश्चात् पल्य का आठ लाखवाँ भाग (1/800000) बीत जाने पर सीमंधर नाम का छठा कुलकर उत्पन्न हुआ। इसकी प्रिया का नाम यशोधारिणी था। इसके शरीर की ऊँचाई सात सौ पच्चीस धनुष, वर्ण सुवर्ण के समान और आयु पल्य के दस लाखवें भाग (1/1000000) प्रमाण थी। उसने सीमा के व्याज में शासन किया, अर्थात् उसके समय में जब कल्पवृक्ष अतिशय बिरल होकर थोड़ा फल देने लगे तब उसने उनको अन्य वृक्षादिकों से चिन्हित करके प्रजाजन के झगड़ों को दूर किया था। इसने अपराध को नष्ट करके लिए 'हा' के साथ 'मा' नीति (खेद है, अब ऐसा न कहना) का भी आश्रय लिया था। इसके पश्चात् पल्य का अस्सी लाखवाँ भाग (1/8000000) बीत जाने पर विमलवाहन नाम का सातवाँ कुलकर उत्पन्न हुआ। उसकी देवी का नाम सुमति था। उसके शरीर की ऊँचाई सात सौ धनुष, वर्ण सुवर्ण जैसा और आयु पल्य के करोड़वें भाग (1/10000000) प्रमाण थी। उसने हाथी आदि वाहनों के ऊपर सवारी करने का उपदेश दिया था। दण्डनीति इसने भी 'हा-मा' स्वरूप ही चालू रखी थी। इसके पश्चात् पल्य का आठ करोडवाँ भाग (1/80000000) बीत जाने पर चक्षुष्मान् नाम का आठवाँ कुलकर उत्पन्न हुआ। इसकी प्रियतमा का नाम धारिणी था। उसके शरीर की ऊँचाई छह सौ पचत्तर धनुष, वर्ण प्रियंगु के समान और आयु पल्य के दस करोड़वें भाग (1/100000000) प्रमाण थी।

इसके समय में आर्यों को सन्तान के उत्पन्न होने पर उसका मुख देखने को मिलने लगा था। उसको देखकर उन्हें भय उत्पन्न हुआ। तब चक्षुष्मान् ने संबोधित करके उनके इस भय को नष्ट किया था। इसने भी प्रजाजन को शिक्षा देने के लिये 'हा-मा' नीति का ही उपयोग किया था। पश्चात् पल्य का अस्सी करोड़वाँ भाग बीत जाने पर (1/800000000) यशस्वी नाम का नौवाँ कुलकर उत्पन्न हुआ। उसकी प्रिया का नाम कान्तमाला था। उसके शरीर की ऊँचाई साढ़े छह सौ धनुष, वर्ण प्रियंगु जैसा और आयु पल्य के सौ करोड़वें भाग (1/1000000000) थी। उसने व्यवहार के लिए बालकों के नाम रखने का उपदेश दिया था। आर्यों को शिक्षा देने के लिये वह भी 'हा-मा' इस नीति का ही उपयोग किया करता था। इसके पश्चात् पल्य का आठ सौ करोड़वाँ भाग बीत जाने पर अभिचन्द्र नाम का दसवाँ कुलकर उत्पन्न हुआ। उसकी देवी का नाम श्रीमती था। इसके शरीर की ऊँचाई छह सौ पच्चीस धनुष, वर्ण सुवर्ण जैसा तथा आयु पल्य के हजार करोड़वें भाग (1/80000000000) प्रमाण थी। इसने चन्द्र आदि को दिखलाकर बालकों के खिलाने का उपदेश दिया था तथा शिक्षा देने के लिये 'हा-मा' इस नीति का ही उपयोग किया था। उसके पश्चात् पल्य का आठ हजार करोड़वाँ भाग बीत जाने पर चन्द्राभ नाम का ग्यारहवां कुलकर उत्पन्न हुआ। उसकी देवी का नाम प्रभावती था। उसकी शरीर की क्रांति चन्द्रमा के समान, ऊँचाई छह सौ धनुष और आयु पल्य के दस हजार करोड़वें भाग (1/100000000000) प्रमाण थी। इसने आर्यों में पिता और पुत्र आदि के व्यवहार को प्रचलित किया था। यह आर्यों के द्वारा किये गये अपराध को नष्ट करने के लिये 'हा-मा' के साथ 'धिक्' का भी उपयोग करने लगा था। इसके पश्चात् पल्य का अस्सी हजार करोड़वाँ भाग (1/800000000000) बीत जाने पर मरुद्देव नाम का बारहवाँ कुलकर उत्पन्न हुआ था। उसकी प्रिया का नाम अनुपमा था। उसके शरीर की ऊँचाई पाँच सौ पचत्तर धनुष, कान्ति सुवर्ण के समान और आयु पल्य के एक लाख करोड़वें भाग प्रमाण थी। उसके समय में वर्षा प्रारम्भ हो गई थी। इसलिये नद, नदी एवं उपसमुद्र आदि भी उत्पन्न हो गये थे। मरुदेव ने उनसे पार होने का उपाय बतलाया था। उसने भी 'हा-मा-धि

ाक्' नीति के अनुसार प्रजा के दोषों को दूर किया था। इसके पश्चात् पल्य का आठ लाख करोड़वाँ भाग (1/8000000000000) बीत जाने पर प्रसेनजित् नाम का तेरहवाँ कुलकर उत्पन्न हुआ। पसीने की बूँदों से भीगे हुए शरीर को धारण करने वाला वह पाँच सौ धनुष ऊँचा था। उसकी आयु पल्य के दस लाख करोड़वें भाग (1/10000000000000) प्रमाण और शरीर की कान्ति प्रियंगु के समान थी। उसके पिता ने उसका विवाह अमितमति नाम की उत्तम कन्या के साथ किया था। कहा भी है।

*(ह0 पु0 7-167)-*

धीर मरूदेव कुलकर पसीने के कणों से विभूषित अपने पुत्र प्रसेनजित् के विवाह का आयोजन प्रधान कुल की कन्या के साथ करके {आयु के पूर्ण हो जाने पर मरण को प्राप्त हुआ}।।1।।

वह प्रसेनजित् भी युगल के रूप में उत्पन्न न होकर अकेला ही उत्पन्न हुआ था उस समय से युगलस्वरूप में उत्पन्न होने का कोई नियम नहीं रहा। कहा भी है-

इसके आगे यहाँ युगलस्वरूप सृष्टि को नष्ट करने की ही इच्छा से मानों मरूदेव ने प्रसेनजित् नाम के एक मात्र पुत्र को ही उत्पन्न किया था।।2।।

प्रसेनजित् ने प्रजाजन को स्नान आदि का उपदेश किया था। पूर्व के अनुसार इसने भी प्रजाजनों को शिक्षा देने में 'हा-मा-धिक्' इसी नीति का उपयोग किया था। इसके पश्चात् पल्य का अस्सी लाख करोड़वाँ भाग (1/80000000000000) बीत जाने पर नाभिराज नाम का चौदहवाँ कुलकर उत्पन्न हुआ। इसकी पत्नी का नाम मरूदेवी था। उसके शरीर की ऊँचाई पाँच सौ पच्चीस धनुष, कान्ति सुवर्ण के समान और आयु एक पूर्वकोटि प्रमाण थी। नाभिराज ने भी प्रजा को पूर्व के समान 'हा-मा-धिक्' नीति के ही अनुसार शिक्षित किया था। उस समय कल्पवृक्ष सब ही नष्ट हो चुके थे, केवल नाभिराज का प्रासाद ही शेष रहा था। उस समय उत्पन्न हुए बालकों के नाल के काटने का उपदेश करने से वह 'नाभि' इस नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ। वह नाभिराज मरूदेवी के साथ सुख से स्थित था।

इधर सर्वार्थसिद्धि में जब भूतपूर्व वज्रनाभि के जीव उस अहमिन्द्र की आयु छह मास शेष रह गई तब कल्पलोक (स्वर्ग) में घण्टे का शब्द, ज्योतिषी देवों में सिंहनाद, भवनवासियों में शंख का शब्द और व्यन्तर देवों के यहाँ भेरी का शब्द हुआ। उस समय सब ही देवों के सिंहासन कम्पित हुए और मुकुट झुक गये। इससे उन सभी ने अपने अवधिज्ञान से यह जान लिया कि भरत क्षेत्र में मरूदेवी के गर्भ में आदि जिनेन्द्र अवतार लेने वाले हैं। इसी कारण चारों निकायों के देवों के साथ आकर इन्द्र ने भगवान् के माता-पिता (मरूदेवी और नाभिराज) के रहने के लिये विनीता खण्ड के मध्य भाग में अयोध्या नाम के नगर की रचना की, जो सर्वरत्नमयँ थी। तत्पश्चात् इन्द्र ने नाभिराज और मरूदेवी इन दोनों को विभूति के साथ उस नगर के भीतर प्रतिष्ठित किया। साथ ही उसने उनके घर पर प्रतिदिन तीनों संध्याकालों में पंचाश्चर्य करने के लिये अपने यक्ष कुबेर को नियुक्त कर दिया। उसने पद्म और महापद्म आदि तालाबों में निवास करने वाली श्री, ह्रीं, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी नाम की देवियों को तीर्थंकर की माता के श्रृगांरकार्य में; रूचक पर्वत पर रहने वाली विजया, वैजयन्ता, जयन्ता, अपराजिता, नन्दा, नन्दोत्तरा, आनन्दा और नन्दिवर्धना इन आठ देवियों को पूर्ण कलश के धारण करने में; सुप्रतिष्ठा, सुप्रणिधा, सुप्रबोधा, यशोधरा, लक्ष्मीमती कीर्तिमती, वसुंधारा और चित्रा इन आठ देवियों को गान में; अलंबुषा, मित्रकेशी, पुण्डरीका, वारूणी, दर्पणा, श्री, ह्रीं और धृति इन आठ देवियों को चँवर धारण करने में; चित्रा, कांचनमित्रा, शिरःसूत्रा और माणि इन चार देवियों को दीपक जलाने में; रूचका, रूचकाशा, रूचकान्ति और रूचकप्रभा इन चार देवियों को तीर्थंकर का जन्मोत्सव कर्म करने, रसोई करने, पान देने एवं शय्या व आसन के अधिकार में; तथा अन्य पर्वतों पर रहने वाली सुमाला, मालिनी, सुवर्णदेवी, सुवर्णचित्रा पुष्पचूला, चूलावती, सुरा और त्रिशिरसा आदि देवियों को भी नियोग के अनुसार कार्यों में नियुक्त किया। इस प्रकार सुखपूर्वक छह महिनों के बीत जाने पर मरूदेवी पुष्पवती हुई। उस समय उसने अनेक तीर्थों के जल से चतुर्थ स्नान किया। वह जब पति के साथ शय्या पर सोयी हुई थी तब उसने हाथी आदि सोलह स्वप्नों को देखा। इनके फल के विषय में उसने राजा से

पूछा। तदनुसार नाभिराज ने उसके लिये उन स्वप्नों का फल बतलाया, जिसे सुनकर वह बहुत सन्तुष्ट हुई। इस प्रकार सुख से स्थित होने पर आषाढ़ कृष्णा द्वितीया के दिन वह अहमिन्द्र देव उसके गर्भ में अवतीर्ण हुआ। तब देवों ने आकर गर्भकल्याण का महोत्सव किया। तत्पश्चात् वे वापिस स्वर्गलोक चले गये। मरूदेवी उन देवियों के द्वारा की जाने वाली सेवा के साथ नौ मास सुखपूर्वक रही। अन्त में चैत्रकृष्णा नवमी के दिन उसने तीन लोक के प्रभु भगवान् आदिनाथ को उत्पन्न किया। इसको जानकर सौधर्म इन्द्र आदि अपने अपने वाहनों पर चढ़कर उसी समय अयोध्या नगरी में आ पहुँचे। वे देवेन्द्र भगवान् की माता के आगे मायामयी बालक को रख करके तीर्थंकर कुमार को मेरूपर्वत के ऊपर स्थित पाण्डुकवन के भीतर ईशान कोणस्थ पाण्डुक शिला के ऊपर ले गये उसके ऊपर भगवान को विराजमान करके सौधर्म और ईशान इन्द्र ने क्षीरसमुद्र के दूध से आठ योजन ऊँचे अनेक करोड़ कलशों के द्वारा जन्माभिषेक किया। तत्पश्चात् तीर्थंकर कुमार को वस्त्राभूषणें से विभूषित करके सौधर्म इन्द्र ने माता-पिता को समर्पित किया और वह उनके आगे नृत्य करने लगा। वे भगवान् चूँकि वृष (धर्म) से शोभायमान थे, इसीलिये उनका नाम वृषभ रखकर वे सब देव स्वर्गलोक को चले गये। वे वृषभनाथ भगवान् निःस्वेदत्व (पसीना न आना), निर्मलता, शुभ्ररूधिरत्व (रक्त की धवलता), वज्रवृषभनाराचसंहनन, समचतुरस्रसंस्थान, सुरूपता (अनुपम रूप), सुगन्धित शरीर, सुलक्षणत्व (एक हजार आठ उत्तम लक्षणों को धारण करना), अनन्तवीर्यता (शारीरिक बल की असाधारणता) और हित मित मधुर भाषण; इन स्वाभाविक दस अतिशयों को जन्म से ही धारण करते थे। साथ ही वे मति, श्रुत और अवधि इन तीनों ज्ञानों को भी जन्म से ही धारण करते थे। वे क्रमशः वृद्धि को प्राप्त हुए।

एक दिन भूख से व्याकुल दुर्बल प्रजाजन नाभिराज के पास आये। तब नाभिराज उन सबको लेकर भगवान् वृषभनाथ के पास पहुँचे। उनने नमस्कारपूर्वक भगवान् से प्रार्थना की कि हे नाथ! जिस प्रकार से प्रजाजनों की भूख आदि की बाधा दूर हो, ऐसा कोई उपाय बतलाइये। तब वृषभदेव ने उन्हें भूख की बाधा को नष्ट करने के लिए यह उपाय बतलाया कि गन्ना और ईश के दण्ड जो स्वमेव उत्पन्न हुए हैं उनको

कोल्हू में पेलकर रस निकालो और उसका पान करो। तदनुसार प्रवृत्ति करने पर प्रजा को बहुत सन्तोष हुआ। तब प्रजाजनों ने आकर प्रणाम करते हुए भगवान् से कहा कि आपका वंश 'इक्ष्वाकु' इस सार्थक नाम से प्रसिद्ध हो। इस बात को भगवान् ने 'तथा भवतु' कहकर स्वीकार कर लिया। भगवान् का वर्ण सुवर्ण जैसा था। उनका चिन्ह बैल का था। वे पाँच सौ धनुष ऊँचे और चौरासी लाख वर्ष पूर्व प्रमाण आयु के ध ारक थे। इस प्रकार भगवान् सुखपूर्वक स्थित थे। इस बीच में उनकी यौवन अवस्था को देखकर इन्द्रादिकों ने प्रार्थना की कि हे देव! अपना विवाह स्वीकार कीजिये। इस पर भगवान् ने चारित्रमोह के वशीभूत होकर उसे स्वीकार कर लिया। तब कच्छ और महाकच्छ राजाओं की यशस्वती और सुनन्दा नाम की पुत्रियों के साथ उनका विवाह करा दिया। वे उन दोनों के साथ सुख से काल व्यतीत करने लगे। खजाने का रक्षक जो अतिगृद्ध राजा का जीव व्याघ्र हुआ और फिर क्रमशः दिवाकरप्रभ देव मंत्रिवर मन्त्री, अधोग्रैवेयक का अहमिन्द्र, बाहु (वज्रनाभि का अनुज) व सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ था वह आकर यशस्वती के भरत नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा प्रीतिवर्धन के मन्त्री का जीव जो क्रम से आर्य (भोगभूमिज), कनकप्रभ देव, आनन्द पुरोहित, ग्रैवेयक का अहमिन्द्र, पीठ और फिर सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ था वह भरत का लघुभ्राता वृषभसेन हुआ। जो पुरोहित का जीव आर्य, प्रभंजन देव, धनमित्र, अध ोग्रैवेयक का अहमिन्द्र, महापीठ और सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ था वह वृषभसेन का लघुभ्राता अनन्तवीर्य हुआ। जो व्याघ्र का जीव भोगभूमि, चित्रांगद देव, वरदत्त, अच्युत कल्पका देव, विजय और सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ था वह भी भरत का लघुभ्राता अनन्त हुआ। जो शूकर का जीव आर्य, मणिकुण्डल देव, वरसेन, अच्युत कल्प का देव, वैजयन्त और सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ था वह भी भरत का लघुभ्राता अच्युत हुआ। जो बन्दर का जीव आर्य, मनोहर देव, चित्रांगद, अच्युत स्वर्ग का देव, जयन्त और सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ था वह भी उसका लघुभ्राता वीर हुआ। जो नेवला का जीव भोगभूमि में आर्य, मनोरथ देव, शान्तमदन, अच्युत कल्प में देव, अपराजित का देव और अन्त में सर्वार्थसिद्धि का देव हुआ था वह भी

भरत का लघुभ्राता सुवीर हुआ। इनको आदि लेकर निन्यान्वें पुत्र भरत के लघुभ्राता हुए। इसके पश्चात् भगवान् ऋषभदेव के ब्राह्मी नाम की पुत्री भी उत्पन्न हुई। जो सेनापति का जीव भोगभूमि का आर्य, प्रभाकर देव, अकम्पन, अधोग्रैवक का देव, सुबाहु और फिर सर्वार्थ सिद्धि का अहमिन्द्र हुआ था वह भी वहाँ से च्युत होकर सुनन्दा रानी का पुत्र बाहुबली उत्पन्न हुआ। पूर्व में वज्रजंघ की छोटी बहन जो पुण्डरीक की माता थी वह दोनों गतियों के सुख को भोगकर बाहुबली की सुन्दरी नाम की छोटी बहिन उत्पन्न हुई। इस प्रकार वृषभनाथ के एक सौ एक पुत्र और दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं।

एक समय भगवान् वृषभदेव ने उन दोनों पुत्रियों को अपने दोनों ओर बैठाकर उनमें से एक के लिए दाहिने हाथ से लिखकर अकारादि वर्णों तथा दूसरी के लिए बायें हाथ से लिखकर इकाई और दहाई आदि अंकों को दिखलाया। साथ ही उन्होंने भरत आदि पुत्रों को भी समस्त कलाओं में निपुण कर दिया। इस प्रकार वे भगवान् सुख से स्थित हुए।

फिर किसी एक समय नाभिराज प्रजा को साथ लेकर भगवान् ऋषभदेव के पास आये। उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की कि हे देव! केवल ईख के रस से भूख की पीड़ा शान्त नही होती है। अतएव हे स्वामिन्! उक्त पीड़ा को शान्त करने के लिए दूसरा भी कोई उपाय बतलाइये। इस पर ऋषभदेव ने जिस कर्मभूमि व्यवस्था के नष्ट होने के पश्चात् अठारह कोड़ाकोड़ि सागरोपम काल बीत चुका था उसकी प्रवृत्ति को बतलाते हुए ग्राम-नगर आदि की रचना; क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्णों की व्यवस्था, तथा जीवन के साधनभूत धान्य आदि की उत्पत्ति का भी उपदेश दिया। उस समय ऋषभदेव ने चूँकि युग (सृष्टि) की रचना का उपदेश किया था, इसीलिए वे 'कृतयुग' अर्थात् युग के प्रवर्तक कहे जाते हैं। इस प्रकार समस्त सृष्टि की रचना में उनका बीस लाख पूर्व प्रमाण कुमार काल बीत चुका था। उस समय इन्द्रादिकों ने एकत्रित होकर आषाढ़ कृष्णा प्रतिपदा के दिन उन्हें राज्यपट्ट बाँधा था। तब उन्होंने सोमप्रभ नामक क्षत्रियकुमार के लिए राज्याभिषेक करके राज्यपट्ट को बाँधा तथा 'तुम्हारा वंश कुरूवंश हो' यह कहते हुए उसे हस्तिनापुर दिया इसके साथ ही उन्होंने अकम्पन के लिए राज्यपट्ट बाँधकर 'तुम्हारा वंश उग्रवंश

हो' यह कहते हुए उसे वाराणसी को दे दिया। उन्होंने 'हा-मा और धि क्' की नीति से प्रजा को शिक्षा देते हुए तिरेसठ लाख पूर्व तक राज्य किया।

एक समय इन्द्र ने भगवान् को विरक्त करने के लिए अन्तर्मुहूर्त मात्र शेष आयु वाली अपनी नीलंजना नाम की नर्तकी को उनके आगे नृत्य करने के लिए नियुक्त किया। वह नृत्य करते करते रंगभूमि में ही अदृश्य हो गई। इस प्रकार उसके मरण को जानकर वे भगवान् अतिशय विरक्त हुए। उस समय लौकान्तिक देवों ने आकर उनके वैराग्य की प्रशंसा करते हुए कहा कि हे देव! आपने यह बहुत ही उत्तम कार्य किया है। तब ऋषभदेव ने भरत के लिए अयोध्यापुर, बाहुबली के लिए पौदनपुर, वृषभसेन के लिए पुरिमतालपुर और शेष कुमार के लिए काश्मीर देश दिया। फिर वे मंगलस्नान के पश्चात् मंगलभूषणों से अलंकृत होकर देवों के द्वारा रची गई सुदर्शन नाम की पालकी पर आरूढ हुए। उस पालकी को यथाक्रम से भूमिगोचारी आदि (विद्याधर और देव) ले गये। इस प्रकार जाकर वे भगवान् देवनिर्मित मण्डप के भीतर प्रविष्ट हुए। वहाँ वे पूर्वाभिमुख स्थित होकर व छह महिने के उपवास का नियम लेकर चैत्र कृष्णा नवमी के दिन 'नमः सिद्धेभ्यः' कहते हुए निर्ग्रन्थ (समस्त परिग्रह से रहित दिगम्बर) हो गये- उन्होंने दैगम्बरी दीक्षा ग्रहण कर ली। उनके साथ कच्छादिक अन्य चार हजार क्षत्रियों ने भी जिनदीक्षा ले ली। दीक्षा लेते समय उन्होंने पाँच मुष्टियों से अपने बालों का लोंच किया व प्रतिमायोग से स्थित हो गये। इस प्रकार से छह महीने तक प्रतिमायोग से स्थित रहे। उनका वह दीक्षास्थान 'प्रयाग' तीर्थ के नाम से प्रसद्धि हुआ। उस समय समस्त देवों ने आकर उनके दीक्षाकल्याणक की पूजा की। तत्पश्चात् वे सब देव उनके बालों को क्षीरसमुद्र में प्रवाहित करके स्वर्गलोक को वापिस चले गये। भगवान् तो छह महिने तक बराबर प्रतिमायोग से स्थित रहे। किन्तु कच्छादिक राजा दो महिने के पश्चात् प्यास और भूख से पीड़ित होकर जल पीने और फल आदि के खाने में संलग्न हो गये। यह देखकर वन देवताओं ने उन्हें दिगम्बर वेष में स्थित रहकर उसके प्रतिकूल आचरण (फलादिभक्षण) करने से रोक दिया। तब वे भौतिक आदि अनेक वेषों के धारक हो गये।

तत्पश्चात् कुछ दिनों में कच्छ और महामच्छ के पुत्र नमि और विनमि ने आकर भगवान् के चरणों में प्रणाम करते हुए प्रार्थना की कि हे स्वामिन्! हम दोनों को कोई भी देश प्रदान कीजिए। तब उनके इस उपसर्ग को दूर करने के लिए वहाँ धरणेन्द्र आया। उसने उन दोनों कुमारों से कहा कि स्वामी ने तुम दोनों के लिए विजयार्ध का राज्य दिया है, तुम मेरे साथ वहाँ चलो। इस प्रकार उन दोनों को वहाँ ले जाकर उसने उन्हें राजा बना दिया। प्रतिज्ञा के अन्त में भगवान् हाथों को उठाकर आहार के लिए जिस नगर आदि में प्रविष्ट होते उनके अधिपति उन्हें कन्या आदि देने को उद्यत होते, परन्तु विधिपूर्वक भोजन कोई नहीं देता था। राजा भरत भी गया और उनके चरणों में गिरकर बोला कि हे स्वामिन्! आप इस प्रकार से क्यों स्थित हैं, अपने नगर में आकर पहिले के समान राज्य कीजिए। परन्तु जब भगवान् ने कुछ उत्तर नहीं दिया तब उनके मौन को देखकर उसे बहुत खेद हुआ। अन्त में वह अपने नगर में वापिस चला गया। इस प्रकार वे भगवान् आहार के लिए छह महिने तक घूमे। परन्तु उन्हें विधिपूर्वक वह प्राप्त नहीं हुआ। तत्पश्चात् वे वैशाख शुक्ला द्वितीया के दिन अपरान्ह काल में हस्तिनापुर नगर के बाहरी उद्यान में प्रतिमायोग से स्थित हुए। उसी दिन रात्रि के पिछले प्रहर में सोमप्रभ राजा के भाई श्रेयांस ने अपने घर में कल्पवृक्ष के प्रवेश आदि रूप अनेक शुभ स्वप्न देखे। तत्पश्चात् उसने इन स्वप्नों का वृत्तान्त सोमप्रभ से कहा। उत्तर में सोमंप्रभ ने कहा कि तुम्हारे घर में कोई महात्मा प्रवेश करेगा। तत्पश्चात् तृतीया के दिन मध्यान्ह काल में वे भगवान् लोगों को आश्चर्यान्वित करते हुए आहार के लिए राजभवन के सम्मुख आये। उन्हें देखकर सिद्धार्थ द्वारपाल ने सोमप्रभ से कहा कि राजन्! ऋषभदेव स्वामी राजभवन की ओर आ रहे हैं। यह सुनकर सोमप्रभ और श्रेयांस दोनों भाई भगवान् के संमुख आये। उन्हें देखते ही श्रेयांस को जातिस्मरण हो गया। इससे उसने आहार की विधि को जानकर भगवान् का पड़िगाहन किया। तत्पश्चात् उन्होंने दाता के सात गुणों से संयुक्त होकर आदिनाथ भगवान् को नवधा भक्तिपूर्वक आहार दिया। भगवान ने तीन अंजुलि प्रमाण ईख के रस को लेकर इस दान को अक्षयदान बतलाया। उस समय श्रेयांस के घर पर पंचाश्चर्य

हुए। तब से वह तृतीया अक्षयतृतीया के नाम से प्रसिद्ध हुई। श्रेयांस ने श्री ऋषभदेव को आहार कराया है, यह जानकर भरत को बहुत सन्तोष हुआ। इससे वह श्रेयांस के समीप गया। तब सोमप्रभ और श्रेयांस दोनों ने उसे नगर में ले जाकर राजभवन के भीतर प्रविष्ट कराते हुए सिंहासन पर बैठाया उस समय भरत ने श्रेयांस से पूछा कि तुमने भगवान के अभिप्राय को कैसे जाना? श्रेयांस बोला- इस भव से पहिले आठवें भव में भगवान् वज्रजंघ नाम के राजा और मैं उनकी श्रीमती नाम की पत्नी थी। उस भव में हम दोनों से सर्प सरोवर के किनारे दो चारण ऋद्धिधारी मुनियों के लिए आहार दिया था। उससे उत्पन्न हुए पुण्य के प्रभाव से वह राजा क्रम से भोगभूमिका आर्य, श्रीधर देव, सुविधि राजा, अच्युत इन्द्र, वज्रनाभि चक्रवर्ती, सर्वार्थसिद्धि का अहमिन्द्र और इस समय ऋषभनाथ हुआ है। तथा वह श्रीमती का जीव क्रम से आर्या, स्वयंप्रभ देव, सुविधि का पुत्र केशव, अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र, धनदेव, सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र और फिर वहाँ से च्युत होकर इस समय मैं श्रेयांस राजा हुआ हूँ। मुझे मुनिराज के स्वरूप को देखकर जातिस्मरण हो गया था। इससे मैंने श्रीमती के भव में दिए गये आहारदान का स्मरण हो जाने से उसकी विधि को जान लिया था। इस वृत्तान्त को सुनकर भरत को बहुत सन्तोष हुआ। तब उसने श्रेयांस की बहुत प्रशंसा की। फिर वह कुछ दिनों में अपने नगर में वापिस आ गया।

यहाँ वृषभनाथ ने एक हजार वर्ष तक तपश्चरण किया। तत्पश्चात् वे जब पुरिमतालपुर के उद्यान में वट वृक्ष के नीचे ध्यान विशेष (शुक्ल ध्यान) में स्थित थे तब उन्हें घातिया कर्मों के क्षीण हो जाने से फाल्गुन कृष्णा एकादशी के दिन केवलज्ञान प्राप्त हो गया। उस समय वे भगवान् स्फटिक मणिमय पर्वत के ऊपर उदित हुए करोड़ सूर्यो के बिम्ब के समान तेजपुंज को धारण करने वाले शरीर से संयुक्त होकर पृथ्वी से पाँच हजार धनुष ऊपर जाकर आकाश में स्थित हुए। उस समय कुबेर का आसन कम्पित हुआ। इससे उसने भगवान् के केवलज्ञान की उत्पत्ति को जानकर ग्यारह भूमियों से संयुक्त उनके समवशरण की रचना की। वे ग्यारह भूमियाँ कौन सी हैं, इसका यहाँ उल्लेख मात्र किया जाता है उसने पृथ्वी से पाँच हजार धनुष के अन्तराल में चारों दिशाओं में

से प्रत्येक दिशा में बीस हजार सीढ़ियों से सहित एक गोल इन्द्रनीलमणिमय शिला का निर्माण किया। उसके ऊपर चार गोपुरद्वारों से संयुक्त एक सर्वरत्नमय कोट था। उसके मध्य की भूमि में पाँच पाँच प्रासादों से व्यवहित जिनालय स्थित थे। उसके आगे चार गोपुरद्वारों से संयुक्त एक सुवर्णमयी वेदिका थी। उसके आगे जल से परिपूर्ण खातिका स्थित थी। इसके आगे भी उसी प्रकार की सुवर्णमय वेदिका, उसके आगे लतावन, उसके आगे एक वैसा ही सुवर्णमय कोट, उसके आगे उपवन, उसके आगे सुवर्णमयी वेदिका, उसके आगे ध्वजायें, उसके आगे चाँदी का कोट, उसके आगे कल्पवृक्ष, उसके आगे सुवर्णमयी वेदी, उसके आगे भवन, उसके आगे आकाशस्फटिक मणि का कोट, उसके आगे बारह कोठे और उसके आगे आकाशस्फटिकमणिमयी वेदी स्थित थी। इस वेदी के भीतर तीन पीठ व अन्तिम पीठ के ऊपर तीन सिंहासन स्थित थे। सिंहासन के ऊपर चार अंगुल के अन्तराल से उस सिंहासन को न छूते हुए केवली भगवान् विराजमान थे। प्रत्येक शाल और वेदी की पूर्वादिक दिशाओं में चार-चार गोपुरद्वार थे। उनमें से प्रत्येक गोपुरद्वार आठ मंगलद्रव्यों, नौ निधियों और सौ तोरणों से सहित थे। सबसे बाहर कोट में स्थित गोपुरद्वार सुवर्णमय और इससे आगे के छह रजतमय थे। आगे के दो गोपुरद्वार रत्नों से मिश्रित चाँदी के थे। बाहर तीन गोपुरद्वारों पर रक्षक स्वरूपी ज्योतिष्क देव, आगे दो गोपुरद्वारों पर यक्ष, आगे दो गोपुरद्वारों पर नागकुमार देव और अन्तिम दो गोपुरद्वारों पर कल्पवासी देव स्थित रहते हैं। बाह्य गोपुरद्वार के आगे मार्ग के मध्य में मानस्तम्भ स्थित था। दूसरे और तीसरे गोपुरद्वारों के आगे मार्ग के मध्य में केवल आकाश स्थित था- वहाँ अन्य कुछ नहीं था। चतुर्थ गोपुरद्वार के आगे मार्ग के मध्य दोनों ओर दो दो धूपघटों से संयुक्त दो नृत्यशालाएँ थीं। उनके आगे आकाश, उससे आगे पूर्वोक्त शालों के समान दो शाल (कोट), आगे नौ स्तूप और फिर आगे केवल आकाश था। यह क्रम चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में जानना चाहिये। अन्य सब वर्णन समवशरणग्रन्थ से जानना चाहिये। भगवान् आदिनाथ के चक्रेश्वरी यक्षी और गोमुख नाम का यक्ष था।

1. चार सौ कोश के भीतर सुभिक्षता, 2. आकाश में गमन, 3. प्राणिहिंसा का अभाव, 4. भोजन का अभाव, 5. उपसर्ग का अभाव, 6. चार मुखों का होना, 7. समस्त विद्याओं का आधिपत्य, 8. शरीर की छाया का अभाव, 9. पलकों का न झपकना और 10. नख व केशों का समान रहना- उनकी वृद्धि न होना; ये दश अतिशय तीर्थंकर केवली के घातिया कर्मों के क्षय से उत्पन्न होते हैं।

1. सर्व अर्धमागधी भाषा, 2. सब जनों में मित्रभाव, 3. वृक्षों का सब ऋतुओं के फलफूलों से संयुक्त हो जाना, 4. पृथ्वी का सम व रत्नमय होना, 5. विहार के अनुकूल वायु का संचार, 6. वायुकुमार देवों के द्वारा धूलि और कण्टक आदि का दूर करना, 7. विद्युतकुमार देवों के द्वारा गन्धोदक की वर्षा करना, 8. पादनिक्षेप करते समय आगे पीछे सात सात कमलों का निर्माण करना, 9. पृथ्वी का हर्षित होना, 10. जनों का हर्षित होना, 11. आकाश का निर्मल हो जाना, 12. देवों का एक दूसरे को बुलाना, 13. धर्मचक्र और 14. आठ मंगल द्रव्य; ये चौदह तीर्थंकर केवली के देवोपनीत अतिशय प्रकट हाते हैं। इस प्रकार भगवान् आदिनाथ के उस समय दस शारीरिक, दस घातिया कर्मों के क्षय से उत्पन्न हुए और चौदह देवोपनीत; ऐसे चौंतीस अतिशय प्रगट हुए थे। इसके अतिरिक्त वे भगवान् सिंहासन, तीन छत्र, दुन्दुभि, पुष्पवृष्टि, चामर, भामण्डल, दिव्यध्वनि और अशोक वृक्ष; इन आठ प्रातिहार्यों से सहित हुए थे। उस समय सब प्रकार के देव आये और भगवान् की पूजा करके यथायोग्य स्थान पर बैठ गये। उस समय उस पुर (पुरिमतालपुर) का स्वामी वृषभसेन विभूति के साथ भगवान् वृषभदेव के समवशरण में आया। उसने वहाँ संसाररूपी पर्वत को नष्ट करने के लिये वज्रपात के समान उन जिनेन्द्र देव की पूजा व स्तुति करके अपने अनन्तसेन नामक पुत्र के लिए राज्य दे दिया और स्वयं दीक्षा ले ली। वह आदिनाथ जिनेन्द्र देव का प्रथम गणधर हुआ।

इधर भरत अयोध्यापुरी में सामन्त आदि से वेष्टित होकर सभा भवन में बैठा हुआ था। उस समय तीन पुरुषों ने आकर महाराज भरत के लिये क्रमशः 'अनन्त सुन्दरी रानी के पुत्र उत्पन्न हुआ है, आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है, तथा आदिनाथ भगवान् को

केवलज्ञान प्राप्त हुआ है' ये तीन शुभ समाचार सुनाये। इस पर भरत ने विचार किया कि सन्तान की वृद्धि और राज्य की वृद्धि धर्म के प्रभाव से हुई हैं इसीलिये वह सर्वप्रथम इन्द्र के समान ठाट-वाट से जिनेन्द्र देव की वंदना करने के लिये गया। उसने समवशरण में जाकर तीनों लोकों के स्वामियों के-इन्द्र, धरणेन्द्र और चक्रवर्ती के- चूड़ामणि के समान तथा अनेक प्रकार के रत्नों की किरणों से इन्द्रधनुष की शोभा को उत्पन्न करने वाले श्री आदिनाथ जिनेन्द्र देव के चरणों की पूजा और स्तुति की। फिर वह गणधरादिकों की वन्दना करके अपने कोठे में बैठ गया।

राजा सोमप्रभ और श्रेयांस जय के लिये राज्य देकर दीक्षित हो गये। भरत के छोटे भाई अनन्तवीर्य ने भी जिनदीक्षा ले ली। ये तीनों भी भगवान् आदिनाथ के गणधर हुए। ब्राह्मी और सुन्दरी नाम की दोनों पुत्रियाँ भी कुमारी अवस्था में ही अन्य बहुत-सी स्त्रियों के साथ दीक्षित हो गयीं। वे दोनों आर्यिकाओं में प्रमुख हुई।

महाराज भरत दिव्यध्वनि के सुश्रवणरुपी अमृत रस के आस्वादन से सन्तुष्ट होकर अयोध्या में वापिस आये। उस समय उन्होंने पुत्र-जन्म का उत्सव मनाते हुए चक्ररत्न की पूजा भी की। तत्पश्चात् उन्होंने शुभ मुहूर्त में दिग्विजय के लिये प्रयाण करते हुए जो भेरी का शब्द कराया उससे समस्त दिङ्मण्डल शब्दायमान हो उठा। तब गमन करती हुई छह प्रकार की सेना के पाँवों के घात से जो धूलि का पटल उठा था उससे सूर्यमण्डल भी ढक गया था। इस प्रकार से गमन करते हुए उन भरत महाराज का कटक गंगा नदी के किनारे ठहर गया। तत्पश्चात् वे उस गंगा के किनारे से गये जहाँ वह समुद्र में गिरती है वहाँ पहुँचकर स्थित हो गये। वहाँ पर उन्हें समुद्र के भीतर अवस्थित मागध द्वीप के स्वामी मागध देव के जीतने की चिन्ता उत्पन्न हुई। वे इसके लिये कुछ उपाय खोज रहे थे। इस बीच रात्रि के पिछले प्रहर में उन्होंने स्वप्न में देखा कि कोई उनसे कह रहा है कि रथ पर चढ़कर समुद्र के भीतर प्रवेश करो, वहाँ बारह योजन जाने पर रथ ठहर जावेगा, तब वहाँ से उस मागध देव के निवास स्थान की ओर बाण को छोड़ो। फिर प्रातःकाल होने पर महाराज भरत पूर्वोक्त स्वप्न के अनुसार रथ में बैठकर बारह

योजन समुद्र के भीतर गये और जहां वह अवस्थित हुआ वहीं से बाण छोड़ दिया। उस नामांकित बाण को देखकर मागध देव ने क्रोधावेश में महाराज भरत की निन्दा की। परन्तु मन्त्रियों ने समझा बुझाकर उसे शान्त कर दिया। तब वह भेंट के साथ आकर चक्रवर्ती से मिला। चक्रवर्ती भरत ने भी इसे सेवक बनाकर अपने स्थान को वापिस भेज दिया। तत्पश्चात् भरत चक्रवर्ती लवणसमुद्र और उपसमुद्र के मध्य में स्थित उपवन के सहारे पश्चिम की ओर जाकर वैजयन्त गोपुरद्वार के भीतर प्रविष्ट हुए। वहाँ से उन्होंने मागध देव के समान वरतनु द्वीप के स्वामी वरतनु देव को वश में किया। फिर से पश्चिम की ओर जाकर सिन्धु नदी और समुद्र के संगम पर पड़ाव डालकर स्थित हुए। यहाँ से उन्होंने प्रभास द्वीप के स्वामी प्रभास देव को भी उसी प्रकार से सिद्ध किया। तत्पश्चात् वे सिन्धु नदी के सहारे चलकर उत्तर की ओर गये और विजयार्ध के पास पड़ाव डालकर स्थित हुए।

उधर सेनापति ने कृतकमाल और विजयार्ध इन दो देवों को जीतकर अपनी सेना को पश्चिम म्लेच्छखण्ड की ओर भेजा और स्वयं ने अश्वरत्न पर चढ़कर व उसके मुख को पश्चिम की ओर करके दण्डरत्न से तमिस्रगुफा के द्वार को ताड़ित किया। तत्पश्चात् वह शीघ्रतापूर्वक लगाम से घोड़े को ताड़ित कर पश्चिम म्लेच्छखण्ड की ओर चल दिया। इधर द्वार खुल जाने पर उससे निकली हुई भीषण गर्मी छह महीनों में शान्त हुई। इस बीच में सेनापति ने युद्ध में पश्चिम म्लेच्छखण्ड के राजाओं को जीत लिया और तब उन्हें लाकर चक्रवर्ती के सामने उपस्थित कर दिया। भरत चक्रवर्ती ने उन्हें सेवक बनाकर उसी प्रकार से छोड़ दिया। फिर उसने काकिणी रत्न के द्वारा लिखे गये चन्द्र और सूर्यों के प्रकाश की सहायता से उत्तर के मध्यम म्लेच्छखण्ड के भीतर प्रवेश किया। वहाँ उसने समस्त सेना का डेरा चर्म रत्न के ऊपर डाला और फिर उसने ऊपर छत्र रत्न को धारण किया। इस प्रकार दोनों के मिलने पर उसका आकार मुर्गी के अण्डे के समान हो गया। वहाँ पर चिलात और आवर्त आदि म्लेच्छ राजाओं ने सेनापति के साथ खूब युद्ध किया। अन्त में वे रणभूमि से भाग कर अपने कुलदेवता स्वरूप मेघकुमार देवों की शरण में पहुँचे। तब उक्त देवताओं ने आकर चक्रवर्ती

की सेना के ऊपर बहुत उपसर्ग किया। परन्तु जब वे उस चर्म रत्न और छत्र रत्न के भेदने में समर्थ नहीं हुए तब वे सेनापति के साथ युद्ध करने में तत्पर हुए। उसने उन सबको महायुद्ध में जीत लिया। तब उसने उनके राज्यचिन्हों को छीनकर मेघ जैसा गर्जन किया। इससे चक्रवर्ती ने जयकुमार का नाम मेघेश्वर प्रसिद्ध किया। इस प्रकार से उसने तीनों उत्तर म्लेच्छखण्डों को जीतकर तत्पश्चात् विजयार्ध पर्वतस्थ विद्याधरों को भी वश में कर लिया। तब नमि और विनमि अपनी पुत्री सुभद्रा को देकर उसके सेवक हो गये। इसके पश्चात् भरत चक्रवर्ती ने हिमवत्कुमार देव को भी जीतकर वृषभगिरि पर्वत के ऊपर अपना नाम लिखा। फिर उसने नाट्यमाल देव को वश में करके काण्डप्रपात (खण्डप्रपात) गुफा के द्वार को खोला और उसमें से निकलकर आर्यखण्ड में आ गया। तत्पश्चात् पूर्व म्लेच्छखण्ड को जीतकर वह कैलाश पर्वत के ऊपर गया। वहाँ उसने ऋषभ जिनेन्द्र देव की स्तुति की। इस प्रकार दिग्विजय करके वह साठ हजार वर्षों में अयोध्या वापिस आया।

महाराज भरत चक्रवर्ती जब नगर के भीतर प्रवेश करने लगे तब उनका चक्ररत्न वहीं रुक गया। भरत के द्वारा इसका कारण पूछने जाने पर मन्त्रियों ने कहा कि आपके भाई आज भी आपकी सेवा को स्वीकार नहीं करते हैं, इसीलिये यह चक्ररत्न नगर के भीतर प्रविष्ट नहीं हो रहा है। यह सुनकर भरत चक्रवर्ती ने सेना को नगर के बाहर ठहरा दिया और भाइयों के समीप में दूतों को भेज दिया। तब बाहुबली को छोड़कर शेष भाइयों ने भरत की आज्ञा के विषय में विचार करके पिता (आदिनाथ भगवान्) के समीप में दीक्षा धारण कर ली। परन्तु बाहुबली ने दूत से कह दिया कि यदि भरत मेरे बाणों रूपी दर्भों (कुशों-कासों) की शय्या पर सोता है तो मैं दया से कुछ दे सकता हूँ, अन्यथा नहीं। तत्पश्चात् वह युद्ध की अभिलाषा से निकल कर अपने देश की सीमा पर स्थित हो गया। इधर भरत भी बाहुबली के उत्तर से क्रोध को प्राप्त होकर युद्ध करने के लिये आ गया। इस प्रकार दोनों सेनाओं के सम्मुख होने पर मन्त्रियों ने उन दोनों के बीच में दृष्टियुद्ध, जल युद्ध और मल्लयुद्ध इस प्रकार के युद्धों को निर्धारित किया। सो बाहुबली ने इन तीनों ही युद्धों में चक्रवर्ती भरत को पराजित कर दिया। फिर भी उसने भरत को

नमस्कार करके उससे क्षमा करायी। इस घटना से बाहुबली को वैराग्य हो चुका था। इससे उसने अपने पुत्र महाबली को भरत के आधीन करके स्वयं उसके द्वारा रोके जाने पर भी कैलाश पर्वत के ऊपर जाकर ऋषभ जिनेन्द्र के समीप में दीक्षा ग्रहण कर ली। वह कुछ ही दिनों में समस्त आगम में पारंगत होकर एकल विहारी मुनि हो गया। वह किसी वन में जब प्रतिमायोग से स्थित हुआ तब उसका शरीर बेलों और बांबियों से घिर गया। उसकी इस अवस्था को देखकर कभी-कभी विद्याधरियाँ उन बेलों आदि को हटा दिया करती थीं। इस प्रकार से पूरा एक वर्ष बीत गया। अन्त में जब भरत ने ऋषभ जिनेन्द्र के समवशरण में जाते हुए बाहुबली को ऐसे कठिन प्रतिमायोग में स्थित देखा, तब उसने जिनेन्द्र को नमस्कार करके पूछा कि बाहुबली मुनिराज को अब तक केवलज्ञान क्यों नहीं उत्पन्न हुआ? इस प्रश्न को सुनकर जिन भगवान् ने उत्तर दिया कि यद्यपि बाहुबली ने पृथ्वी का परित्याग कर दिया है, फिर भी 'मैं भरत चक्रवर्ती की पृथ्वी पर स्थित हूँ' यह किंचित् मानकषाय उसके मन में अभी तक बनी हुई है। वह कषाय जब तक नष्ट नहीं होती है तब तक उसे केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होता है। यह सुनकर भरत चक्रवर्ती बाहुबली मुनिराज के समीप गये और उनके चरणों में गिर गये। फिर उन्होंने विनय से परिपूर्ण सम्भाषण के द्वारा बाहुबली की उस कषाय को दूर कर दिया। तत्पश्चात् बाहुबली मुनिराज को उसी समय केवलज्ञान उत्पन्न हो गया, जिसके प्रभाव से समवशरणादि विभूति भी उन्हें प्राप्त हो गई।

भरत ने महाबली को पोदनपुर का राजा बनाया। तत्पश्चात् वह अयोध्या में सुखपूर्वक स्थित हुआ। उसके पास चक्रवर्ती की विभूति में अठारह करोड़ घोड़े, चौरासी लाख हाथी, इतने ही रथ, चौरासी करोड़ पदाति, बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा, इतने ही अंगरक्षक श्रेष्ठ यक्ष; आर्यखण्ड में स्थित राजाओं की पुत्रियाँ बत्तीस हजार, इतनी ही विद्याधर राजाओं की पुत्रियाँ व उतनी ही म्लेच्छ राजाओं की पुत्रियाँ, इस प्रकार समस्त छ्यानवें हजार अन्तःपुर की स्त्रियाँ; साढ़े तीन करोड़ कुटुम्बी जन, साढ़े तीन करोड़ गायें, तीन सौ साठ शरीरशास्त्र के जानकर वैद्य; तथा कल्याणमित्र, अमृतगर्भ और अमृतकल्प नाम के

आहार, पानक, खाद्य व स्वाद्य इन भोजन विशेषों को तैयार करने वाले उतने ही रसोइये थे। उसके चौदह रत्नों में से सुदर्शन चक्र, सुनन्द खड्ग और दण्ड रत्न ये तीन रत्न उसकी आयुधशाला में उत्पन्न हुए थे। जिनका आकार गाड़ी के समान होता है, जिनके चार अक्ष (धुरी) व आठ पहिये होते हैं; जो आठ योजन ऊँची, नौ योजन विस्तृत व बारह योजन आयत होती हैं, तथा जो प्रत्येक एक हजार यक्षों से रक्षित होती हैं; ऐसी नौ निधियाँ थीं। इन नौ निधियों के साथ उसके चौदह रत्न भी थे। उक्त नौ निधियों में, 1. कालनिधि अभिलाषित पुस्तकों को देने वाली, 2. महाकालनिधि सुवर्ण आदि पाँच प्रकार के लोह (धातुओं) को देने वाली, 3. पाण्डुकनिधि ब्रीहि आदि धान्यविशेषों, सोंठ आदि औषध द्रव्यों तथा सुगन्धित माला आदि को देने वाली, 4. माणवकनिधि कवच एवं खड्ग आदि समस्त शस्त्रों को देने वाली, 5. नैसर्पनिधि भाजन, शय्या एवं आसनरूप वस्तुओं को देने वाली, 6. सर्वरत्ननिधि समस्त रत्नों को देने वाली, 7. शंखनिधि समस्त बाजों को देने वाली, 8. पद्मनिधि समस्त वस्त्रों को देने वाली और 9. पिंगलनिधि समस्त आभूषणों को देने वाली थी। इन निधियों के समान जिन चौदह रत्नों की भी रक्षा वे यक्ष करते थे उनमें से सुदर्शन चक्र, सुनन्द खड्ग और दण्ड इन तीन रत्नों का निर्देश ऊपर किया जा चुका है। चर्म, छत्र, चूड़ामणि नाम का मणिरत्न और चिन्तामणि नाम का काकिणीरत्न, ये चार रत्न श्रीगृह में उत्पन्न हुआ करते हैं। अयोध्या नाम का सेनापति रत्न, अजितंजय नाम का अश्वरत्न, विजयार्धपर्वत नाम का गजरत्न और भद्रतुण्ड नाम का स्थपतिरत्न, ये चार रत्न अपने नगर में उत्पन्न होते हैं। बुद्धिसमुद्र नाम का पुरोहितरत्न, कामवृष्टि नाम का गृहपतिरत्न और सुभद्रा नाम का स्त्रीरत्न, ये तीन विजयार्ध पर्वत उत्पन्न होते हैं। वज्रतुण्डा शक्ति, सिंहाट्क भाला, लोकवाहिनी दुरी, मनोजव (मनोवेग) कणप (शस्त्रविशेष), भूतमुख नाम का खेट (शस्त्रविशेष), वज्रकाण्ड नाम का धनुष, अमोघ नाम के बाण, अभेद्य कवच, बारह योजन पर्यन्त शब्द को पहुँचाने वाली जनानन्दा नाम की बारह भेरियाँ, जयघोष नाम के बारह पटह (नगाड़ा), गम्भीरावर्त नाम के चौबीस शंख, वीरांगद नाम के दो कड़े, बहत्तर खेटक (खेड़े), छप्पन अन्तर्द्वीप, सोलह संवाहन, एक करोड़ थाली, सात सौ

कुक्षिनिवास, आठ सौ कक्षायें, नन्दश्रमण (नन्दावर्त) नाम का सेनानिवास, क्षितिसार कोट से घिरा हुआ वैजयन्ती का नाम का निवासगृह, सर्वतोभद्र नाम का सिंहद्वार, दिक्स्वस्तिक नाम का सभामण्डप, गिरिकूट नाम का दिगवलोकन (दिशाओं का दर्शक) गृह, वर्धमान नाम का प्रेक्षागृज, गर्मी की बाधा को नष्ट करने वाला धरागृह, {वर्षा काल के लिए उपयोगी} गृहकूट नाम का वर्षाकालगृह, पुष्करावती (पुष्करावर्त) नाम का शयनागार, कुबेरकान्त नाम का भांडागार, सुवर्णधार (वसुधारक) नाम का कोष्ठागार (कोठार), सुररम्भ वस्त्रगृह, मेघ नाम का स्नानगृह, अवतंस नाम का हार, बिजली जैसी कान्तिवाले तडित्प्रभ नाम के दो कुण्डल, विषमोचक खड़ाऊँ, अनुत्तर सिंहासन, अतुल (अनुपम) नाम के बत्तीस चामर, गृहसिंहवाहिनी नाम की शय्या, रविप्रभ (सूर्यप्रभ) छत्र, आकाश में फहराने वाली बयालीस पताकायें बत्तीस हजार नाट्यशालायें, उसके समीप में अठारह हजार म्लेच्छ राजा, एक लाख करोड़ हल और अजितंजय नाम का रथ था। इस तरह अनेक प्रकार की विभूति से सुशोभित वह भरतचक्रवर्ती सुख से कालयापन कर रहा था।

एक समय महाराज भरत के मन में किसी उत्तम पात्र के लिए स्वर्णादि के देने की इच्छा हुई। उस समय उन्होंने विचार किया कि महर्षि तो सुवर्णादि को ग्रहण करते नहीं है, अत एव किन्हीं गृहस्थों को ही उसे देना चाहिए। इस विचार से उन्होंने उन गृहस्थों में से योग्य गृहस्थों की परीक्षा करने के लिए राजांगण को धान्य आदि के अंकुरों और फूलों आदि से आच्छादित कराकर तीनों वर्णों के मनुष्यों को बुलाया। तब उनमें से जो अतिशय जिनभक्त थे- अहिंसाव्रत का पालन करते थे- वे उन अंकुरों आदि के ऊपर से नहीं आये, किन्तु बाहर ही स्थित रहे। तब चक्रवर्ती ने पूछा कि ये लोग भीतर प्रवेश क्यों नहीं कर रहे हैं? इस पर किसी राजपुरूष ने उनके पास जाकर पूछा कि आप लोग राजभवन के भीतर क्यों नहीं प्रविष्ट हो रहे हैं? इसके उत्तर में वे बोले कि मार्ग शुद्ध न होने से हम लोग भीतर नहीं आ सकते हैं। यह सुनकर उक्त राज्य कर्मचारी ने चक्रवर्ती से निवेदन किया कि वे लोग मार्ग शुद्ध न होने से भवन के भीतर नहीं आ रहे हैं तब भरत ने मार्ग शुद्ध कराकर उन्हें भवन के भीतर प्रविष्ट कराया। इस प्रकार उनके व्रत की दृढ़ता को

देखकर भरत को बहुत हर्ष हुआ। तत्पश्चात् उसने 'आप लोग रत्नत्रय के आराधक हैं' यह कहते हुए उनके कण्ठ में रत्नत्रय की आराधकता का सूचक यज्ञोपवीत डाल दिया। फिर उसने 'ब्रह्मा अर्थात् आदिनाथ जिनेन्द्र जिनके देव हैं वे ब्राह्मण हैं' इस निरूक्ति के अनुसार उन्हें ब्राह्मण बनाकर उनके लिए गाँव आदि को दिया।

एक बार भरत चक्रवर्ती ने जिन भगवान से पूछा कि मेरे द्वारा स्थापित ये ब्राह्मण भविष्य में कैसे होंगे? जिन भगवान बोले- शीतलनाथ तीर्थंकर के पश्चात् ये जैन धर्म के द्वेषी बन जावेंगे। इस बात को सुनकर भरत चक्रवर्ती को बहुत खेद हुआ। उसने अपने द्वारा ही प्रतिष्ठित किये हुए उनको नष्ट करना उचित नहीं समझा। उस समय उसने कैलाश पर्वत के ऊपर अतीत, अनागत और वर्तमान इन तीनों कालों के चौबीस तीर्थंकरों के मणि व सुवर्णमय जिनभवनों को बनवाकर उनमें इन तीर्थंकरों के नाम, वर्ण, शरीर की ऊँचाई, यक्ष-यक्षी और चिन्हों से सहित प्रतिमाओं को स्थापित कराया। फिर उसने अयोध्या में आकर प्रत्येक द्वार पर चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमाओं को प्रतिष्ठित कराया। वे सब प्रतिमायें वन्दनमाला बना गई थीं। इसके साथ ही उसने बाह्य वीथी प्रदेश में मंदिर के ऊपर पाँचों परमेष्ठियों की प्रतिमाओं को प्रतिष्ठित कराया। पश्चात् घोड़े के ऊपर चढ़कर प्रदक्षिणा करते समय उसने 'जय अरहन्त' कहते हुए पुष्पों की वर्षा की। तदनुसार उक्त वन्दनमाला की पद्धति लोगों में अब तक प्रचलित है {भरत ने वन्दना के लिये जो वह माला निर्मित करायी थी वह वन्दनमाला कहलायी, जो आज भी पृथ्वी पर वन्दनमाला के नाम से रूढ है}। इस प्रकार वह भरत चक्रवर्ती धर्म की अनुपम मूर्ति होकर सुख से राज्य करता हुआ स्थित था।

भगवान् वृषभेश्वर ने 1. वृषभसेन 2. कुम्भ 3. दृढरथ 4. शतधनु 5. देवशर्मा 6. धनदेव 7. नन्दन 8. सोमदत्त 9. सुरदत्त 10. वायुशर्मा 11. यशोबाहु 12. देवमार्ग 13. देवाग्नि 14. अग्निदेव 15. अग्निगुप्त 16. चित्राग्नि 17. हलधर 18. महीधर 19. महेन्द्र 20. वासुदेव 21. वसुंधर 22. अचल 23. मेरूधर 24. मेरूभूति 25. सर्वयश 26. सर्वयज्ञ 27. सर्वगुप्त 28. सर्वप्रिय 29. सर्वदेव 30. सर्वविजय 31. विजयगुप्त 32. जयमित्र 33. विजयी 34. अपराजित 35. वसुमित्र

36. विश्वसेन 37. सुषेण 38. सत्यदेव 39. देवसत्य 40. सत्यगुप्त 41. सत्यमित्र 42. शर्मद 43. विनीत 44. संवर 45. मुनिगुपत 46. मुनिदत्त 47. मुनियज्ञ 48. मुनिदेव 49. गुप्तयज्ञ 50. मित्रयज्ञ 51. स्वयंभू भग 52. भगदेव 53. भगदत्त 54. फल्गु 55. मित्रफल्गु 56. प्रजापति 57. सर्वसह 58. वरूण 59. धनपाल 60. मेघवाहन 61. तेजोराशि 62. महावीर 63. महारथ 64. विशाल 65. महोज्जवल 66. सुविशाल 67. वज्र 68. वज्रशाल 69. चन्द्रचूड 70. मेघेश्वर 71. महारथ 72. कच्छ 73. महाकच्छ 74. नमि 75. विनमि 76. बल 77. अतिबल 78. वज्रबल 79. नन्दी 80. महाभोग 81. नन्दिमित्र 82. महानुभाव 83. कामदेव और 84. अनुपम नाम के चौरासी गणधरों, चार हजार साढ़े सात सौ (4750) पूर्वधरों, चार हजार डेढ़ सौ (4150) शिक्षकों, नौ हजार (9000) अवधिज्ञानियों, बीस हजार (20000) केवलियों, बीस हजार छह सौ (20600) विक्रियाऋद्धिधारकों, बारह हजार साढ़े सात सौ (12750) विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानियों, उतने (12750) ही वादियों, साढ़े तीन लाख (350000) आर्यिकाओं, तीन लाख (300000) श्रावकों, पाँच लाख (500000) श्राविकाओं, असंख्यात देव-देवियों और बहुत करोड़ तिर्यच्चों के साथ एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व तक विहार करके कैलाश पर्वत के ऊपर योगनिरोध करना प्रारम्भ किया।

इधर चक्रवर्ती भरत ने स्वप्नों में मेरू को सिद्धशिला पर्यन्त बढ़ते हुए देखा तथा अन्य अर्ककीर्ति आदि उसके पुत्रों ने भी सूर्यादि को ऊपर जाते हुए देखा। प्रातःकाल के होने पर उसने पुरोहित से इन स्वप्नों का फल पूछा। पुरोहित ने कहा ये स्वप्न आदिनाथ भगवान् की मुक्ति को सूचित करते हैं। यह सुनकर भरतादिक कैलाश पर्वत के ऊपर गये। वहाँ उन सबने वृषभ जिनेन्द्र देव की पूजा व नमस्कार करके जब उन्हें मौनपूर्वक स्थित देखा तब वे खेदखिन्न हुए। वे चौदह दिन तक भगवान् जिनेन्द्र की पूजा आदि करते हुए वहीं पर स्थित रहे। आदिनाथ जिनेन्द्र ने चौदह दिन में योगनिरोध करके माघ कृष्ण चतुर्दशी के दिन मुक्ति प्राप्त की। उस समय भरत को बहुत शोक हुआ। तब उसने वृषभसेनादिकों से सम्बोधित होकर उत्कृष्ट निर्वाण कल्याण की पूजा की। फिर वह अपने

नगर में वापिस आया। इन्द्रादिक भी स्वर्गलोक को चले गये। तत्पश्चात् वृषभसेन गणधर आदि भी यथाक्रम से मोक्ष को प्राप्त हुए। ब्राह्मी और सुन्दरी दोनों अच्युत कल्प को प्राप्त हुईं। अन्य सब अपने-अपने पुण्य के अनुसार गति को प्राप्त हुए। भरत चक्रवर्ती पाँच लाख निन्यानवै हजार नौ सौ निन्यानबै पूर्व, तेरासी लाख निन्यानबै हजार नौ सौ निन्यानबै पूर्वांग और तेरासी लाख उनतालीस हजार वर्ष तक राज्य करता हुआ स्थित रहा। तत्पश्चात् उसने एक समय अपने सिर के ऊपर श्वेत बाल को देखकर अपने पुत्र अर्ककीर्ति को राज्य दे दिया और कैलाश पर्वत पर जाकर अष्टान्हिकी पूजा की। फिर उसने कुटुम्बी जनों को वापिस करके 'हमारा गुरु (पिता) ही गुरु है' ऐसा मन में स्थिर किया और स्वयं ही बहुतों के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। वह उसी समय केवली हो गया। वे भरत केवली भव्य जीवों के पुण्य की प्रेरणा से एक लाख पूर्व तक विहार करके कैलाश पर्वत से मुक्ति को प्राप्त हुए। भरत चक्रवर्ती का कुमार काल सतत्तर लाख पूर्व, मण्डलीक काल एक हजार वर्ष, दिग्विजयकाल साठ हजार वर्ष; राज्यकाल पाँच लाख निन्यानबै हजार नौ सौ निन्यानबै पूर्व तेरासी लाख निन्यानबै हजार नौ सौ निन्यानबै, आयु चौरासी लाख पूर्व (कुमार काल 7700000 पूर्व + मण्डलीककाल 1000 वर्ष + दिग्विजयकाल 60000 वर्ष + राज्यकाल 599999 पूर्व 8399999 वर्ष + संयमकाल 100000 पूर्व = 8400000 पूर्व) प्रमाण भी। भरत के मुक्त हो जाने पर देवादिकों ने उनके निर्वाण की पूजा की। फिर वे अपने स्थान को चले गये। इस प्रकार व्याघ्र आदि भी जब दान की अनुमोदना से इस प्रकार की विभूति को प्राप्त हुए हैं तब जो स्वयं सत्पात्रदान करते हैं वे क्या ऐसी विभूति को नहीं प्राप्त होवेंगे? अवश्य होवेंगे। इस प्रकार यह आदिपुराण की संक्षिप्त कथा है। विस्तार से उसे महापुराण से जानना चाहिए।।2।।

लोक में जिस दान से उत्पन्न हुए पुण्य के फल से दाता को सुख और अनेक उत्तम गुणों की प्राप्ति होती है उस दान के फल के विषय में भला क्या कहा जाय? अर्थात् उसका फल वचन के अगोचर है। उस दान की अनुमोदना से कबूतर और कबूतरी स्वर्ग में व पृथ्वी पर भी उत्तम सुख को भोगकर अन्त में उस मोक्ष को प्राप्त हुए हैं,

जो उत्तम सुख एवं अनेक गुणों का स्थानभूत तथा जन्म-मरणादि के दुःख से रहित है। इसलिए निर्मल गुणों के समूह से सहित भव्यजीवों का कर्तव्य है कि वे उत्तम मुनिराज के लिए दान देवें।।3।।

पूर्व में जिस शक्तिसेन ने एक बार मुनिराज के लिए आहारदान दिया था वह उत्तम गुणों से सुशोभित एवं नवनिधियों का स्वामी प्रसिद्ध कुबेरकान्त सेठ हुआ है। दाता के सात गुणों से संयुक्त जीव को दान के प्रभाव से जो निर्मल सुख प्राप्त होता है उसके विषय में क्या कहा जाय? अर्थात् वह अनुपम सुख को देने वाला है। इसीलिए निर्मल गुणों के समूह से सहित भव्य जीवों को मुनिराज आदि उत्तम पात्र के लिए दान अवश्य देना चाहिए।।18।।

## 19-20. कबूतर युगल व कुबेरकान्त सेठ-कथा

*किं भाषे दानजातं सुखगुणदफलं लोके च ददतु*
*र्यन्मोदात्सारसौख्यं दिवि भुवि विमलं पारापतयुगम्।*
*सेवित्वा मुक्तिलाभं सुखगुणनिलयं जात्यादिरहितं*
*तस्माद्दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये॥19॥*

*जातः श्रेष्ठी कुबेरो नव-सुनिधिपतिः कान्तरोत्तरपदः*
*पूर्वं श्रीशक्तिसेनः सकृदपि सुगुणः ख्यातः सुददिता।*
*किं भाषे दानसौख्यं ददतृगुणवतो जीवस्य विमलं*
*तस्माद्दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये॥20॥*

**19-20 इन दोनों पद्यों की कथाएँ**-सुलोचनाचरित्र में आयी हैं। उन्हें यहाँ अतिशय संक्षेप से कहा जाता है- इस आर्य खण्ड में कुरुजांगल देश के भीतर हस्तिनापुर में जयकुमार राजा राज्य करता था। रानी का नाम सुलोचना था। एक दिन वे दोनों पति-पत्नी सभाभवन में बैठे हुए थे। वहाँ जयकुमार आकाश में जाते हुए विद्याधरयुगल को देखकर 'हा प्रभावती' कहता हुआ मूर्छित हो गया। उधर रानी सुलोचना भी एक कबूतर युगल को देखकर 'हा रतिवर' कहती हुई मूर्छित हो गई। सेवक जनों के द्वारा शीतलोपचार करने पर जब उनकी वह मूर्छा दूर

हुई तब वे दोनों एक दूसरे का मुख देखते हुए स्थित रहे। इस घटना को देखकर दर्शक जनों को बहुत आश्चर्य हुआ। तत्पश्चात् सुलोचना बोली कि हे नाथ! मैं रतिवर का स्मरण करक के मूर्च्छित हो गई थी। वह रतिवर कहाँ उत्पन्न हुआ है? यह सुनकर जयकुमार बोला कि वह रतिवर मैं ही हूँ। तत्पश्चात् राजा जयकुमार ने भी पूछा कि हे देवि! क्या तुम प्रभावती को जानती हो! इसके उत्तर में रानी सुलोचना ने कहा कि वह प्रभावती मैं ही हूँ। तब जयकुमार ने उससे कहा कि हे प्रिये! हम दोनों के पूर्व भवों का वृत्तान्त इन सबको सुना दो। तत्पश्चात् उसने उन पूर्व भवों को इस प्रकार से कहना प्रारम्भ किया– इस जम्बूद्वीप में पूर्व विदेह के अन्तर्गत पुष्कलावती देश में स्थित मृणालपुर में सुकेतु राजा राज्य करता था। वहाँ श्रीदत्त नाम का एक वैश्य था। उसकी पत्नी का नाम विमला था। इन दोनों के एक रतिकान्ता नाम की पुत्री थी। विमला के एक रतिवर्मा नाम का भाई था। उसकी पत्नी का नाम कनकश्री था। इन दोनों के एक भवदेव नाम का पुत्र था। उसकी गर्दन लम्बी थी, इसलिए लोग उसको उष्ट्रग्रीव (ऊँट जैसी लम्बी गर्दन वाला) कहा करते थे। उसने अपने मामा (श्रीदत्त) से अपने लिए रतिकान्ता को माँगा। इस पर मामा ने कहा कि तुम उद्योगहीन हो– कुछ भी व्यापारादि काम नहीं करते हो– इस कारण मैं तुम्हारे लिए पुत्री नहीं दूँगा। तब उष्ट्रग्रीव ने कहा कि मैं धन के उपार्जन के लिए द्वीपान्तर को जाता हूँ। जब तक मैं वहाँ नहीं आऊँ तब तक तुम रतिकान्ता को अन्य किसी के लिए नहीं देना। इस प्रकार कहकर और बारह वर्ष की कालमर्यादा करके वह द्वीपान्तर को चला गया। परन्तु जब निर्धारित काल की मर्यादा समाप्त हो गई और उष्ट्रग्रीव वापिस नहीं आया तब श्रीदत्त ने उस रतिकान्ता का विवाह अशोक देव और जिनदत्ता के पुत्र सुकान्त के साथ कर दिया। इधर जब उष्ट्रग्रीव वापिस आया और उसने इस वृत्तान्त को सुना तब उसने सुकान्त की हत्या करने के लिए सेवकों को इकट्ठा किया। उन सबने जाकर रात को सुकान्त के घर को घेर लिया। तब सुकान्त किसी प्रकार से रतिकान्ता के साथ घर से निकलकर भाग गया।

इधर शोभानगर में प्रजापाल राजा राज्य करता था। रानी का नाम देवीश्री था। प्रजापाल के एक शक्तिसेन नाम का सेवक था जो हजार

योद्धाओं के बराबर बलशाली था। राजा ने उसे ऊँचा पद प्रदान कर उत्कृष्ट करते हुए प्रजा की बाधा को दूर करने के लिये धन्नगा नाम की अटवी (वन) में रम्यातट सरोवर के किनारे स्थानान्तरितं किया था। वह सुकान्त वहाँ से भागकर इसकी शरण में आया था। उधर उष्ट्रग्रीव भी उसका पीछा करके वहाँ आया और शक्तिसेन के शिविर (छावनी) के बाहर स्थित हो गया। वह बोला कि हे शिविर में स्थित सैनिकों! आपके शिविर में मेरा शत्रु प्रविष्ट हुआ है। उसे मुझे समर्पित कर दीजिए। यदि आप उसे मेरे लिए समर्पित नहीं करते हैं तो फिर आप जानें। यह सुनकर सहस्रभट धनुष के साथ बाहर निकला और बोला कि मैं सहस्रभट हूँ, तुममें कितना बल है जो तुम मेरी शरण में आये हुए अपने शत्रु को माँग रहे हो। इसके उत्तर में जब उष्ट्रग्रीव ने यह कहा कि मैं कोटिभट हूँ तब वह सहस्रभट बोला कि तो फिर तैयार हो जा, मैं 'सहस्रभट कोटिभट के साथ युद्ध करके मर गया {कोटिभट सहस्रभट के साथ युद्ध करके मर गया}' इस प्रसिद्धि को करता हूँ। तत्पश्चात् उष्ट्रग्रीव वहाँ से भाग गया। सुकान्त और रतिकान्ता दोनों वहीं पर सहस्रभट के समीप में स्थित रहे।

एक समय शक्तिसेन ने अमितगति नाम के जंघाचारण मुनिराज का पड़िगाहन किया- उन्हें आहार दिया। इससे उसके यहाँ पंचाश्चर्य हुए। उसी सरोवर के दूसरे किनारे पर पड़ाव डालकर एक मेरूदत्त नाम का सेठ स्थित था। वह उस प्रशस्त दाता को देखने के लिये वहाँ आया। तब शक्तिसेन ने उससे अपने यहाँ भोजन करने की प्रार्थना की। इस पर मेरूदत्त ने कहा यदि तुम मेरा कहना पूरा करते हो तो मैं तुम्हारे यहाँ भोजन कर लूँगा। उत्तर मैं शक्तिसेन ने कहा कि मैं आपका कहना पूरा करूँगा, कहिये। यह सुनकर सेठ बोला कि तुम यों कहो कि मैं इस दान के प्रभाव से आगामी भव में तुम्हारा पुत्र होऊँगा। इस पर शक्तिसेन बोला कि क्या तुम्हारे लिए यह उचित है? मेरूदत्त ने उत्तर में कहा कि हाँ, यह उचित है। तदनुसार तब शक्तिसेन ने वैसा निदान कर लिया। उसकी स्त्री जो अटवीश्री थी उसने भी 'इन दान की अनुमोदना से उत्पन्न हुए पुण्य के प्रभाव से मैं इसकी पत्नी होऊँगी' ऐसा निदान कर लिया। सेठ की पत्नी धारिणी ने भी 'इस दान की अनुमोदना से उत्पन्न पुण्य के प्रभाव से मैं मेरूदत्त की पत्नी होऊँगी'

ऐसा निदान कर लिया। तब वैसा निदान कर लेने पर मेरुदत्त सेठ ने शक्तिसेन के यहाँ भोजन कर लिया। फिर वह (मेरुदत्त) कुछ समय के पश्चात् मरकर उसी देश के भीतर पुण्डरीकिणी पुर में प्रजापाल राजा के यहाँ कुबेरमित्र नाम का राजसेठ हुआ। उपर्युक्त प्रजापाल राजा की पत्नी का नाम कनकमाला और पुत्र का नाम लोकपाल था। धारिणी मरकर कुबेरमित्र राजसेठ की धनवती नाम की पत्नी हुई। वह शक्तिसेन मरकर उन दोनों के कुबेरकान्त नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। और वह शक्तिसेन की पत्नी अटवीश्री कुबेरमित्र की बहिन और समुद्रदत्त की पत्नी कुबेरमित्र के प्रियदत्ता नाम की पुत्री उत्पन्न हुई। उधर उष्ट्रग्रीव को जैसे ही सहस्रभट के मरने का समाचार मिला वैसे ही उसने सुकान्त और रतिकान्ता के घर को अग्नि से प्रज्ज्वलित करके भस्मसात् कर दिया। यह देखकर उस नगर के निवासियों ने उसे भी उसी अग्नि में फेंक दिया। तब सुकान्त और रतिकान्ता दोनों मरकर कुबेरमित्र सेठ के घर पर रतिवर और रतिवेगा नाम का कबूतरयुगल (कबूतर-कबूतरी) हुआ। और वह उष्ट्रग्रीव मरकर पुण्डरीकिणीपुर के समीप में स्थित जम्बू गाँव में विलाब हुआ। वह कबूतरयुगल कुबेरकान्त कुमार के लिये अतिशय प्यारा हुआ, वह उसी के साथ पढ़ने लगा- कुबेरकान्त के पास सीखने लगा।

एक समय सेठ के भवन में पिछले भाग में स्थित उद्यान में एक सुदर्शन नाम के चारण मुनिराज आये। कुबेरकान्त ने उस कबूतरयुगल के साथ जाकर उन मुनिराज की वन्दना की। तत्पश्चात् उसने उनसे धर्मश्रवण करके एक पत्नीव्रत को ग्रहण किया। परन्तु इस बात को कोई जानता नहीं था। इसीलिये कुबेरमित्र ने उसके विवाह के लिये गुणवती और यशोमती (यशश्वती) नाम की दो राजकुमारियों, अपनी भानजी (समुद्रदत्त की पुत्री) प्रियदत्ता और अन्य धनिकों की एक सौ पाँच; इस प्रकार एक सौ आठ कन्याओं की याचना की जो उसे प्राप्त भी हो गई। तत्पश्चात् वह उसके विवाह की तैयारी भी करने लगा। यह देखकर उस कबूतरयुगल ने लिखकर दिखलाया कि कुमार कुबेरकान्त के एक पत्नी व्रत है। तत्पश्चात् जब माता-पिता ने इस सम्बन्ध में उससे पूछा तब उसने इसका उत्तर 'हाँ' में दिया। इससे सेठ को बहुत खेद हुआ। फिर

उसने इन एक सौ आठ कन्याओं में कुबेरकान्त को अतिशय प्रिय कौन होगी, इसकी परीक्षा करने के लिये उस नगर के बाहरी भाग में शिवंकर उद्यान के भीतर जो जगत्पाल चक्रवर्ती के द्वारा निर्मापित चैत्यालय स्थित था उसमें जाकर पूजा करायी। उसने उस दिन गुणवती और यशोमती आदि उन एक सौ आठ कन्याओं के लिये उपवास करने के लिये भी कहा। उस समय उसने राजा आदि को आश्चर्यान्वित करने वाला अभिषेक आदि कराया और जागरण भी कराया। प्रातःकाल हो जाने पर फिर उसने एक सौ आठ सुवर्णपात्रों में खीर को परोसा और उसके ऊपर सुवर्ण की कटोरियों में भरकर घी को रक्खा। उनमें से एक कटोरी में उसने एक रत्न को रख दिया। तत्पश्चात् कुबेरमित्र ने उतने (108) ही पात्रों में वस्त्र, आभरण और विलेपन आदि को रखकर उन सब पात्रों को यक्ष के आगे रख दिया और उन सब कन्याओं से कहा कि तुम सब एक एक खीर के पात्र और एक एक वस्त्रादि के पात्र को लेकर जाओं तथा सुदर्शन तालाब के किनारे पर भोजन करके वह वस्त्राभरणों से विभूषित होकर वापिस आओं वे सब कुबेरकान्त में आसक्त थीं, इसलिये उन सबने उसके नाम से भोजन व श्रृंगार किया। तत्पश्चात् वे वहाँ से वापिस आकर अपने अपने पिता के समीप में बैठ गई। उस समय कुबेरमित्र सेठ नें उनसे पूछा कि एक घी के पात्र में एक रत्न था, वह किसके हाथ में आया है? यह सुनकर प्रियादत्ता ने उत्तर दिया कि हे मामा! वह रत्न मेरे हाथ में आया है। वह यह है, इसे ले लीजिये। तब सेठ ने जान लिया कि यह कुबेरकान्त की प्रिया होगी। तत्पश्चात् कुबेरमित्र सेठ ने राजा को लक्ष्य करके कहा कि हे देव! मेरे पुत्र के एक पत्नी व्रत है, अतएव आप अपनी अपनी पुत्रियों को जिस किसी भी कुमार को दे दीजिये। इस पर राजा ने कहा कि इस पुण्यमूर्ति के एक पत्नी व्रत लेने का कोई कारण नहीं है। इसीलिये उसने अनेक प्रकार से कुबेरकान्त को उक्त एक पत्नीव्रत से विमुख करने का प्रयत्न किया, परन्तु उसने उस व्रत को नहीं छोड़ा। तब उन कन्याओं ने कहा कि हे देव! इस भव में हमारा पति यही है, और दूसरा कोई नही; यह हम लोगों की प्रतिज्ञा है। ऐसा कहते हुए उनमें से एक प्रियदत्ता को छोड़कर शेष सबने अमितमती और अनन्तमती आर्यिकाओं के समीप में

जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली। तब राजा आदि उन सबकी वन्दना आदि करके नगर में प्रविष्ट हुए। इस प्रकार कुबेरकान्त और प्रियदत्ता का विवाह हो गया। पूर्व भव में मुनिराज के लिये दिये गये उस दान के प्रभाव से उसके उद्यान के सब ही वृक्ष कल्पवृक्ष हो गये तथा घर में नौ निधियाँ भी प्रादुर्भूत हुई। सो यह कुछ आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि, धर्म के फल से अनेक प्रकार की विभूतियाँ हुआ ही करती हैं। इस प्रकार से वह कुबेरकान्त सुख से स्थित हुआ।

प्रजापाल राजा ने किसी वैराग्य के निमित्त को पाकर लोकपाल को अपने पद के ऊपर प्रतिष्ठित कर दिया और उसे सेठ को समर्पित करते हुए दस हजार क्षत्रियों (राजाओं) आदि के साथ अमितगति चारण मुनिराज के पास में दीक्षा ले ली। वह तपश्चरण करके मुक्ति को प्राप्त हुआ। इधर कुबेरमित्र सेठ लोकपाल को इच्छानुसार नहीं प्रवर्तने देता था, इसलिए सब युवक मन्त्रियों का सेठ के ऊपर द्वेषभाव हो गया। तब उन सबने जो बकुलमाला नाम की वेश्या राजा के लिए पुटपुटिका (?) दिया करती थी उसको विशिष्ट भूषण आदि देकर कहा कि रात में जब राजा कुछ निद्रित अवस्था में हो तब तुम जिस प्रकार से वह सुन सके उस प्रकार से यह कहना कि सेठ तुमसे अवस्था में वृद्ध और गुणों में अधिक है, इसलिए उसको अपने सिंहासन के नीचे बैठाना योग्य नहीं है। तदनुसार उसने प्रस्ताव को जानकर उसी प्रकार से कह दिया। राजा ने इसे स्वप्न ही माना। प्रातःकाल होने पर जब सेठ आया तब राजा ने उससे कहा कि जब मैं आपको बुलाऊँ तब आया कीजिये। तब उसके कथनानुसार सेठ कुबेरमित्र अपने घर पर ही रहने लगा। इधर राजा नवीन अवस्था वाले मन्त्रियों के साथ घूमने-फिरने में लग गया। एक दिन रात में वसुमती रानी ने प्रणयकलह में राजा के सिर को पैर से ताड़ित किया। तब राजा ने सबेरे सभागृह में आकर मन्त्रियों से पूछा कि जिस पैर से मेरे सिर में ठोकर मारी गई है उस पैर के विषय में क्या किया जाय? उत्तर में सब मन्त्रियों ने मिलकर कहा कि उस पैर को छेद डालना चाहिये। यह उत्तर सुनकर राजा को बहुत विषाद हुआ। तत्पश्चात् राजा ने सेठ कुबेरमित्र को बुलाकर उससे भी उपर्युक्त अपराध विषयक दण्ड के सम्बन्ध में पूछा सेठ ने उत्तर में कहा कि आपके सिर

को ताड़ित करने वाला वह पैर यदि गुरु का है तब तो वह पूजने के योग्य है, यदि वह पत्नी का है तो नूपुर (पैजन) आदि के द्वारा अलंकृत करने के योग्य है, और यदि वह बालक का है तो फिर उस बालक को लड्डू आदि देकर प्रसन्न करना चाहिये। सेठ के इस उत्तर को सुनकर राजा को बहुत सन्तोष हुआ। अब उसने सेठ को प्रतिदिन सभागृह में आने के लिए कह दिया। इस प्रकार से वह कुबेरमित्र सेठ राजा से सम्मानित होकर सुख से रहने लगा।

एक दिन सेठ की पत्नी धनवंती ने उसके बालों को बिखेरते हुए एक श्वेत बाल को देखकर उसे सेठ को दिखलाया। उसे देखकर सेठ कुबेरमित्र को वैराग्य उत्पन्न हुआ। तब उसने अपने पुत्र कुबेरकान्त को लोकपाल के लिये समर्पित करके वरधर्म भट्टारक के पास में बहुतों के साथ दीक्षा धारण की ली। अन्त में वह तपश्चरण करके मुक्ति को प्राप्त हुआ।

इधर कुबेरकान्त और प्रियादत्ता के कुबेरदत्त, कुबेरमित्र, कुबेरदेव, कुबेरप्रिय और कुबेरकन्द नाम के पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। एक दिन कुबेरकान्त सेठ ने उन्हीं अमितगति नाम के जंघाचारण मुनिराज का आहारार्थ पड़िगाहन किया। उनका निरन्तराय आहार हो जाने पर उसके यहाँ पंचाश्चर्य हुए। उन पुष्पवृष्टि आदिरूप पंचाश्चर्यों को देखकर पूर्वोक्त कबूतरयुगल को बहुत आनन्द हुआ। उनके आनन्द को देखकर कुबेरकान्त ने उनसे कहा कि हे रतिवर और रतिवेगे! इस आहारदान से जो मुझे पुण्य प्राप्त हुआ है उसका हजारवाँ भाग मैं आप दोनों को देता हूँ। इससे सन्तुष्ट होकर वे दोनों उसके पैरों में गिर गये। उसने उन दोनों को योग्य आभरणों से विभूषित किया। वे दोनों उन आभरणों से विभूषित होकर किसी एक दिन विमलजला नदी के किनारे बाहुका के ऊपर क्रीड़ा कर रहे थे। उस समय वहाँ से एक विद्याधरयुगल (विद्याधर व उसकी पत्नी) दिव्य विमान से आकाश में जा रहा था। उसको देखकर कबूतर युगल ने यह निदान किया कि सेठ के द्वारा दिये गये पुण्य के प्रसाद से हम दोनों आगे के भव में इस प्रकार के विद्याधर होंगे। तत्पश्चात् वे दोनों एक दिन जम्बूग्राम में स्थित चैत्यालय के आगे जनों के द्वारा फेंके गये चावलों को चुगते हुए स्थित थे। उसी समय उस बिलाव ने आकर रतिवर का गला पकड़ लिया। तब उस बिलाव को देखकर रतिवेगा

ने अपनी चोंच से उसके मस्तक के ऊपर प्रहार किया। इससे क्रोधित होकर उस बिलाव ने रतिवर को छोड़कर उसे रतिवेगा को पकड़ लिया। परन्तु लोगों ने देखकर उसे उस बिलाव के पंजे से छुड़ा दिया। इस प्रकार से मरणासन्न अवस्था में उन दोनों को चैत्यालय के भीतर प्रविष्ट कराकर आर्यिका ने पंचनमस्कार मन्त्र को दिया। उसके प्रभाव से रतिवर मृत्यु के पश्चात् उसी देश में स्थित विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में सुमीसा नगर के स्वामी आदित्यगति और शशिप्रभा के हिरण्यवर्मा नाम का अतिशय रूपवान् पुत्र हुआ। और वह रतिवेगा कबूतरी शरीर को छोड़कर उसी विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में स्थित भोगपुर के राजा वायुरथ और रानी स्वंयप्रभा के प्रभावती नाम की पुत्री उत्पन्न हुई। वह उनकी एक हजार कुमारियों में सबसे बड़ी थीं हिरण्यवर्मा और प्रभावती ये दोनों समस्त विद्याओं को सिद्ध करके यौवन अवस्था को प्राप्त हुए। एक समय वायुरथ उस प्रभावती को युवती देखकर बोला कि हे पुत्रि! समस्त विद्याधर युवकों में से कौन सा विद्याधर युवक तेरे लिए योग्य प्रतिभासित होता है, उसके साथ मैं तेरा विवाह कर दूँगा। इसके उत्तर में प्रभावती बोली कि जो मुझे गतियुद्ध में जीत लेगा वह मुझे योग्य प्रतीत होता है, दूसरा नहीं। उसकी बहिनों ने भी कहा कि इसका जो पति होगा वही हम सबका भी पति होगा, और यदि यह सम्भव नही हुआ तो हम तप को स्वीकार करेंगी। इस पर वायुरथ ने उसके स्वयंवर के लिये सुराद्रि (मेरु) के निकट समस्त विद्याधरों को आमन्त्रित किया। उसने घोषणा की कि पाण्डुक वन में स्थित होकर छोड़ी गई रत्नमाला को सौमनस वन में स्थित होकर जो छोड़ने के पश्चात् मेरु की तीन प्रदक्षिणा करके उस रत्नमाला को सबसे पहिले ग्रहण कर लेता है वह विजयी होगा। तदनुसार प्रभावती ने उस समय उस गतियुद्ध में बहुत विद्याधरों को पराजित कर दिया। तत्पश्चात् हिरण्यवर्मा ने उसे युद्ध में जीत लिया। तब उसने हिरण्यवर्मा के गले में वरमाला डाल दी। यह देखकर सब लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ। इस प्रकार से हिरण्यवर्मा ने उन प्रभावती आदि एक हजार कुमारियों को वरण कर लिया। फिर वह संसार को आश्चर्यान्वित करने वाली विभूति के साथ सुख से स्थित हुआ।

आदित्यगति उसके लिये राज्य देकर दीक्षित हो गया और मुक्ति को प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् हिरण्यवर्मा दोनों ही श्रेणियों को स्वाधीन करके समस्त विद्याधरों का स्वामी हो गया। वह महंती विभूति से संयुक्त होकर प्रभावती के साथ सुख का अनुभव करने लगा प्रभावती ने उस दान की अनुमोदना से प्राप्त हुए पुण्य के प्रभाव से सुवर्णवर्मा आदि पुत्रों को प्राप्त किया। इस प्रकार हिरण्यवर्मा ने बहुत समय तक राज्य किया। किसी समय वह हिरण्यवर्मा और प्रभावती दोनों जिनगृह की वंदना करने के लिये पुण्डरीकिणी पुरी को गये। उस पुरी के देखने से ही उन दोनों को जातिस्मरण हो गया। तब वह हिरण्यवर्मा अपने नगर में वापिस गया और सुवर्णवर्मा को राज्य देकर गुणधर नामक चारण ऋद्धिधारी मुनिराज के निकट में बहुतों के साथ दीक्षित हो गया। वह चारण ऋद्धि से संयुक्त होकर समस्त श्रुत का धारक हुआ। उधर प्रभावती ने भी बहुत सी स्त्रियों के साथ सुशीला आर्यिका के समीप में दीक्षा ले ली। एक दिन गुणधर मुनिराज संघ के साथ शिवंकर उद्यान वन में आये। वहाँ पुण्डरीकिणी पुरी में गुणपाल नाम का राजा राज्य करता था। रानी का नाम कुबेरश्री था जो कुबेरकान्त सेठ की पुत्री थी। वह राजा सेवक जनों के साथ सपरिवार मुनिराज की वंदना के लिये निकला। वंदना करने के पश्चात् धर्मश्रवण करके जब उसने हिरण्यवर्मा मुनिराज के अतिशय सुन्दर रूप को देखा तब आचार्य से पूछा यह कौन है और किस कारण से दीक्षित हुआ है? इसके उत्तर में आचार्य बोले कि कुबेरकान्त सेठ के घर पर जो रतिवर नाम का कबूतर था वह मुनिराज को दिये गये दान की अनुमोदना से उत्पन्न हुए पुण्य के फल से यह विद्याधरों का चक्रवर्ती हिरण्यवर्मा हुआ है। इसने पुण्डरीकिणी पुरी को देखकर जातिस्मरण हो जाने के कारण दीक्षा ग्रहण कर ली है। इस वृतान्त को सुनकर वह राजा धर्म के फल के विषय में दृढ़श्रद्धालु हो गया। इसी प्रकार अन्य जनों की भी उस धर्म में विषय में अतिशय श्रद्धा हो गई। उस समय वह सुशीला आर्यिका भी अपने संघ के साथ उसी वन के भीतर एक स्थान में स्थित थी। उसकी भी वंदना करके वह गुणपाल राजा अपने नगर के भीतर प्रविष्ट हुआ।

कुबेरकान्त सेठ की पत्नी प्रियदत्ता भी उस मुनिसंघ की वंदना करने के लिये गई थी। उसने मुनिसंघ की वंदना करके उस आर्यिका संघ की भी वंदना की। उस समय प्रभावती आर्यिका ने देखकर प्रियवचनों के द्वारा उससे पूछा कि हे प्रियदत्ता! तुम सुख से तो हो। तब प्रियदत्ता बोली कि हे आर्ये! आप मुझे कैसे जानती हैं? इस पर प्रभावती ने वह सब पूर्वोक्त वृत्तान्त कह दिया। तत्पश्चात् उसने पूछा कि कुबेरकान्त सेठ कहाँ पर हैं? उत्तर में प्रियदत्ता बोली- हे प्रभावती! एक समय मैंने अतिशय दिव्य रूप को धारण करने वाली एक आर्यिका को आहार कराकर उनसे पूछा कि ऐसे अनुपम रूप की धारक तुम कौन हो और इस यौवन अवस्था में किस कारण दीक्षित हुई हो? तब वह मेरे प्रश्न के उत्तर में बोली- विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में एक गन्धारपुर है। वहाँ पर एक गन्धराज नाम का राजा राज्य करता है। रानी का नाम मेघमाला है। मैं इन्हीं दोनों की पुत्री हूँ। मेरा नाम रतिमाला है। उसी पर्वत के ऊपर स्थित मेघपुर के राजा रतिवर्मा के साथ मेरा विवाह हुआ था। एक दिन मेरा पति मेरे साथ यहाँ जिनालयों की वंदना करने के लिये आया था। उस समय मैंने तुम्हारे पति (कुबेरकान्त) को देखा। तत्पश्चात् मैंने अपने पति से पूछा कि यह कौन है। इस पर रतिवर्मा ने कहा के मेरा मित्र कुबेरकान्त सेठ है। तत्पश्चात् मैं उसके विषय में आसक्त हो गई। फिर उसके साथ मिलाप की अभिलाषा से जिनपूजा के पश्चात् वन में क्रीड़ा के अवसर पर मैंने कपटपूर्वक पति से कहा कि हे नाथ! मुझे सर्प ने काट लिया है। यह कहकर मैं मूर्च्छा से गिर गई। तब मेरा पति व्याकुल होकर स्वयं ही मुझे निर्विष करने में उद्यत हुआ। परन्तु मैं नहीं उठी। तब वह मुझे कुबेरकान्त के पास लाकर उससे बोला कि हे मित्र! इसे सर्प के विष से मुक्त करो। तब कुबेरकान्त ने मेरे पति को किसी जड़ी को लाने के लिये मेरु पर्वत के ऊपर भेजा और स्वयं मेरे ऊपर मन्त्र का प्रयोग करने लगा। जब मैंने उसे एकान्त में अकेला पाया तब मैंने उससे कहा कि हे सेठ! मुझे सर्प ने नहीं काटा है। किन्तु मैं तुम्हारे विषय में अनुरक्त हुई हूँ। इसीलिये मैंने तुम्हारा संयोग प्राप्त करने के लिये यह उपाय रचा है। तुम मुझे अपना संभोग देकर मेरी रक्षा करो। इस पर कुबेरकान्त बोला कि हे

बहिन! मैं तो नपुंसक हूँ, इसलिये तू शीलवती रह– उसको भंग करने का विचार मत कर। ऐसा कहकर वह चला गया। इसके पश्चात् जब मेरा पति वापिस आया तब मैं उसके साथ अपने नगर में वापिस चली गई। तत्पश्चात् एक समय मैंने पुत्र के साथ रथपर चढ़कर जिनालय को जाती हुई तुम्हें देखा। उस समय मैंने पति से पूछा कि यह कौन स्त्री है? तब उसने उत्तर दिया कि यह मेरे मित्र की पत्नी प्रियदत्ता है। इस पर मैंने कहा कि तुम्हारा मित्र तो नपुंसक है, फिर उसके पुत्र कैसे हो सकता है। यह सुनकर रतिवर्मा ने कहा कि उसके एक पत्नीव्रत है, इसीलिये स्त्रियाँ उसे द्वेषबुद्धिवश नपुंसक कहा करती हैं। यह सुनकर मैं आत्मनिन्दा करती हुए अपने नगर को गई। एक समय बाढ़ दिवस की रात में पुरवासी जन की अतिशय रागपूर्ण प्रवृत्ति के होने पर मुझे अपनी दुष्ट प्रवृत्ति का स्मरण हो गया। इससे मुझे बहुत विषाद हुआ। तब मेरे उस खिन्न अवस्था को देखकर पति ने इसका कारण पूछा। उस समय मैंने उससे अपने पूर्व वृत्तान्त को ज्यों का त्यों कह दिया। इस पर मेरे पति रतिवर्मा ने कहा कि संसारी प्राणियों की ऐसी दुष्टप्रवृत्ति हुआ ही करती है, इसमें आश्चर्य क्या है? तुम व्यर्थ में संक्लेश न करो। तब मैंने पति से अपना निश्चय प्रगट किया कि मैं सबेरे अवश्य ही तप को ग्रहण करूँगी। इस पर उसने कहा कि क्या हानि है, मैं भी तेरे साथ तप को ग्रहण कर लूँगा। तत्पश्चात् दूसरे दिन पुत्र को राजकार्य में नियुक्त करके हम दोनों ने बहुतों के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली है। यही मेरे दीक्षा लेने का कारण है। इस प्रकार प्रियदत्ता जब प्रभावती से सुरूपा आर्यिका का वृत्तान्त कह रही थी तब सेठ कुबेरकान्त (मेरा पति) अन्तर्गृह के भीतर यह सब सुनता हुआ स्थित था। सो वहाँ से निकलकर उसने उस आर्यिका को नमस्कार किया और फिर अपने पुत्र कुबेरप्रिय को गुणपाल राजा के लिये समर्पित करके कुबेरदत्त आदि अपने चार पुत्रों तथा अन्य बहुत से जनों के साथ दीक्षा धारण कर ली। वह मुक्ति को प्राप्त हो चुका है। इस प्रकार अपने पति कुबेरकान्त के वृत्तान्त को कहकर और फिर आर्यिका प्रभावती को नमस्कार करके प्रियदत्ता अपने नगर के भीतर प्रविष्ट हुई।

उस समय वह बिलाव मरकर उसी पुर में प्रमुख कोतवाल का विद्युद्वेग नाम का अनुचर होकर स्थित था। एक दिन उसकी स्त्री प्रियदत्ता के साथ गई थी। उसे वापिस आने में कुछ विलम्ब हो गया। तब विद्युद्वेग ने रूष्ट होकर उससे विलम्ब का कारण पूछा इस पर उसकी स्त्री ने आर्यिका के पास सुने हुए हिरण्यवर्मा और प्रभावती आदि के सब वृत्तान्त को कह दिया। उसे सुनकर विद्युद्वेग को जातिस्मरण हो गया। इससे उसने हिरण्यवर्मा और प्रभावती को अपने पूर्व भव का शत्रु जान लिया। तब उसने अपनी स्त्री से कहा कि प्रिये! वे दोनों (हिरण्यवर्मा और प्रभावती) कहाँ हैं, मुझे दिखलाओ। इस प्रकार वह स्त्री के साथ जाकर उन्हें दिन में देख आया। तत्पश्चात् रात में वह उन दोनों को उठाकर श्मशान में ले गया। वहाँ उसने उन्हें इकट्ठा बाँधकर जलती हुई चिता में पटक दिया। फिर वह बोला कि मैं वही भवदत्त हूँ जिसने कि पूर्व जन्म में तुम दोनों को शोभानगर में जलाकर मार डाला था तथा जम्बूग्राम में भी मारकर खा लिया था। उस समय उन दोनों तपस्वियों ने इस भयानक उपसर्ग को सहन करते हुए समताभावपूर्वक शरीर को छोड़ दिया। इस प्रकार से मरण को प्राप्त होकर हिरण्यवर्मा मुनिराज सौधर्म स्वर्ग के भीतर कनक विमान में सौधर्मेन्द्र की अभ्यन्तर परिषद् का कनकप्रभ नाम का पारिषद देव हुआ और वह प्रभावती वहीं पर उस कनकप्रभ देव की कनकप्रभा नाम की देवी हुई इस प्रकार वे दोनों उस स्वर्ग में सुखपूर्वक स्थित हुए। तत्पश्चात् वहाँ से च्युत होकर वह देव तो यह मेघेश्वर (जयकुमार) हुआ है और वह देवी आकर सुलोचना हुई हैं। इस प्रकार एक बार मुनिराज के लिए आहारदान देने के कारण जब वह शक्तिसेन इस प्रकार की विभूति से संयुक्त हुआ है तथा वे दोनों कबूतर व कबूतरी भी उक्त दान की अनुमोदना करने मात्र से ही ऐसी विभूति से युक्त हुए हैं तब फिर भला जो मन, वचन व कार्य की शुद्धिपूर्वक उत्तम पात्र के लिए आहारादि निरन्तर देता है वह वैसी विभूति से संयुक्त नहीं होगा क्या? अवश्य होगा।।19-20।।

# 21. सुकेतु सेठ-कथा

*किं न प्राप्नोति देही जगति खलु सुखं दाता बुधयुतो*
*रूढ़: श्रेष्ठी सुकेतुर्जितभयकुपितोऽजैषीत् स भुवने।*
*दानाद्देवोपसर्गे तदनु सुतपसा मोक्षं समगमत्*
*तस्माद्दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यै: सुमुनये ॥21॥*

सत्पात्रदान करने वाला दाता मनुष्य विद्वानों से संयुक्त होकर कौन से सुख को नहीं प्राप्त होता है? अर्थात् वह सब प्रकार के सुख को प्राप्त होता है। देखो, लोक में सुप्रसिद्ध उस सुकेतु सेठ ने भय और क्रोध को जीतकर देवकृत उपसर्ग को भी जीता और फिर अन्त में वह उत्तम तत्पश्चरण करके मोक्ष को भी प्राप्त हुआ। इसलिए निर्मल गुणों के समूह से संयुक्त भव्य जीवों का कर्तव्य है कि वे उत्तम मुनिराज के लिए दान देवें।।21।।

**21. इसकी कथा-** इस प्रकार है- इसी द्वीप के भीतर पूर्व विदेह में स्थित पुष्कलावती देश के अन्तर्गत पुण्डरीकिणी नगर हैं वहाँ वसुपाल नाम का राजा राज्य करता था। वहीं पर दृढ़ता पूर्वक जैन ध र्म का पालन करने वाला एक सुकेतु नाम का वैश्य रहता था। उसकी पत्नी का नाम धारिणी था। एक समय वह व्यवहार के लिए- व्यापार के लिए- द्वीपान्तर को जाते हुए नागदत्त सेठ के द्वारा बनवाये गये नागभवन के समीप में स्थित शिवंकर उद्यान के भीतर पड़ाव डालकर ठहर गया। मध्यान्ह के समय में उसकी पत्नी धारिणी उसके लिए घर से भोजन लायी। सेठ अतिथि संविभाग व्रत का धारी था। इसलिए वह चर्या के लिए मुनिराज की प्रतीक्षा करने लगा। उसी समय एक गुणसागर नाम के मुनिराज अपनी प्रतिज्ञा को पूरी करके वहाँ चर्या के लिए आये। सेठ ने यथोक्त विधि से पड़िगाहन करके उन्हें आहार दिया। उनका निरन्तराय आहार हो जाने पर वहाँ पंचाश्चर्य हुए। सेठ के अतिशय निर्मल परिणामों के कारण उसके निवास स्थान के आगे साढ़े तीन करोड़ रत्न गिरे। उन्हें नागदत्त ने यह कहकर कि 'ये मेरे नागभवन के आगे गिरे हैं' ग्रहण कर लिया। परन्तु वे रत्न फिर से वहीं आकर

स्थित हो गये। तब नागदत्त ने उन्हें फिर से उठा लिया। परन्तु वे फिर भी न रह सके और वहीं जा पहुँचे। यह देखकर नागदत्त को क्रोध आ गया। तब उसने उनको फोड़ डालने के विचार से एक रत्न को शिला के ऊपर पटक दिया। परन्तु वह उस शिला से टकराकर वापिस आया और नागदत्त के मस्तक में लग गया। यह दृश्य देखकर देवों ने उसका उपहास करते हुए मणिनागदत्त नाम रख दिया। तत्पश्चात् नागदत्त ने क्रोध के साथ वसुपाल राजा के पास जाकर उससे प्रार्थना की कि हे देव! मैंने आपके नाम से जो नागभवन बनवाया है उसके आगे रत्नों की वर्षा हुई है। उन रत्नों को मँगवाकर आप अपने भाण्डागार में रखवा लें। इस पर राजा ने कहा कि मेरे लिए उन्हें भाण्डागार में रखवा लेने का कोई कारण नहीं है। यह उत्तर सुनकर नागदत्त राजा के पैरों में गिर पड़ा। तब उसके अतिशय आग्रह से राजा ने वैसा ही किया। परन्तु वे रत्न फिर उसी स्थान पर वापिस जाकर स्थित हो गये। तब राजा ने विचार किया कि रत्नवृष्टि किस कारण से हुई है। इस पर किसी ने कहा कि सुकेतु सेठ ने गुणसागर मुनिराज के लिए आहार दिया है, उसके प्रभाव से ये रत्न बरसे हैं। यह सुनकर राजा ने कहा कि मैंने यह बिना विचारे कार्य किया है। इससे उसे बहुत पश्चाताप हुआ। तब उसने सुकेतु सेठ को बुलाया। तदनुसार सुकेतु ने पाँच रत्न और कल्पवृक्ष के फूलों को ले जाकर राजा का दर्शन किया। राजा उससे बोला कि मैंने जो अज्ञानता वश यह कार्य किया है उसके लिए मुझे क्षमा करो और अपने घर पर सुख से रहो। यह सुनकर सेठ बोला कि तुम इन रत्नों के ही स्वामी नहीं हो, बल्कि मेरे भी स्वामी हो। यदि आवश्यकता हो तो उनको ले लीजिए। इस पर राजा ने सेठ से कहा कि क्या तुम्हारे घर में स्थित रहकर वे रत्न मेरे नहीं हो सकते हैं? जब मुझे आवश्यकता होगी उन्हें मँगा लूँगा। इस पर सेठ ने कहा कि यह आपकी महती कृपा है। तत्पश्चात् अब द्वीपान्तर जाने से कुछ प्रयोजन नहीं रहा, [illegible] वह सुकेतु सेठ अपने घर में प्रविष्ट होकर वहाँ ही सुखपूर्वक स्थित हो गया। अब जो भी मुनष्य सेठ सुकेतु की प्रशंसा करता उस पर राजा प्रसन्न रहता। परन्तु मणिनागदत्त उस सेठ से द्वेष करता था।

एक समय राजा ने राजसभा के बीच में सेठ सुकेतु की प्रशंसा की। उसे जिनदेव सेठ सहन नही कर सका। वह बोला- हे देव! आप क्या सुकेतु के रूप की प्रशंसा करते हैं, या गुण की प्रशंसा करते हैं तो भले ही करिये, परन्तु यदि लक्ष्मी के आश्रय से उनकी प्रशंसा करते हैं तो मेरे साथ उसका धनवाद कराकर- मेरे और उसके बीच धन की परीक्षा कराकर- जिसकी उस में विजय हो उसकी प्रशंसा कीजिए। इस धन विषयक विवाद को देखकर सुकेतु ने जिनदेव से कहा कि तुम लक्ष्मी का अभिमान क्यों करते हो, चुप बैठो न। इस पर जिनदेव ने कहा कि मुनष्य को किसी न किसी प्रकार से कुछ कीर्ति अवश्य कमानी चाहिए। इसीलिए मैं तुमसे यह प्रार्थना करता हूँ कि तुम सब ही प्रकार से मेरे साथ धन के सम्बन्ध में वाद करो। यह सुनकर सुकेतु ने कहा कि किसी भी जैन व्यक्ति के लिए ऐसा करना योग्य नहीं है। परन्तु फिर भी जिनदेव ने अपने दुराग्रह को नहीं छोड़ा तब उसके अतिशय आग्रह से सुकेतु को उसे स्वीकार करना पड़ा। तत्पश्चात् उन दोनों ने यह प्रतिज्ञा पत्र लिखकर राजा के हाथ में दे दिया कि हम दोनों में से इस विवाद में जो भी विजयी होगा वह दूसरे की भी समस्त सम्पत्ति का स्वामी होगा। फिर उन दोनों ने अपने अपने घर से धन को लाकर चौराहे पर ढेर कर दिया। तत्पश्चात् राजा आदि ने उस धन के विषय में उन दोनों की परीक्षा करके सुकेतु के लिए विजयपत्र प्रदान किया। तब जिनदेव बोला कि वास्तव में विजय मेरी हुई है। कारण यह कि मैंने सुकेतु जैसे मित्र को पाकर अनन्त संसार के कारणभूत मोहरूपी महान् शत्रु को जीत लिया है। तत्पश्चात् उसने सुकेतु के रोकने पर भी दीक्षा ग्रहण कर ली। तब सुकेतु ने जिनदेव की समस्त सम्पत्ति उसके पुत्र के लिए दे दी और वह स्वयं दानादि कार्यों को करता हुआ सुख से स्थित हुआ।

इधर मणिनागदत्त सुकेतु के प्रभाव को नहीं देख सकता था। इसलिए उसने अपने नागभवन में जाकर तपश्चरणपूर्वक नागों की आराधना की। पहिले किसी अर्जुन नाम के चाण्डाल को सम्बोधित करती हुई यक्षियों को देखकर नागदत्त का पुत्र (भवदत्त) कामज्वर से पीड़ित होता हुआ मर गया था और उसी नागभवन में उत्पल देव हुआ था, यह उपवासफल की कथा (5-8, 41) में वर्णित है। उस समय उक्त

उत्पल देव प्रसन्न होकर बोला कि हे नागदत्त! यह कायक्लेश तुम किस लिए कर रहे हो? नागदत्त बोला कि यह सब तुम्हारी आराधना-प्रसन्नता-के लिए कर रहा हूँ। तत्पश्चात् उन दोनों में इस प्रकार से वार्तालाप हुआ-

**उत्पल-** मेरी आराधना तुम किसलिए कर रहे हो?

**नागदत्त-** जिस लक्ष्मी के द्वारा मैं सुकेतु से विवाद करके उसे परास्त कर सकूँ उस लक्ष्मी को तुम मुझे प्रदान करो।

**उत्पल-** तुम पुण्य से रहित हो, इसलिए मैं तुम्हें वैसी लक्ष्मी देने के लिए समर्थ नहीं हूँ।

**नागदत्त-** पुण्यहीन हूँ, इसलिए तो मैंने तुम्हारी आराधना की है। अन्यथा, तुम्हारी आराधना से मुझे प्रयोजन ही क्या था।

**उत्पल-** लक्ष्मी देने की बात को छोड़कर और जो कुछ भी तुम कहोगे उसे मैं पूरा करूँगा।

**नागदत्त-** तो फिर तुम सुकेतु को मार डालो।

**उत्पल-** सुकेतु निर्दोष है, अतः वह मारने में नहीं आ सकता है; इसलिए उसके विषय में कुछ दोषारोपण करके उसे मार डालता हूँ।

**नागदत्त-** किसी भी उपाय से उसे तुम मार डालो, उसका मर जाना ही मेरे लिए पर्याप्त है।

**उत्पल-** तो फिर मैं बन्दर के वेष को ग्रहण कर लेता हूँ, तुम मुझे उस वेष में साँकल से बाँधकर सुकेतु के पास ले चलना। जब वह तुमसे पूछे कि इस बन्दर को यहाँ किस लिए लाये हो, तब तुम इस प्रकार उत्तर देना- मैं वन में गया था। वहाँ मैंने जैसे ही इस बन्दर को देखा वैसे ही इसने मुझसे स्पष्ट शब्दों में कहा कि तुम क्या देखते हो। इस पर मैंने कहा कि बन्दर होकर तुम मनुष्य के समान बोलते हो। तब यह बोला कि मैं बन्दर नहीं हूँ, किन्तु पुण्यदेवता हूँ। मेरा स्वभाव विपरीत है। वह यह कि जो भी मेरा स्वामी होता है उसके द्वारा दी गई समस्त आज्ञा को मैं शिरोधार्य करता हूँ। परन्तु यदि वह आज्ञा नहीं देता है तो फिर मैं उसे मार डालता हूँ। इसीलिए मैं किसी के आश्रित नहीं रह पाता हूँ, वन में रहता हूँ। इसके इस प्रकार कहने पर मैं इसे तुम्हारे पास ले आया हू। यदि तुम इसे आज्ञा देने में समर्थ

हो तो ग्रहण कर लो, अन्यथा छोड़ देता हूँ। इस प्रकार उस उत्पल के कहे अनुसार नागदत्त उसे बन्दर के वेष में सुकेतु के पास ले गया और फिर उसने सेठ से वैसा ही सब कह दिया। तब सुकेतु ने उसी स्वीकार कर लिया।

तब वहाँ स्थित होकर उत्पल ने उस बन्दर के वेष में सेठ से आज्ञा माँगी। इस पर सेठ ने कहा कि इस नगर के बाहर अनेक जिनालयों से संयुक्त रत्नमय नगर का निर्माण करो। यह आज्ञा पाकर उसने कहा कि ठीक है मैं वैसा करता हूँ, मुझे छोड़ दीजिये। इस पर सेठ ने उसे छोड़ दिया। तब उसने बाहर जाकर लोगों को आश्चर्य में डालने वाले वैसे ही नगर का निर्माण कर दिया। वहाँ से वापस आकर उसने पुनः सेठ से आज्ञा माँगी। तब सेठ ने कहा कि जब तक मैं राजा के पास जाकर नहीं आता हूँ तब तक यहीं पर बैठों। यह कहकर सेठ राजा के पास गया और उससे बोला कि हे देव! मैंने इस नगर के बाहर एक अन्य नगर का निर्माण कराया है, आप वहाँ पर रहकर राज्य करें। इस पर राजा ने कहा कि तुम्हारे पुण्य के उदय से ही उस नगर की रचना हुई है, इसलिये वहाँ पर पहुँच कर तुम ही राज्य करो। तब सेठ 'यह आपकी बड़ी कृपा है' कहकर अपने घर पर वापस आ गया। उस समय उस बन्दर ने सेठ से कहा कि स्वामिन्! अब मुझे अन्य आज्ञा दीजिये। तदनुसार सेठ ने उसे आज्ञा दी कि समस्त नगर को बुलाकर उसके साथ तुम मुझे उस नवनिर्मित नगर के भीतर ले चलों। तब बन्दर उसी प्रकार से उसे उस नगर के भीतर ले गया। नगर में प्रविष्ट होकर सुकेतु सेठ अपनी पत्नी धारिणी के साथ राजभवन में गया और भद्रासन पर बैठ गया। इसके पश्चात् बन्दर ने फिर से आज्ञा माँगी। इस पर सेठ ने कहा कि महा गंगा के जल को लाकर धारिणी के साथ मेरा राज्यभिषेक करो और राज्यपट्ट बाँधों। तदनुसार उस बन्दर ने वैसा ही किया। तत्पश्चात् उसने सेठ से अन्य आज्ञा माँगी। इस पर सेठ ने आज्ञा दी कि नागदत्त आदि समस्त मनुष्यों को घर देकर और उन सब घरों में अक्षय धन-धान्यादि को करके वापस आओं। तदनुसार बन्दर वह सब करके वापस आ गया। वापस आने पर उसने फिर से अन्य आज्ञा माँगी। इस पर सेठ ने कहा कि मेरे राजभवन के सामने एक बड़े खम्भे को बनाकर उसके

मूल में उसके ही बराबर साँकल बनाओं और फिर उस साँकल के अन्त में कुण्डलिका (गोल कड़ा) को बनाकर उसमें अपने सिर को फँसा दो तथा बार-बार तब तक चढ़ो उतरो जब तक मैं 'बस, रहने दो' न कह दूँ। तदनुसार बन्दर से दो तीन दिन तक वैसा ही किया। परन्तु सेठ ने जब 'बस, रहने दो' नहीं कहा तब तक वह बन्दर वेषधारी उत्पल देव भागकर चला गया।

तत्पश्चात् सुकेतु ने बहुत समय तक राज्य किया। एक समय उसे अपने सिर के ऊपर श्वेत बाल को देखकर भोगों से विरक्ति हो गई। तब उसने अपने पुत्र को राज्य देकर वसुपाल राजा से विदा ली और मणिनागदत्त आदि बहुत जनों के साथ भीम भट्टारक के समीप में दीक्षा ले ली। अन्त में वह तप करके मुक्ति को प्राप्त हुआ। उसकी पत्नी धारिणी तप के प्रभाव से अच्युत कल्प में देव हो गई। मणिनागदत्त आदि यथायोग्य गति को प्राप्त हुए। जिस दिन सेठ सुकेतु उस नगर से बाहर निकला उसी दिन वह नगर अदृश्य हो गया। इस प्रकार जब सुकेतु सेठ एक ही बार मुनिराज को दान देने के कारण देवों से भी अजेय होकर मोक्ष को प्राप्त हुआ है तब निरन्तर दान देने वाला भव्य जीव क्या अनुपम सुख का भोक्ता न होगा? अवश्य होगा।।21।।

## 22. आरम्भक द्विज-कथा

*श्रीमानारम्भकाख्यो द्विजकुलविमलश्चारुप्रवचनो*
*दत्ताद्दानादनूनं सुखममलमलं दैवं नृभवजम्।*
*भुक्त्वाभूच्चक्रवर्ती जितरिपुगणकः ख्यातो हि सगरः*
*तस्माद्दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये॥22॥*

निर्मल ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर मधुर भाषण करने वाला श्रीमान् आरम्भक नाम का ब्राह्मण मुनिराज के लिये दिये गये दान के प्रभाव से देव और मनुष्य भव सम्बन्धी महान् निर्मल सुख का भोक्ता हुआ और तत्पश्चात् वह समस्त शत्रु समूह को जीतने वाला सगर नाम से प्रसिद्ध द्वितीय चक्रवर्ती हुआ। इसलिये निर्मल गुणसमूह के धारक भव्य जीवों को मुनिराज के लिये दान देना चाहिये।।22।।

**22. इसकी कथा इस प्रकार है–** इसी आर्यखण्ड के भीतर पद्मपुर में एक शंखदारुक नाम का ब्राह्मण रहता था। उसके एक आरम्भक नाम का पुत्र था जो बहुत विद्वान था। वह भद्र मिथ्यादृष्टि बहुत से शिष्यों को पढ़ाता हुआ कालयापन कर रहा था। एक समय उसने चर्या के लिए आये हुए महामुनि को विधिपूर्वक आहार दिया। उस दान से उत्पन्न हुए पुण्य के प्रभाव से वह भोगभूमि और तत्पश्चात् स्वर्ग में उत्पन्न हुआ। इसके बाद वह स्वर्ग से च्युत होकर धात की खण्ड द्वीप के अन्तर्गत चक्रपुर के राजा हरिवर्मा और रानी गान्धारी के व्रतकीर्ति नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। फिर वह तप के प्रभाव से स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ से आकर वह जम्बूद्वीप सम्बन्धी पूर्वविदेह के अन्तर्गत मंगलावती देश में स्थित रत्नसंचयपुर के राजा अभयघोष और रानी चन्द्रानना के पयोबल नाम का पुत्र हुआ। तत्पश्चात् वह तप को स्वीकार करके उसके प्रभाव से प्राणत स्वर्ग में देव हुआ। फिर वहाँ से च्युत होकर इस भरत क्षेत्र में पृथ्वी पुर के राजा जयंधर और रानी विजया के जयकीर्ति नाम का पुत्र हुआ। तत्पश्चात् मुनि होकर वह तप के प्रभाव से अनुत्तर में अहमिन्द्र हुआ। फिर वहाँ से च्युत होकर अयोध्या नगरी में राजा जितशत्रु– अजितनाथ तीर्थंकर के पिता– के भाई विजयसागर और विजयसेना के सगर नाम का पुत्र हुआ। वह द्वितीय चक्रवर्ती था। सगर चक्रवर्ती ने भरत चक्रवर्ती के समान बहुत समय तक राज्य किया। उसके साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए थे। वे प्रतिदिन चक्रवर्ती से आदेश माँगते थे। परन्तु चक्रवर्ती कहता कि मेरे लिए दुःसाध्य कुछ भी नहीं है– सब कुछ सुलभ है, अतएव तुम लोगों को आज्ञा देने का कुछ काम नहीं हैं। परन्तु जब उन पुत्रों ने इसके लिये बहुत आग्रह किया तब उसने उन्हें कैलाश पर्वत के चारों ओर जल से परिपूर्ण खाई खोदने की आज्ञा दी। तब चक्रवर्ती की आज्ञानुसार उन सबने कैलाश पर्वत के चारों ओर दण्ड–रत्न से खाई को खोद दिया। तत्पश्चात् सगर चक्रवर्ती का जन्हु नाम का जो ज्येष्ठ पुत्र था उसका पुत्र भागीरथ और दूसरा कोई भीमरथ ये दोनों दण्ड–रत्न को लेकर गंगा जल लेने के लिए गये। इस बीच में उस दण्ड–रत्न

के वेग से क्रोध को प्राप्त हुए धरणेन्द्र ने अन्य सब पुत्रों को मार डाला।

पूर्व में कोई सगर चक्रवर्ती के द्वारा दिये पंचनमस्कार मन्त्र के प्रभाव से सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ था। उसका उस समय आसन कम्पित हुआ। इससे वह चक्रवर्ती के पुत्रों के मरण को जानकर ब्राह्मण के वेष में उस सगर चक्रवर्ती को सम्बोधित करने के लिए आया। तदनुसार उससे सम्बोधित होकर सगर चक्रवर्ती ने भागीरथ के लिए राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर ली। वह तपश्चरण करके मुक्ति को प्राप्त हुआ।

एक समय भागीरथ ने धर्माचार्य की वन्दना करके उनसे पूछा कि मेरे पिताओं (पिता व पितृव्यों) ने किस प्रकार के समुदायकर्म को उपार्जित किया था? इसके उत्तर में वे बोले– अवन्ती ग्राम में साठ हजार कुटुम्बी (कृषक) उत्पन्न हुए थे। वहाँ एक कुम्हार भी था। एक समय अन्य गाँव में जाने पर उन सबको भीलों ने मार डाला था। इस प्रकार से मृत्यु को प्राप्त होकर वे शंख और कौड़ी आदि अनेक भवों में परिभ्रमण करके तत्पश्चात् अयोध्या के बाहर गिंजाई (एक प्रकार क्षुद्र बरसाती कीड़े) हुए। और वह कुम्हार किंनर होकर वहाँ से आया और उसी अयोध्या में मण्डलेश्वर हुआ। उसके हाथी के पैर के नीचे दबकर वे सब गिंजाई की पर्याय से मुक्त होकर तापस हुए। तत्पश्चात् वे ज्योतिर्लोक में उत्पन्न होकर वहाँ से च्युत हुए और अब सगर चक्रवर्ती के पुत्र हुए हैं। वह मण्डलेश्वर मरकर तप के प्रभाव से स्वर्ग में गया और फिर वहाँ से आकर तुम हुए हो। इस सब पूर्व वृत्तान्त को सुनकर भागीरथ अपने पुत्र को राज्य देकर मुनि हो गया और मोक्ष को प्राप्त हुआ। इस प्रकार वह (आरम्भक) मिथ्यादृष्टि भी ब्राह्मण एक बार मुनिराज के लिए दान देकर जब चक्रवर्ती की विभूति को प्राप्त हुआ और अन्त में मोक्ष भी गया है तब भला सम्यग्दृष्टि भव्य जीव उस दान के प्रभाव से क्या वैसी विभूति को नहीं प्राप्त होगा? अवश्य प्राप्त होगा।।22।।

## 23. विप्र इन्धक-पल्लव (नल-नील)-कथा

*भुक्त्वा भो भोगभूमौ सुरकुजजनितं सौख्यं च दिविजं*
*दत्तादाहारदानात् द्विजवरतनयौ मूर्खावपि ततः*
*जातौ सुग्रीवबन्धू नलतदनुजकौ रामस्य सचिवौ*
*तस्माद्दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये॥23॥*

ब्राह्मण के दो मूर्ख पुत्र मुनि श्री के लिए दिये गये आहारदान के प्रभाव से भोगभूमि में कल्प वृक्षों से उत्पन्न सुख को और तत्पश्चात् स्वर्ग के सुख को भोगकर सुग्रीव के नल और उसके छोटे भाई (नील) के रूप में बन्धु हुए हैं जो रामचन्द्र के मन्त्री थे। इसीलिए उत्तम गुणों के समूह से संयुक्त भव्य जीवों को मुनिराज के लिये दान देना चाहिये।।23।।

**23. इसकी कथा इस प्रकार है-** इसी आर्यखण्ड के भीतर किष्किन्ध पर्वत के ऊपर स्थित किष्किन्धापुर में वारनवंशी सुग्रीव नाम का राजा राज्य करता था। उसके नल और नील नाम के दो भाई थे। वे सुग्रीव आदि रामचन्द्र के सेवक थे। जब सीताहरण के कारण रामचन्द्र और रावण के बीच में युद्ध प्रारम्भ हुआ था तब नल और नील ने रामचन्द्र के सेनापति होकर रावण के सेनापति हस्त और प्रहस्त को मार डाला था। उन्होंने उन्हें इस भव के विरोध से मार डाला था अथवा जन्मान्तर के विरोध से, इन प्रश्न के उत्तर में यहाँ जन्मान्तर विरोध को कारण बतलाया है जो इस प्रकार है- इसी भरतक्षेत्र के भीतर कुशस्थल ग्राम में इन्धक और पल्लव नाम के दो मूर्ख ब्राह्मण उत्पन्न हुए थे। उन दोनों ने किसी जैन के संसर्ग से मुनिराज के लिए आहार दान दिया था। वहीं पर दो अन्य भी कृषक बन्धु थे। उनके साथ इन्ध
ाक और पल्लव ने खेती कसा आरम्भ किया। उसमें राजा के लिये कर (टैक्स) देने के विषय में परस्पर झगड़ा हो गया, जिसमें उन दोनों कुटुम्बी भाइयों ने इन दोनों को (इन्धक-पल्लव) मार डाला। इस प्रकार से मरकर वे मुनिदान के प्रभाव से मध्यम भोगभूमि में उत्पन्न हुए। इसके पश्चात् वे स्वर्ग गये और फिर वहाँ से आकर नल और नील उत्पन्न हुए। उधर वे दोनों कृषक भाई कालंजर वन में खरगोश आदि

के भवों में परिभ्रमण करते हुए तापस होकर ज्योतिर्लोक में उत्पन्न हुए और फिर वहाँ से च्युत होकर विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणि में अग्निकुमार और अश्विनी के हस्त व प्रहस्त नाम के पुत्र हुए। इस प्रकार सम्यक्त्व से रहित और मूर्ख होकर भी वे दोनों ब्राह्मण एक बार मुनिराज को दिये गये आहार दान के प्रभाव से दोनों गतियों के सुख को भोगकर महाविभूति से संयुक्त चरमशरीरी होते हुए जब मुक्ति को प्राप्त हुए हैं तब क्या उस मुनिराज को दिये गये आहारदान के प्रभाव से सम्यग्दृष्टि जीव वैसी विभूति से संयुक्त न होंगे? अवश्य होंगे।।23।।

## 24. विप्रपुत्र वसुदेव-सुदेव-कथा

*विप्रौ यौ दत्तदानौ शममरकुजजं दैवं च पृथु तत्*
*संजातौ चारुकीर्ती जितसकलरिपू वीरौ सुविदितौ।*
*सेवित्वा रामपुत्रौ तदनु लव-कुशौ बुद्धाखिलमतौ*
*तस्माद्दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये॥24॥*

जिन दो ब्राह्मणों ने मुनिराज के लिए दान दिया था वे भोगभूमि में कल्पवृक्षों से उत्पन्न सुख को तथा देवगति के विपुल सुख को भोगकर तत्पश्चात् लव व कुश नाम से प्रसिद्ध रामचन्द्र के दो वीर पुत्र हुए। समस्त शत्रुओं को जीत लेने के कारण उनकी पृथ्वी पर निर्मल कीर्ति फैली। इसीलिए निर्मल गुणों के समूह से संयुक्त भव्य जीवों को निरन्तर उत्तम मुनि के लिए दान देना चाहिये।24।।

**24. इसकी कथा इस प्रकार है-** अयोध्यापुरी में राम और लक्ष्मण नाम के दो राजा राज्य करते थे। वे दोनों क्रम से बलभद्र और नारायण पद के धारक थे। रामचन्द्र की पत्नी का नाम सीता था। उसके गर्भाधान होने के पूर्व जब राम और लक्ष्मण पिता के वचन की रक्षा करने के लिए भरत को राज्य देकर वन को गये थे तब रावण उस सीता को चुराकर ले गया था। उस समय राम और लक्ष्मण रावण को मारकर सीता को वापिस ले आये थे। इसकी निन्दा करते हुए प्रजाजन यह कह रहे थे कि सीता जब रावण के घर में रह चुकी है तब राजा रामचन्द्र

के लिए उसे वापस लाकर अपने घर में रखना योग्य नहीं था। इस निन्दा को सुनकर रामचन्द्र ने उसे त्याग कर वन में भिजवा दिया। उस समय वह गर्भवती थी। उक्त वन में जब पुण्डरीकिणीपुर का राजा वज्रजंघ हाथी को पकड़ने के लिए पहुँचा तब उसने वहाँ सीता को देखा। सीता चूँकि जैन धर्म का पालन करने वाली थी, अतएव वज्रजंघ उसे धर्मबहिन समझकर अपने नगर में ले आया। वहाँ पर उसने लव और अंकुश नाम के युगल पुत्रों को उत्पन्न किया। ये दोनों पुत्र जब वृद्धि को प्राप्त हो गये तब वज्रजंघ ने उनका विवाह कर दिया। उन दोनों ने अपने बाहुबल से अनेक राजाओं को जीत लिया था। इससे वे दोनों 'महामण्डेश्वर' के पद से विभूषित हुए। तत्पश्चात् वे नारद से अपने पिता रामचन्द्र और चाचा लक्ष्मण का परिचय पाकर अयोध्या आये। वहाँ उन्होंने पिता और चाचा से युद्ध करके उसमें विजय प्राप्त की। उनके पराक्रम को देखकर रामचन्द्र और लक्ष्मण को बहुत आश्चर्य हुआ। परन्तु जब नारद ने उन्हें यह बतलाया कि ये तुम्हारे ही पुत्र हैं तब वे दोनों लव और अंकुश को नगर के भीतर ले गये। वहाँ वे युवराज होकर सुखपूर्वक रहने लगे।

तत्पश्चात् विभीषण आदि प्रधान पुरूषों के कहने से रामचन्द्र ने सीता को अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करने के लिए अग्निप्रवेश विषयक दिव्य शुद्धि का आदेश दिया। तदनुसार सीता ने अग्निप्रवेश करके अपनी निर्दोषिता प्रगट कर दी। तत्पश्चात् उसने वहीं पर महेन्द्र उद्यान के भीतर स्थित सकलभूषण मुनिराज के समवशरण में पृथ्वीमति आर्यिका के समीप में दीक्षा ले ली। तब राम उसे लौटाने के लिए परिवार के साथ समवशरण में गये। परन्तु सकलभूषण जिन के दर्शनमात्र से उनका वह सीताविषयक मोह दूर हो गया और तब वे जिनदेव की पूजा करके अपने कोठे में बैठ गये।

उस समय विभीषण ने केवली जिन से रामादिकों के पूर्व भवों तथा लव और अंकुश के पुण्यातिशय के कारण को पूछा। तदनुसार केवली ने प्रथमतः लव और अंकुश के पुण्यातिशय का कारण इस प्रकार बतलाया- इसी आर्यखण्ड के भीतर काकन्दी नगरी में राजा रतिवर्धन और रानी सुदर्शना के प्रीतिंकर और हितंकर नाम के दो पुत्र थे। उक्त

राजा के पुरोहित का नाम सर्वगुप्त और उसकी पत्नी का नाम विजयावली था। एक समय राजा ने उस पुरोहित को पकड़वा कर बन्धन में डाल दिया। तब राजा से प्रार्थना करने के लिए पुरोहित की पत्नी विजयावली उसके पास आयी। परन्तु वह राजा की सुन्दरता को देखकर मुग्ध होती हुई उससे बोली कि मुझे स्वीकार करो। यह सुनकर राजा ने कहा कि तुम मेरी बहिन हो, तुम्हें मैं कैसे स्वीकार करूँ? इस पर वह मन में क्रोधित होकर वापस चली गई। कुछ दिनों के पश्चात् राजा ने सर्वगुप्त को छोड़कर उसके लिये पहिले का पद दे दिया। तब विजयावली ने पति से कहा कि राजा उस समय मेरा शील भंग करने को उद्यत हो गया था। यह सुनकर पुरोहित ने विचार किया कि राजा ने प्रथम तो मुझे बन्धन में डाला और फिर पत्नी के शील को भंग करना चाहा, इस प्रकार इसने दो अपराध किये हैं। यह सोचकर कर उसने सबको अपनी ओर मिलाकर उनकी सहायता से रात में राजभवन को घेर लिया। तब राजा और उसके दोनों पुत्र ये तीनों बीच में अन्तःपुर को करके तलवार के बल से बाहर निकल गये। तब उनका काशिपुर के राजा काशिपुर ने स्वागत किया। तत्पश्चात् कुछ काल के बीत जाने पर राजा काशिपुर के द्वारा भेजे गये सैन्य के साथ अपने नगर में आकर रतिवर्धन ने युद्ध में उस सर्वगुप्त पुरोहित को बाँध लिया और अपने राज्य को वापस प्राप्त कर लिया। फिर वह कुछ समय तक राज्य करके दोनों पुत्रों के साथ दीक्षित हो गया। उनमें से दोनों पुत्र दुर्धर तप करके उपरिम ग्रैवेयक में गये। वहाँ से च्युत होकर वे दोनों शाल्मलीपुर में ब्राह्मण रामदेव के वसुदेव और सुदेव नाम के पुत्र हुए। तत्पश्चात् मृत्यु को प्राप्त होकर वे पात्रदान के प्रभाव से भोगभूमि को प्राप्त हुए। वहाँ से फिर ईशान स्वर्ग में गये और फिर उससे च्युत होकर लव एवं अंकुश हुए। इस प्रकार एक बार सत्पात्र दान के प्रभाव से वे वसुदेव और सुदेव ब्राह्मण जब इस प्रकार के चरमशरीरी हुए हैं तब भला सुशील सम्यग्दृष्टि जीव क्या उक्त सत्पात्रदान के प्रभाव से वैसा नहीं होगा? अवश्य होगा।।24।।

## 25. धारण राजा (दशरथ)--कथा

*आसीद्यो धारणाख्य क्षितिभृदनुपमश्चन्द्राख्यनगरे*
*दत्त्वा दानं मुनिभ्यस्तदमलफलतो देवादिकुरुष।*
*भुक्त्वानूनं च सौख्यं नृ-सुरगतिभवं जातो दशरथ*
*स्तस्माद्दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये॥25॥*

चन्द्र नाम के नगर में जो धारण नाम का अनुपम राजा था वह मुनियों के लिए दान देकर उससे उत्पन्न हुए निर्मल पुण्य के प्रभाव से देवकुरु में उत्पन्न हुआ और तत्पश्चात् मनुष्यगति और देवगति के महान् सुख को भोगकर दशरथ राजा हुआ है। इसलिए निर्मल गुणों के समूह से युक्त भव्य जीवों को निरन्तर मुनिराज के लिये दान देना चाहिये।।25।।

**25. इसकी कथा–** इस प्रकार है- यहीं पर अयोध्या नगरी में दशरथ नाम का राजा राज्य करता था। एक समय उसने महेन्द्र उद्यान में आये हुए सर्वभूतहितशरण्य मुनिराज की पूजा की और तत्पश्चात् नमस्कारपूर्वक बैठते हुए उसने उनसे अपने पूर्वभवों को पूछा। मुनिराज बोले- इसी आर्यखण्ड में कुरुजांगल देश के अन्तर्गत हस्तिनापुर में उपास्ति नाम का राजा राज्य करता था। वह मुनिदान का निषेध करने के कारण तिर्यंचगति में गया और वहाँ असंख्यात भवों में घूमा। तत्पश्चात् वहाँ से निकलकर वह चन्द्रपुर के राजा चन्द्र और रानी धारिणी के धारण नाम का पुत्र हुआ। फिर वह मुनि के लिये दान देने से धातकी खण्ड द्वीप के भीतर पूर्व मेरु सम्बन्धी देवकुरु (उत्तम भोगभूमि) में उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् वहाँ से वह स्वर्ग में गया और फिर वहाँ से भी च्युत होकर जम्बूद्वीप के भीतर पूर्वविदेह के अन्तर्गत पुष्कलावती देश में स्थित पुण्डरीकिणी पुर के राजा अभयघोष और वसुन्धरा के नन्दिवर्धन नाम का पुत्र हुआ। इस पर्याय में उसने दीक्षा लेकर तपश्चरण किया। और उसके प्रभाव से ब्रह्म स्वर्ग में जाकर देव हुआ। तत्पश्चात् वहाँ से च्युत होकर वह जम्बूद्वीप के अपरविदेह में स्थित विजयार्ध पर्वत के ऊपर शशिपुर के राजा रत्नमालि के सूर्य (सूर्यज) नाम का पुत्र हुआ।

एक समय रत्नमालि ने सिंहपुर के राजा वज्रलोचन के ऊपर चढ़ाई की। किन्तु इस बीच में उसे एक देव ने ऐसा करने से रोक दिया। इसका कारण पूछने पर वह देव बोला- इस विजयार्ध पर्वत के ऊपर स्थित गान्धरपुर के राजा श्रीभूति के एक सुभूति नाम का पुत्र था। उस राजा के मन्त्री का नाम उभयमन्यु था। राजा श्रीभूति ने कमलगर्भ भट्टारक के समीप में व्रतों को ग्रहण किया था। किन्तु उस मन्त्री के प्रभाव में आकर वह उनका पालन नहीं कर सका और वे यों ही नष्ट हो गये। इस पाप के प्रभाव से वह मन्त्री मरकर हाथी हुआ। उसे राजा ने पट्टवर्धन (मुख्य हाथी) बनाया। उक्त हाथी को कमलगर्भ मुनिराज के दर्शन से जातिस्मरण हो गया। तब उसने व्रतों को ग्रहण कर लिया। वह मरकर राजा सुभूति और रानी योजनगन्धी के अरिन्दम नाम का पुत्र हुआ। उसने उन मुनिराज के समीप में दीक्षा ले ली। इस प्रकार तप के प्रभाव से मरकर शतार स्वर्ग में देव हुआ, जो मैं हूँ। उधर वह श्रीभूति राजा मरकर मन्दरारण्य में मृग हुआ। तत्पश्चात् वह काम्भोज देश में कलिंजम भील हुआ। वह समयानुसार मरकर शर्कराप्रभा पृथ्वी (दूसरा नरक) में नारकी उत्पन्न हुआ। उसे मैंने जाकर प्रबोधित किया। इससे वह प्रबुद्ध होकर उक्त पृथ्वी से निकला और तुम रत्नमालि हुए हो। इस प्रकार उक्त देव से अपने पूर्वभवों का वृत्तान्त सुनकर वह रत्नामालि आनन्द के लिए राज्य देकर सूर्यज पुत्र के साथ रत्नतिलक मुनिराज के समीप में दीक्षित हो गया। वह मरकर तप के प्रभाव से शुक्र कल्प में देव उत्पन्न हुआ। साथ में वह सूर्यज भी उसी कल्प में देव हुआ। इसके पश्चात् सूर्यज का जीव उक्त कल्प से आकर तुम और दूसरा (रत्नमालि) जनक हुआ है। अरिन्दम का जीव, जो शतार स्वर्ग में देव हुआ, वहाँ से आकर जनक का भाई कनक हुआ है। वह अभयघोष तप के प्रभाव से ग्रैवेयक में उत्पन्न हुआ और फिर वहाँ से च्युत होकर हम (सर्वभूतहितशरण्य) हुए हैं। इस प्रकार उन सर्वभूतहितशरण्य मुनिराज के द्वारा प्ररूपित अपने पूर्वभवों को सुनकर राजा दशरथ उन्हें नमस्कार करके अपने नगर में वापिस आ गया और अपराजिता आदि पट्टरानियों, रामादि पुत्रों एवं अन्य बन्धुजनों के साथ महाविभूति से परिपूर्ण राज्य उपभोग करता हुआ स्थित हो गया। इस प्रकार मिथ्यादृष्टि

भी वह धारण राजा सत्पात्रदान के फल से जब ऐसा वैभवशाली हुआ। तब क्या उसके प्रभाव से सम्यग्दृष्टि जीव वैसा न होगा? अवश्य होगा।।125।।

## 26. भामण्डल-कथा

*नानाकल्पांघ्रिपैर्यें समलसुखदैश्छन्ना सुकुरवो*
*जातस्तेषु प्रभूतः सुगुणगणयुतो दानात् सुविमलात्*
*मृत्वा विद्युत्प्रपाताच्छयनतलगतो भामण्डलनृप*
*स्तस्माद्दानंहि देयंविमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये॥26॥*

अनेक उत्तम गुणों से संयुक्त भामण्डल राजा शय्या पर स्थित होते हुए (सुप्त अवस्था में) बिजली के गिरने से मृत्यु को प्राप्त होकर निर्मल दान के प्रभाव से उन कुरूओं (उत्तम भोगभूमि) में उत्पन्न हुआ जो कि अत्यन्त निर्मल सुख देने वाले अनेक कल्पवृक्षों से व्याप्त है। इसलिये निर्मल गुणों के समूह से संयुक्त भव्य जीवों को निरन्तर उत्तम मुनिराज के लिये दान देना चाहिये।।26।।

**26. इसकी कथा-** इस प्रकार है- यहीं पर विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में स्थित रथनूपुर नगर में सीता देवी का भाई व विद्याधरों का चक्रवर्ती प्रभामण्डल राजा राज्य करता हुआ स्थित था। इधर अयोध्या पुरी में धनी (सेठ) कदम्बक और अम्बिका (उसकी पत्नी) के अशोक और तिलक नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। पिता कदम्बक और वे दोनों पुत्र सीता के परित्याग की वार्ता को सुनकर द्युतिभट्टारक के निकट में दीक्षित हो गये। ये तीनों समस्त श्रुत के पारगामी होकर ताम्रचूड़ पुर में स्थित चैत्यालय की वन्दना करने के लिये जा रहे थे। मार्ग में पचास योजन विस्तीर्ण सीतार्णव नामक वन के मध्य में पहुँचने पर वर्षाकाल (चातुर्मास) का समय निकट आ गया। इसलिए उन तीनों मुनियों ने उसी वन के मध्य में वर्षायोग को ग्रहण कर लिया। उस समय प्रभामण्डल इच्छानुसार घूमता हुआ वहाँ से निकला। वह मुनियों के इस उपसर्ग को देखकर वहीं पर निर्मापित ग्रामादिकों में स्थित होता

हुआ उन्हें आहार देने लगा। इससे उसने बहुत पुण्य का संचय किया। तत्पश्चात् उसने बहुत समय तक राज्य किया। एक दिन रात में वह अपनी शय्या के ऊपर सुन्दरमालादेवी के साथ सो रहा था। इसी समय अकस्मात् बिजली गिरी और उससे उसकी मृत्यु हो गई तब वह उपर्युक्त मुनिराज को दिये गये आहारदान के प्रभाव से उत्तम भोगभूमि में उत्पन्न हुआ। इस प्रकार विषयानुरागी वह सम्यक्त्व रहित होकर भी वह प्रभामण्डल मुनिराज को दिये गये आहारदान के फल से जब उत्तम भोगभूमि में उत्पन्न हुआ तब भला सम्यग्दृष्टि जीव उस दान के फल से कौन-सी विभूति को प्राप्त नहीं होगा? वह तो मोक्षसुख को भी प्राप्त कर सकता है।।26।।

## 27. ग्रामकूटपुत्री यक्षदेवी-कथा

*देवी विष्णोः सुसीमा कथमपि भुवने रुद्रस्य तनुजा*
*जाता यक्षादिदेवी वरगुणमुनये भक्तिप्रगुणतः।*
*दत्त्वा दानात् सुभोगान् कुरुषु दिवि भुवि प्रभुज्य विदितां*
*स्तस्माद्दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये॥27॥*

लोक में क्रूर यक्षिल ग्रामकूट की लड़की यक्षदेवी किसी प्रकार उत्तम गुणों से संयुक्त मुनि के लिये अतिशय भक्तिपूर्वक आहारदान देकर उस दान के प्रभाव से कुरुओं (उत्तम भोगभूमि) में, स्वर्ग में पृथ्वी पर उत्तम भोगों को भोगकर कृष्ण की सुसीमा नामक पट्टरानी हुई; यह सबको विदित है। इसीलिये उत्तम गुणों से युक्त भव्य जीवों को उत्तम मुनि के लिये दान देना चाहिए।।27।।

**27. इसकी कथा-** इस प्रकार है- इसी आर्यखण्ड के भीतर सुराष्ट्र देश के अन्तर्गत द्वारावती नगरी में पद्म और कृष्ण नाम के क्रमशः बलदेव और नारायण राजा राज्य करते थे। उनमें कृष्ण के सत्यभामा, रुक्मिणी, जाम्बवती, लक्ष्मण, सुसीमा, गौरी, पद्मावती और गान्धारी नाम की आठ पट्टरानियाँ थीं। वे दोनों राजा ऊर्जयन्त पर्वत के ऊपर विराजमान श्री नेमिजिनेन्द्र देव की वन्दना के लिये गये। वहाँ पर

उनकी पूजा और वन्दना करने के पश्चात् वे दोनों अपने कोठे में बैठकर धर्मश्रवण करने लगे। उस समय अवसर पाकर सुसीमा रानी ने वरदत्त गणधर को नमस्कार करते हुए उनसे अपने पूर्व व भावी भवों को पूछा। गणधर बोले– धातकीखण्ड द्वीप के भीतर पूर्व मेरू सम्बन्धी पूर्वविदेह में मंगलावती नाम का देश है। उसके अन्तर्गत रत्नसंचयपुर में विश्वसेन नाम का राजा राज्य करता था। रानी का नाम अनुन्धरी और मन्त्री का नाम सुमति था। विश्वसेन राजा युद्ध में अयोध्या के राजा पद्मसेन के द्वारा मारा गया। तब मन्त्री सुमति ने अनुन्धरी को सम्बोधित करके उसे व्रत ग्रहण करा दिये। वह आयु के अन्त में मरकर विजयद्वार के ऊपर स्थित विजय यक्ष की ज्वलनवेगा नाम की देवी उत्पन्न हुई। तत्पश्चात् वे अनेक योनियों में परिभ्रमण करके जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह में रम्यावती देश के अन्तर्गत शालिग्राम में ग्रामकूट (ग्रामप्रमुख) यक्षिल और देवसेना दम्पती के यक्षदेवी नाम की पुत्री हुई। एक दिन वह पूजा के उपकरण लेकर यक्ष की पूजा के लिये गई थी। वहाँ उसने धर्मसेन मुनिराज के निकट में धर्मश्रवण करके मुनियों के लिये आहारदान दिया। एक समय वह सखियों के साथ क्रीड़ा करने के लिये विमल पर्वत पर गई। वहाँ असामयिक वर्षा के भय से वह एक गुफा के भीतर प्रवि[illegible], जहाँ उसे सिंह ने खा डाला। इस प्रकार से मरण को प्राप्त होकर वह हरिवर्ष क्षेत्र (मध्यम भोगभूमि) में उत्पन्न हुई। तत्पश्चात् वहाँ से वह ज्योतिर्लोक में गई और फिर वहाँ से च्युत होकर जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह में पुष्कलावती देश के अन्तर्गत वीतशोकपुर के राजा अशोक और रानी श्रीमती के श्रीकान्ता नाम की पुत्री उत्पन्न हुई। उसने कुमारी अवस्था में ही जिनदत्ता आर्यिका के समीप में दीक्षा ग्रहण कर ली। उसके प्रभाव से वह शरीर को छोड़कर माहेन्द्र इन्द्र की वल्लभा हुई। तत्पश्चात् वहाँ से च्युत होकर तुम (सुसीमा) उत्पन्न हुई हो। यहाँ पर तुम तप को स्वीकार करके उसके प्रभाव से कल्पवासी देव होओगी और फिर वहाँ से च्युत होने पर मण्डलेश्वर होकर तपश्चरण के प्रभाव से मुक्ति को भी प्राप्त करोगी। इस प्रकार वरदत्त गणधर के द्वारा निरूपित अपने भवों को सुनकर सुसीमा को बहुत हर्ष हुआ। इस प्रकार विवेक से रहित भी वह कुटुम्बिनी (कृषक-स्त्री) जब दान के फल से इस प्रकार की विभूति

से युक्त हुई है तब भला अन्य विवेकी भव्य क्या उस जैसे फल से वैसी विभूति से संयुक्त न होगा? अवश्य होगा।।27।।

## 28. रुद्रदास पत्नी विनयश्री-कथा

*गान्धारी विषणुजाया सुर-नरभवजं भुक्त्वा वरसुखं*
*दत्तान्ना शुद्धभावाच्चिरविगतभवे याभून्नृपवधूः*
*लोके दानाद्विभाषे किमहमनुपमं सौचयं तनुभृतां।*
*तस्माद्दानं हि देयं त्रिमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये॥28॥*

जिसने कुछ भवों के पूर्व में रुद्रदास राजा की पत्नी होकर शुद्ध भाव से मुनिराज के लिए आहार दिया था वह देव और मनुष्य भव के उत्तम सुख को भोगकर कृष्ण की पत्नी गान्धारी हुई। लोक में प्राणियों को दान के प्रभाव से जो अनुपम सुख प्राप्त होता है उसके विषय में मैं क्या कहूँ? इसलिए निर्मल गुणों के समूह से संयुक्त भव्य जीवों को उत्तम मुनिराज के लिए दान देना चाहिए।।28।।

**28. इसकी कथा इस प्रकार है-** पूर्व कथानक में जिस प्रकार वरदत्त गणधर से सुसीमा ने अपने पूर्व व भावी भवों को पूछा था उसी प्रकार गान्धारी ने भी उनसे अपने पूर्व व भावी भवों के सम्बन्ध में प्रश्न किया। तदनुसार गणधर बोले- यहीं पर अयोध्या नगरी के राजा रुद्रदास के विनयश्री नाम की पत्नी थी। वह उत्तम मुनिदान-पति के साथ श्रीधर मुनिराज के लिए दिये गये आहारदान-के प्रभाव से उत्तरकुरु में उत्पन्न होकर तत्पश्चात् ज्योतिर्लोक में चन्द्र की देवी हुई। फिर वहाँ से च्युत होकर वह वहीं पर विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणि में गगनवल्लभपुर के राजा विद्युद्वेग और रानी विद्युन्मति के विनयश्री नाम की पुत्री उत्पन्न हुई। उसका विवाह नित्यालोकपुर के राजा महेन्द्रविकम के साथ हुआ। महेन्द्रविक्रम ने चारण ऋद्धिधारी मुनिराज से धर्मश्रवण करके हरिवाहन पुत्र को राज्य दिया और स्वयं दीक्षा ले ली। वह विनयश्री तप (सर्वभद्र उपवास) को स्वीकार कर उसके प्रभाव से सौधर्म इन्द्र की देवी हुई और फिर वहाँ से च्युत होकर यहाँ तुम

उत्पन्न हुई हो। सुसीमा के समान तुम भी तीसरे भव में मोक्ष को प्राप्त करोगी। इन उपर्युक्त भवों को सुनकर गान्धारी को भी बहुत हर्ष हुआ। इस प्रकार जब विवेक से रहित बोला स्त्री एक बार मुनिराज को दान देकर फल से ऐसी विभूति को प्राप्त हुई है तब भला दूसरा विवेकी जीव क्या उसके फल से अनुपम विभूति का भोक्ता न होगा? अवश्य होगा।।28।।

## 29. वैश्यपत्नी नन्दा (गौरी)-कथा

*गौरी श्री विष्णुभार्याजनि जनविदिता विख्यातविभवा*
*पूर्वं या वैश्यपुत्री दिविज-नृभवजं सौख्यं ह्यनुपमम्।*
*भुक्त्वा दानस्य सुफलात्तदनु बहुगुणा सुधर्मविमला*
*तस्माद्दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये॥29॥*

जो पहले वैश्य की पुत्री (नन्दा) थी वह दान के उत्तम फल से देवगति और मनुष्यभव के अनुपम सुख को भोगकर तत्पश्चात् निर्मल धर्म को प्राप्त करके बहुत गुणों एवं प्रसिद्ध विभूति से सुशोभित होती हुई श्रीकृष्ण की पत्नी गौरी हुई है, इस बात को सब ही जन जानते हैं। इसलिए निर्मल गुणसमूह से संयुक्त भव्य जीवों को उत्तम मुनिराज के लिए दान देना चाहिए।।29।।

**29. इसकी कथा-** इस प्रकार है- सुसीमा और गान्धारी के समान जब गौरी ने भी उन वरदत्त गणधर से अपने भवों को पूछा तब वे बोले- यहीं पर इभ (इभ्य) पुर में स्थित सेठ धनदेव के यशस्विनी नाम की पत्नी थी। एक दिन उसे आकाश में जाते हुए चारण ऋद्धिधारी मुनिराज को देखकर जातिस्मरण हो गया। तब उसने अपनी सखियों को बतलाया कि धातकीखण्ड द्वीप में स्थित पूर्वमेरु सम्बन्धी अपरविदेह के भीतर अरिष्टपुर में एक आनन्द नाम का सेठ रहता था। उसकी पत्नी का नाम नन्दा था। वह अमितगति और सागरचन्द्र मुनियों को दान देने से देवकुरु में उत्पन्न हुई। वहाँ उत्तम भोगभूमि के सुख को भोगकर तत्पश्चात् ईशान इन्द्र की देवी हुई तत्पश्चात् वहाँ से च्युत होकर यहाँ

मैं उत्पन्न हुई हूँ। यह कहकर उसने (यशस्विनी ने) सुभद्राचार्य के निकट में प्रोषधव्रत को ग्रहण कर लिया। उसके प्रभाव से वह मरण को प्राप्त होकर सौधर्म इन्द्र की वल्लभा हुई। वहाँ से च्युत होकर वह कौशाम्बी पुरी में सेठ समुद्रदत्त और सुमित्रा के धर्ममति नाम की पुत्री हुई। उसने जिनमति आर्यिका के समीप में जिनगुण नामक तप को ग्रहण किया। उसके प्रभाव से वह शुक्र-इन्द्र की वल्लभा हुई फिर वहाँ से च्युत होकर तुम उत्पन्न हुई हो। तुम भी सुसीमा और गान्धारी के समान तीसरे भव में मुक्ति को प्राप्त करोगी। उपर्युक्त भवों के वृत्तान्त को सुनकर गौरी को अपार हर्ष हुआ। इस प्रकार विवेक से रहित भी वह स्त्री जब इस प्रकार की विभूति को प्राप्त हुई है तब दूसरा विवेकी जीव वैसा क्यों न होगा? अवश्य होगा।।29।।

## 30. राजपुत्री विनयश्री-कथा

*दत्त्वा दानं मुनिभ्यो नृसुरगतिभवं भूपालतनुजा*
*सेवित्वा सारसौख्यं तदमलफलतो विष्णोः सुवनिता।*
*जाता पद्मावती सा जिनपदकमले भृङ्गी ह्यमलिना*
*तस्माद्दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये॥30॥*

अपराजित राजा की पुत्री विनयश्री मुनियों के लिये दान देकर उसके निर्मल फल से मनुष्य और देवगति के श्रेष्ठ सुख का अनुभव करती हुई पद्मावती नाम की कृष्ण की पत्नी हुई जो जिन भगवान् के चरण-कमलों में भ्रमरी के समान अनुराग रखती थी। इसलिए निर्मल गुणसमूह से संयुक्त भव्य जीवों को उत्तम मुनिराज के लिये दान देना चाहिए।।30।।

**30. इसकी कथा इस प्रकार है-** इसी प्रकार से पद्मावती ने भी उनसे अपने भव पूछे। तदनुसार वरदत्त गणधर ने उसके भव इस प्रकार बतलाये- यहीं पर अवन्ति देश में स्थित उज्जयिनी पुरी के राजा अपराजित और रानी विजया के एक विनयश्री नाम की पुत्री थी जो हस्तिशीर्षपुर के राजा हरिषेण को दी गई थी। उसने वरदत्त मुनि के लिये आहारदान दिया था। कुछ दिनों के पश्चात् वह रात्रि में पति के साथ

शयनागार में सो रही थी। वहाँ वह कालागरु के धुएँ से पति के साथ मरण को प्राप्त होकर हैमवत क्षेत्र (जघन्य भोगभूमि) में उत्पन्न हुई। फिर वह आयु के अन्त में मरण को प्राप्त होकर चन्द्र की देवी हुई। वहाँ से च्युत होकर मगध देश के अन्तर्गत शाल्मलीखण्ड ग्राम में गाँव के मुखिया देविल ओर जयदेवी के पद्मा नाम की पुत्री उत्पन्न हुई। उसने वरधर्म मुनिराज के समीप में अनजान वृक्ष के फलों के न खाने का नियम लिया था। एक समय चण्डदा (बाण) भील ने उस गाँव के मनुष्यों को पकड़वा कर अपनी भील वस्ती में बुलाया। तब उन सबके साथ पद्मा भी पहुँची। उस भील को राजगृह के राजा सिंहरथ ने मार डाला। तब उक्त भील के द्वारा बन्धनबद्ध किये गये वे सब भागकर एक वन के भीतर प्रविष्ट हुए और वहाँ किंपाल फलों के खाने से मर गये। परन्तु पद्मा अज्ञात-फल-अभक्षण व्रत के प्रभाव से जीवित रहकर अपने गाँव में वापस आ गई। वहाँ वह बहुत काल तक रही, तत्पश्चात् मृत्यु को प्राप्त होकर हैमवत क्षेत्र (जघन्य भोगभूमि) में उत्पन्न हुई। फिर वहाँ से निकलकर स्वयंप्रभ पर्वत के ऊपर स्थित स्वयंप्रभदेव की देवी हुई। तत्पश्चात् वहाँ से भी च्युत होकर भरतक्षेत्र के भीतर जयन्तपुर के राजा श्रीधर और रानी श्रीमति के विमलश्री नाम की पुत्री हुई जो भद्रिलपुर के राजा मेघवाहन के लिए दे दी गई। उसे मेघघोष नाम का पुत्र प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् वह पद्मावती आर्यिका के निकट में दीक्षित होकर तप के प्रभाव से सहस्रार-इन्द्र की देवी हुई और फिर वहाँ से च्युत होकर तुम हुई हो। सुसीमा आदि के समान तुम भी तीसरे भव को सिद्धि को प्राप्त करोगी। इस प्रकार अपने भवों को सुनकर वह पद्मावती भी हर्ष को प्राप्त हुई। जब विवेक से रहित मिथ्यादृष्टि भी स्त्री सत्पात्रदान से वैसी विभूति को प्राप्त हुई है तब क्या अन्य विवेकी भव्य जीव उसके प्रभाव से वैसी विभूति को नहीं प्राप्त होगा? अवश्य होगा।।30।।

## 31. अकृतपुण्य (धन्यकुमार)-कथा

*यद्धस्ते शातकुम्भं पतितमपि मली संभूतममलं*
*संजातः सोऽपि दानाद् दिवि मणिभवने देवीसुरमणः।*
*तस्मादासीत् स धन्यः सुगुणनिधिपतिर्वैश्यो विमलधी*
*स्तस्माद्दानं हि देयं विमलंगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये॥31॥*

जिसके हाथ में गिरा हुआ निर्मल सोना भी मलिन हो गया वह (अकृतपुण्य) भी मुनिराज दान के प्रभाव से स्वर्ग के भीतर मणिमय भवन में उत्पन्न होकर देवियों के मध्य में रमने वाला देव हुआ और फिर वहाँ से च्युत होकर उत्तम गुणों से संयुक्त निर्मल बुद्धि का धारक धन्यकुमार वैश्य हुआ। इसलिये निर्मल गुणों के समूह से संयुक्त भव्य जीवों को उत्तम मुनिराज के लिये दान देना चाहिए।।31।।

**31. इसकी कथा इस प्रकार है-** इसी आर्य खण्ड के भीतर अवन्ती देश में उज्जयिनी नाम की नगरी है। वहाँ अवनिपाल नाम का राजा राज्य करता था। वहीं पर धनपाल नाम का एक धनी वैश्य था। उसकी पत्नी का नाम प्रभावती था। उसके देवदत्त आदि सात पुत्र थे। उनमें कुछ तो शिक्षा प्राप्त कर रहे थे और कुछ व्यवसाय करते थे। एक समय प्रभावती चतुर्थस्नान करके पति के साथ सोई हुई थी। उस समय उसने रात्रि के पिछले प्रहर में स्वप्न में उन्नत श्वेत बैल, कल्पवृक्ष, चन्द्र आदिकों को अपने घर में प्रवेश करते हुए देखा। प्रभात हो जाने पर उसने उक्त स्वप्नों का वृत्तान्त पति से कहा। तब उसने बतलाया कि तुम्हारे वैश्य कुल में प्रधान, दानी एवं अपनी कीर्ति से तीनों लोकों को धवलित करने वाला पुत्र उत्पन्न होगा। यह सुनकर प्रभावती को बहुत हर्ष हुआ। तत्पश्चात् उसके गर्भ के चिन्ह दिखने लगे। इसके बाद उसके नौ महीने के अन्त में पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके नाल के गाड़ने के लिये जहाँ भूमि खोदी गई थी वहाँ धन से परिपूर्ण एक कड़ाही निकली। इसी प्रकार उसको नहलाने के लिये खोदे गये स्थान में भी धन प्राप्त हुआ। इसका समाचार धनपाल ने अवनिपाल राजा को दिया। इस पर राजा ने कहा कि यह तुम्हारे पुत्र के पुण्य से प्राप्त हुआ है, इसलिए उसका

स्वामी तुम्हारा वह पुत्र ही है। इससे सन्तुष्ट होकर सेठ घर वापस आया। फिर उसने अतिशय उत्साह के साथ पुत्र का जन्मोत्सव मनाया। तत्पश्चात् दसवें दिन उसने वहाँ समस्त जिनालयों में अभिषेक आदि कराकर दीन और अनाथ जनों को सुवर्ण आदि का दान दिया। उसके उत्पन्न होने पर चूँकि सजातीय जन धन्य हुए थे अतएव उसका नाम धन्यकुमार रखा गया। वह धन्यकुमार अपनी बाल-लीला से बन्धुजनों को सन्तुष्ट करने लगा। तत्पश्चात् वह जैन उपाध्याय के समीप में पढ़ करके समस्त कलाओं में कुशल हो गया। उसके दान और भोग आदि को देखकर देवदत्त आदि कहने लगे कि हम लोग तो कमाते हैं और यह धन्यकुमार उस द्रव्य को यों ही उड़ाता-खाता है। यह सुनकर प्रभावती ने सेठ से कहा कि धन्यकुमार को किसी व्यापार कार्य में लगाओ। तब सेठ ने शुभ मुहूर्त में उसके कपड़े में सौ मुद्राएँ रखकर उसे दुकान पर बैठाते हुए कहा कि इस धन को देकर उसके बदले में किसी दूसरी वस्तु को लेना, फिर उसको भी देकर अन्य वस्तु को लेना, तत्पश्चात् उसको भी देकर और किसी वस्तु को लेना; इस प्रकार का व्यवहार तब तक करना जब तक कि भोजन का समय न हो जावे। इस प्रकार से व्यवहार करके अन्त में जो वस्तु प्राप्त हो उसे भृत्य के हाथ में देकर भोजन के लिए आ जाना। इस प्रकार कहकर सेठ घर चला गया। इधर धन्यकुमार अंगरक्षक से संयुक्त होकर दुकान पर बैठा था कि उस समय कोई चार बैलों से संयुक्त लकड़ियों से भरी हुई गाड़ी को बेचने के लिये लाया। तब धन्यकुमार ने उन सौ मुद्राओं को देकर उस गाड़ी को खरीद लिया। फिर उसको देकर उसने बदले में एक मेंढ़ा को ले लिया। तत्पश्चात् उसको भी देकर उसने खाट के चार पायों को खरीद लिया। फिर वह घर गया। उसके घर वापस अपने पर माता ने यह विचार करके कि 'पुत्र पहले दिन व्यवसाय करके आया है' उसकी बहुत प्रभावना की। उसको उत्सव मनाते हुए देखकर ज्येष्ठ पुत्रों ने कहा कि यह पहले दिन ही सौ मुद्राओं को नष्ट करके आया है फिर भी माँ इसकी इस प्रकार से प्रभावना कर रही है। और इधर हम बहुत-सा धन कमाकर लाते हैं फिर भी वह हमारी ओर देखती भी नहीं है; यह कैसी विचित्र बात है। उनके इस उलाहने को सुनकर माता ने उसे मन

में रखते हुए धन्यकुमार आदि को भोजन कराया और तत्पश्चात् स्वयं भी भोजन किया। बाद में उसने एक लकड़ी के पात्र में पानी भरकर उन खाट के पायों को धोना प्रारम्भ किया। इस क्रिया से वे निर्मल हो गये। धोने के समय में मल के दूर हो जाने पर उनसे रत्न गिरे और साथ ही एक भोजपत्र भी निकला। प्रभावती ने इस सबको उन पुत्रों के लिये दिखलाया। इससे उनका अभिमान नष्ट हो गया। वे पाये किस की खाट के थे और वह पत्र किसने वह कैसे लिखा था, इसका वृत्तान्त इस प्रकार है-

पहिले उस नगर में एक अतिशय पुण्यवान् वसुमित्र नाम का सेठ रहता था। उसके पुण्योदय से उसके घर में नौ निधियाँ उत्पन्न हुई थीं। एक दिन उसके उद्यान में एक अवधिज्ञानी मुनिराज आये थे। तब सेठ वसुमित्र ने उनसे पूछा था कि हमारी इन नौ निधियों का स्वामी आगे कौन होगा। इसके उत्तर में उन्होंने कहा था कि उनका स्वामी धनपाल सेठ का पुत्र धन्यकुमार होगा। इस उत्तर को सुनकर वसुमित्र सेठ ने घर आकर यह पत्र लिखा था- श्रीमान् महामण्डलेश्वर अवनिपाल राजा के राज्य में वैश्यकुल में श्रेष्ठ जो कोई धन्यकुमार नाम का उत्तम पुरूष होगा वह मेरे घर के भीतर अमुक-अमुक स्थान में स्थित नौ निधियों को लेकर सुख से स्थित हो। महती लक्ष्मी से युक्त उसका कल्याण हो। तत्पश्चात् वह रत्नों के साथ मरण को प्राप्त होकर स्वर्ग में गया। उसके मरने के पश्चात् उस घर के सब ही मनुष्य मरी रोग (प्लेग) से मर गये उनमें जो सबके पीछे मरा उसे अग्निसंस्कार के लिये चाण्डाल उसी खाट पर श्मशान ले गये। उसके पायों को चाण्डाल के हाथ से धन्यकुमार ने लिया। तत्पश्चात् वह उस पत्र को पढ़कर राजा के पास गया। वहाँ उसने आग्रहपूर्वक राजा से वसुमित्र सेठ के घर को माँगा। तदनुसार वह उसकी स्वीकृति पाकर सेठ वसुमित्र के उस घर गया और उन निधियों को प्राप्त करके दानादि सत्कार्यों में प्रवृत्त हुआ। इससे उसने राजमान्य होकर अपनी कीर्ति से तीनों लोकों को व्याप्त कर दिया। इस प्रकार वह सुख से कालयापन करने लगा।

धन्यकुमार की लोकातिशायिनी सुन्दरता आदि को देखकर कोई धनिक उसके पास आया व उससे बोला कि मैं अपनी पुत्री धन्यकुमार

के लिए दूँगा। इस पर धनपाल ने कहा कि तुम उसे मेरे बड़े पुत्र के लिए दे दो। यह सुनकर आगन्तुक सेठ ने कहा कि नहीं, जिस किसी भी समय में सम्भव हुआ मैं अपनी उस पुत्री को धन्यकुमार के लिए ही दूँगा, अन्य किसी भी कुमार के लिए मैं उसे नहीं देना चाहता हूँ। उसके इस निश्चय को देखकर धन्यकुमार के वे सब बड़े भाई उससे द्वेष करने लगे। परन्तु यह धन्यकुमार को ज्ञात नहीं हुआ। एक समय वे सब उसे उद्यान के भीतर स्थित बावड़ी में क्रीड़ा करने के लिए ले गये। धन्यकुमार वहाँ वावड़ी के किनारे बैठकर उनकी क्रीड़ा को देखने लगा। इसी बीच किसी ने आकर उसे बावड़ी में ढकेल दिया। तब वह 'णमो अरिहंताणं' कहता हुआ उस वावड़ी में जा गिरा। तत्पश्चात् उन सबने उसके ऊपर पत्थर आदि फेंके। अन्त में वे उसे मर गया जानकर सन्तोष के साथ घर चले गये। इधर पुण्य से देवताओं ने उसे जल के निकलने की नाली द्वारा उस बावड़ी से बाहर निकाल दिया। तब उसने नगर के बाहर जाकर अपने उन भाइयों की असहनशीलता पर विचार किया। अन्त में वह अब यहाँ अपना रहना उचित न समझकर देशान्तर को चला गया। मार्ग में जाते हुए उसने एक खेत पर हल से भूमि को जोतते हुए किसान को देखा। उसे देखकर धन्यकुमार ने विचार किया कि मैंने सब विज्ञानों का अभ्यास किया है, परन्तु यह तो मुझे अपूर्व ही दिखता है। यही विचार करता हुआ वह उस किसान के पास गया और उसकी भूमि जोतने की क्रिया को देखने लगा। उसके सुन्दर रूप को देखकर किसान को बहुत आश्चर्य हुआ। वह धन्यकुमार से बोला कि हे महाशय! मैं शुद्ध किसान हूँ। मैं घर से दही और भात लाया हूँ, खाओगे क्या? यह सुनकर कुमार बोला कि खा लूँगा। तब वह किसान कुमार को हल के पास बैठाकर पत्तल के लिए पत्तों को लेने चला गया। उसके चले जाने पर कुमार ने हल के मुठिये को पकड़कर दोनों बैलों को हाँक दिया। उस समय हल के अग्रभाग (फाल) से भूमि के कुछ विदीर्ण होने पर सोने से भरा हुआ ताँबे का घड़ा निकला। उसे देखकर कुमार ने विचार किया कि मेरे इस नवीन विज्ञान के अभ्यास से वश हो, यदि यह किसान इसे देख लेता है तो मेरा अनर्थ कर डालेगा। ऐसा सोचता हुआ वह उसे मिट्टी से उसी प्रकार ढककर चुपचाप

बैठ गया। इतने में किसान पत्तों को लेकर वापस आ गया। तब उसने गड्ढे में रखे हुए पानी के घड़े को तथा दही-भात को उठाया और फिर उसके पाँवों व पत्तों को धोकर उन पत्तों में उसे परोस दिया। इस प्रकार कुमार ने भोजन करके उससे राजगृह के मार्ग को पूछा और उसी मार्ग से आगे चल पड़ा। उधर किसान ने जब फिर जोतना शुरू किया तब उसे उस घड़े को देखकर बहुत आश्चर्य हुआ। तब उसने विचार किया कि यह द्रव्य तो उस कुमार का है, उसका ग्रहण करना मेरे लिए योग्य नहीं है। बस यही सोचकर वह किसान उस सुवर्ण से भरे हुए घड़े को देने के लिए कुमार के पीछे लग गया। धन्यकुमार ने जब उसको अपने पीछे आते हुए देखा तब वह एक वृक्ष के नीचे बैठ गया। किसान ने आकर नमस्कार करते हुए उससे कहा कि हे नाथ! आप अपने धन को छोड़कर क्यों चले आये हैं? यह सुनकर वैश्य (धन्यकुमार) बोला कि क्या मैं धन के साथ आया था? नहीं, मैं तो यों ही आया था। तुमने मुझे भोजन दिया। इससे वह द्रव्य मेरा कैसे हो गया? इस पर किसान ने कहा कि मेरे दादा, पिता और मैं स्वयं इस खेत को जोतते आ रहे है; किन्तु हमें यहाँ कभी भी द्रव्य नहीं प्राप्त हुआ। किन्तु आज तुम्हारे आने पर यह द्रव्य वहाँ निकला है, इसलिए यह तुम्हारा ही है। यह सुनकर कुमार ने कहा कि अच्छा उसे मेरा ही धन समझो 'परन्तु मैं उसे तुम्हारे लिये देता हूँ, तुम उसका प्रयत्नपूर्वक उपभोग करो। इस पर किसान ने 'यह आपकी कृपा है' कहकर उसे स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् किसान बोला कि हे स्वामिन्! मैं अमुक गाँव में रहने वाला अमुक नाम का किसान हूँ, जब मेरे द्वारा आपका कुछ प्रयोजन सिद्ध होता हो तब मुझे आज्ञा दीजिए। इस प्रकार से प्रार्थना करके वह किसान वापस चला गया।

तत्पश्चात् कुमार ने आगे जाते हुए एक स्थान में किसी अवधिज्ञानी मुनिराज को देखकर उन्हें नमस्कार किया। फिर उसने धर्मश्रवण करने के बाद उनसे पूछा कि मेरे भाई मुझसे किस कारण से द्वेष रखते हैं और माता क्यों स्नेह करती है? इसके अतिरिक्त मैं जो इस प्रकार विभूति को पा रहा हूँ, वह किस पुण्य के फल से पा रहा हूँ? इस पर मुनि श्री बोले- यहाँ पर ही मगध देश के भीतर एक

भोगवती नाम का गाँव है। उसमें एक कामवृष्टि नाम का ग्रामपति (गाँव का स्वामी-जमींदार) रहता था। उसकी पत्नी का नाम मृष्टदाना था। कामवृष्टि का सुकृतपुण्य नाम का सेवक था। मृष्टदाना के गर्भ रहने पर कामवृष्टि की मृत्यु हो गई। जैसे जैसे उसका गर्भ बढ़ता गया वैसे वैसे उसके जो सहायक कुटुम्बी जन थे वे मरते गये। प्रसूति के पश्चात् माता की माता (नानी) भी मर गई। तब गाँव का स्वामी सुकृतपुण्य हो गया था। उस समय मृष्टदाना अपने नवजात बालक का नाम अकृतपुण्य रखकर दूसरों के घर पीसने आदि का कार्य करती हुई उसका पालन करने लगी। इस अवसर पर धन्यकुमार ने पुनः उनसे पूछा कि वह अकृतपुण्य बालक किस पाप कर्म के फल से वैसा हुआ था? इसके उत्तर में मुनिराज इस प्रकार बोले- यहीं पर भूतिलक नाम के नगर में जैन धर्म का परिपालक अतिशय संपत्तिशाली एक धनपति नाम का वैश्य रहता था। उसने एक अतिशय विशेषता से परिपूर्ण एक जिनभवन बनवाकर उसमें बहुत-से मणिमय एवं सुवर्णमय छत्र-चामर आदि उपकरणों को करवाया। उसमें जो रत्नमय सुन्दर प्रतिमाएँ विराजमान की गई थीं उनकी ख्याति को सुनकर कोई दुर्व्यसनी मनुष्य कपट से ब्रह्मचारी बन गया। उसके अतिशय कायक्लेश आदि को देखकर देश के भीतर जनता को बहुत क्षोभ (आश्चर्य) हुआ। वह क्रम से परिभ्रमण करता हुआ भूतिलक नगर में आया। तब धनपति सेठ आदर पूर्वक उसे अपने जिनालय में ले गया। तत्पश्चात् उक्त सेठ आग्रह के साथ उसे जिनालय के उपकरणों का रक्षक बनाकर दूसरे द्वीप को चला गया। इस बीच में उसने जिनालय के सब उपकरणों को खा डाला। तत्पश्चात् दुर्व्यसन और जिनप्रतिमाओं की चोरी से उपार्जित पाप के प्रभाव से उसका समस्त शरीर कोढ़ से गलने लगा। इससे वह मरणासन्न हो गया। इसी अवसर पर धनपति सेठ भी द्वीपान्तर से वापस आ गया। उसे देखकर वह मरणोन्मुख कपटी ब्रह्मचारी उसके सम्बन्ध में विचार करने लगा कि यह क्यों यहाँ आ गया, वहीं पर क्यों न मर गया। इस प्रकार रौद्र ध्यान के साथ मरकर वह सातवें नरक में गया। वहाँ से निकलकर वह स्वयम्भुरमण समुद्र के भीतर महामत्स्य उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् वह फिर से उसी सातवें नरक में जा पहुँचा। इस प्रकार वह

छ्यासठ सागरोपम काल तक नरक के दुःख को भोगकर तत्पश्चात् त्रस व स्थावर आदि पर्यायों में परिभ्रमण करता हुआ अन्त में अकृतपुण्य हुआ।

एक समय वह अकृतपुण्य सुकृतपुण्य के चनों के खेत पर जाकर उससे बोला कि हे सुकृतपुण्य! मैं तुम्हारी चनों की फसल को काट देता हूँ, तुम मुझे क्या दोगे? उस समय उसको देखकर सुकृतपुण्य ने विचार किया कि जिसके पिता के प्रसाद से मैं इस प्रकार गाँव का प्रमुख हुआ हूँ वही भाग्यवश इस समय मेरी आज्ञा का कारण बन गया है- मुझसे अपेक्षा कर रहा है। इस प्रकार से दुःखी होकर सुकृतपुण्य ने अपनी थैली से दीनारों को निकाल कर उसके लिये दिया। परन्तु वे उसके हाथ में पहुँचते ही अंगार बन गईं। तब अकृतपुण्य उससे बोला कि तुम सबके लिये तो चने देते हो और मेरे लिये अंगारे। इस पर सुकृतपुण्य बोला कि मेरे अंगारों को मुझे वापस दे दो और जितने तुमसे ले जाते बने उतने चने तुम ले जाओ। सुकृतपुण्य के इस प्रकार कहने पर वह अपने वस्त्र में पोटली बाँधकर चनों को घर पर ले गया। परन्तु वे छेदयुक्त वस्त्र से गिरकर आधे ही शेष रह गये थे। उनको देखकर माता ने अकृतपुण्य से पूछा कि तू इन चनों को कहाँ से लाया है? इस पर अकृतपुण्य ने उसे बतला दिया कि मैं इन चनों को सुकृतपुण्य के पास से लाया हूँ। यह सुनकर उसकी माता ने कहा कि जो सुकृतपुण्य किसी समय मेरा सेवक था उसी की दासता आज मेरे लिये करनी पड़ी। ऐसा विचार करते हुए उस समय उसे बहुत दुख हुआ। तत्पश्चात् वह उन्हीं चनों को पाथेय (मार्ग में खाने के योग्य नाश्ता) बनाकर पुत्र के साथ उस नगर से निकल पड़ी और अवन्ती देश के अन्तर्गत सीसवाक गाँव में जा पहुँची। उस गाँव के स्वामी का नाम बलभद्र था। वहाँ जाकर वे दोनों उसके घर पहुँचे व वहीं पर बैठ गये। उसको देखकर बलभद्र ने पूछा कि हे माता! तुम कहाँ से आ रही हो? परन्तु जब वह किसी प्रकार से भी उत्तर न दे सकी तब उसने उससे बहुत आग्रह के साथ पूछा। इस पर उसने अपनी सच्ची परिस्थिति उसे बतला दी। उसे सुनकर वह बोला कि तुम मेरे घर पर भोजन बनाने का काम करो और यह तुम्हारा पुत्र मेरे बछड़ों का पालन करे। ऐसा करने पर मैं तुम दोनों के

लिये भोजन और रहने के लिये स्थान आदि दूँगा। इसे उसने स्वीकार कर लिया। तब बलभद्र ने अपने घर के पास एक झोपड़ी बनवाकर उसको रहने के लिए दे दी। इस प्रकार वे दोनों उसकी सेवा करके उसके द्वारा दिये गये भोजन आदि का उपयोग करते हुए वहाँ रहने लगे। उस समय बलभद्र के सात पुत्र थे। उनको प्रतिदिन खीर खाते हुए देखकर अकृतपुण्य अपनी माता से खीर माँगा करता था। बलभद्र के पुत्र उसे मारा करते थे। जब बलभद्र उन्हें मारते देखता तब वह उन्हें उसके मारने से रोकता था। खीर खाने की इच्छा पूर्ण न होने {व उनके द्वारा मार खाने से} उसका मुख आदि सूज गया था। उसकी ऐसी अवस्था देखकर बलभद्र ने पूछा कि हे अकृतपुण्य! तेरा मुख आदि क्यों सूज रहा है? इस पर उसने उत्तर दिया कि खीर न मिलने पर मैं खिन्न रहा करता हूँ। तब उसने कुछ दूध, चावल और घी आदि को देकर मृष्टदाना से कहा कि हे माता! तुम आज घर पर खीर बनाकर अकृतपुण्य को खाने के लिये दो। तब 'ठीक है, मैं ऐसा ही करूँगी' कहकर वह उन चावल आदि को लेकर घर चली गई। वहाँ उसने अकृतपुण्य से कहा कि हे पुत्र! आज में तेरे लिये खीर खाने को दूँगी, तू जंगल से जल्दी वापस आ आना। तब वह 'अच्छा, मैं आज जल्दी आ जाऊँगा' यह कहता हुआ बछड़ों को लेकर जंगल में चला गया। इधर मृष्टदाना ने खीर आदि को बनाकर तैयार कर लिया। दोपहर को अकृतपुण्य घर पर वापस आ गया। तब मृष्टदाना उसे घर की देख-भाल रखने के लिये कहकर पानी लेने के लिये चली गई। जाते-जाते वह अकृतपुण्य से यह भी कहती गई कि इस बीच में जो कोई भिक्षुक (साधु) आवे उसे जाने न देना, उसके लिये भोजन कराकर तत्पश्चात् हम दोनों खावेगे।

इतने में ही मासोपवास के समाप्त होने पर पारणा के दिन सुव्रत नाम के मुनिराज उस बलभद्र के घर पर चर्या के लिये आये। उन्हें देखकर अकृतपुण्य ने विचार किया कि यह तो भिक्षुक ही नहीं, महाभिक्षुक (अतिशय दरिद्र) है, क्योंकि, इसके पास तो वस्त्र आदि भी नहीं है। इसलिये मैं इन्हें नहीं जाने देता हूँ। इस विचार के साथ वह उनके सामने गया और बोला कि बाबा, मेरी माँ ने खीर पकायी हैं वह तुम्हारे लिए भी खाने को देगी। इसलिये जब तक मेरी माता नहीं आ

जाती है तब तक तुम यहीं पर ठहरो। परन्तु फिर भी जब मुनिराज 'मेरे लिए ठहरने का मार्ग नहीं है' यह कहकर आगे जाने लगे तब उसने उनके दोनों पाँव पकड़ लिये। वह बोला कि बाबा! अतिशय अपूर्व खीर को खाकर जाओ न, इसमें तुम्हारा क्या नष्ट होता है। यह कहकर वह उन्हें पकड़े ही रहा। इतने में मृष्टदाना भी आ गई। वह घड़े को उतारकर उत्तरीय वस्त्र को कन्धे के ऊपर डालती हुई बोली– हे परमेश्वर! ठहरिये, इस प्रकार उसने उनका विधिपूर्वक पड़िगाहन किया और फिर बलभद्र के घर से उष्ण जल एवं पात्र को लाकर अतिशय निर्मल परिणामों के साथ उन्हें आहारदान दिया। उनके आहार के समय अकृतपुण्य को भी बहुत हर्ष हुआ। यह देव मेरे घर पर भोजन कर रहा है, इसलिए मैं धन्य हूँ; यह कहकर वह उनके आहार को देखता हुआ स्थित रहा। वे मुनिराज अक्षीणमहानस ऋद्धि के धारक थे, इसलिए यदि उस रसोई का उपभोग चक्रवर्ती का कटक भी करता तो भी वह उस दिन समाप्त नहीं हो सकती थी। मुनिराज के आहार के पश्चात् मृष्टदाना ने अपने पुत्र को भोजन कराया और तत्पश्चात् कुटुम्ब के साथ बलभद्र को भी भोजन कराया। फिर भी जब वह रसोई समाप्त नहीं हुई तब उसने पात्रों की पूर्ति करके समस्त गाँव की जनता के लिये भोजन दिया।

दूसरे दिन वह बछड़ों का रक्षक (अकृतपुण्य) बची हुई खीर को खाकर जंगल में गया। वहाँ जाकर वह एक वृक्ष के नीचे सो गया। इस बीच में बछड़े स्वयं घर आ गये। उनको देखकर साथ में पुत्र के न आने से मृष्टदाना रोने लगी। तब उसके आग्रह से बलभद्र दो तीन सेवकों के साथ उसे खोजने के लिये गया। इधर अकृतपुण्य घर की ओर ही आ रहा था। वह बलभद्र को आता हुआ देखकर भय के कारण पहाड़ के ऊपर चढ़ गया। उधर अकृतपुण्य के न मिलने पर वह बलभद्र घर पर वापस आ गया। वह अकृतपुण्य पहाड़ के ऊपर जाकर एक गुफा के द्वार पर स्थित हो गया। उस गुफा के भीतर ही सुव्रत मुनिराज वन्दना के लिए आये हुए श्रावकों को व्रतों के स्वरूप और उनके फल का निरूपण कर रहे थे। अकृतपुण्य उसको सुनते हुए बाहर ही स्थित रहा। तब उसकी व्रत के विषय में गाढ़ श्रद्धा हो गई। श्रावकजन धर्मश्रवण करने के पश्चात् मुनिराज को नमस्कार करके 'णमो अरहंताणं'

कहते हुए उस गुफा से निकल गये। उधर वह अकृतपुण्य भी 'णमो अरहंताणं' कहता हुआ उनके पीछे दूर दूर से जा रहा था। इसी बीच में उसके ऊपर एक व्याघ्र ने आक्रमण कर दिया। तब वह 'णमो अरहंताण' कहता हुआ मरा व सौधर्म स्वर्ग में महर्द्धिक देव उत्पन्न हुआ। वहाँ वह भवप्रत्यय अवधिज्ञान के द्वारा अपने दान आदि फल को जानकर कर्त्तव्य कार्य को करता हुआ सुखपूर्वक स्थित हुआ। इधर सबेरा हो जाने पर उसकी माता (मृष्टदाना) बलभद्र के साथ उस पहाड़ के ऊपर गई। वहाँ पर उसके निर्जीव शरीर को देखकर उसे बहुत शोक हुआ। उस समय उसे उसी देव ने आकर सम्बोधित किया। तत्पश्चात् मृष्टदाना ने 'जन्मान्तर में भी यह मेरा पुत्र हो' इस प्रकार के निदान के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। वह तप के प्रभाव से उसी कल्प में देवी हुई। बलभद्र भी तप को ग्रहणकर उसके प्रभाव से उसी कल्प में देव उत्पन्न हुआ है और वह देवी- जो पूर्वभव में मृष्टदाना थी- वहाँ से आकर प्रभावती हुई है। पूर्व में जो बलभद्र के पुत्र थे वे इस समय देवदत्त आदि हुए हैं। और अकृतपुण्य का जीव, जो सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ था, वह वहाँ से आकर तुम उत्पन्न हुए हो। पूर्व भव में चूँकि तुम उनके मारने का विचार रखते थे, इसलिए वे तुमसे इस [illegible] द्वेष करते हैं। इस प्रकार उन अवधिज्ञानी मुनिराज से अपने पूर्व भवों के वृत्तान्त को सुनकर धन्यकुमार ने उन्हें नमस्कार किया और वहाँ से आगे चल दिया।

वह क्रम से आगे चलकर राजगृह नगर में पहुँचा। वहाँ वह नगर के बाहर अनेक सूखे वृक्षों के व्याप्त एक वन के भीतर प्रविष्ट हुआ। उस वन का स्वामी एक कुसुमदत्त नाम का वैश्यपुत्र था जो राजा के मालियों का नेता था। पूर्व में जब यह वन सूख गया था तब उसने खिन्न होकर उसे काट डालने का विचार किया था। उस समय उसने किसी अवधिज्ञानी मुनिराज से पूछा था कि यह मेरा सूखा हुआ वन क्या कभी फिर से हरा-भरा हो सकेगा? इसके उत्तर में मुनिराज ने बतलाया था कि जब कोई पुण्यशाली पुरुष आकर उसके भीतर प्रवेश करेगा उसी समय वह वन पवित्र फलों से परिपूर्ण हो जावेगा। उसी समय से वह कुसुमदत्त उसका संरक्षण करता हुआ वहाँ स्थित था। इस समय जैसे ही धन्यकुमार आकर उसके भीतर प्रविष्ट हुआ वैसे ही सब

सूखे तालाब आदि निर्मल जल से तथा वृक्ष आदि पुष्पों आदि से परिपूर्ण हो गये। धन्यकुमार ने वहाँ जिन भगवान् का स्मरण करते हुए एक तालाब पर जाकर जल पिया और फिर वह वहीं पर एक वृक्ष के नीचे बैठ गया। वह कुसुमदत्त इस आश्चर्यनजक घटना को देखकर उन मुनिराज को मन-ही-मन में नमस्कार करता हुआ आया और उस वन के भीतर प्रविष्ट हुआ। उसने धन्यकुमार को देखकर उसे नमस्कार करते हुए पूछा कि तुम कहाँ से आये हो? धन्यकुमार ने उत्तर दिया कि मैं एक वैश्यपुत्र हूँ और देशान्तर में भ्रमंण कर रहा हूँ। यह सुनकर कुसुमदत्त ने कहा कि मैं भी वैश्य हूँ और जैन हूँ, तुम मेरे अतिथि होओ। धन्यकुमार ने इस बात को स्वीकार कर लिया। तब कुसुमदत्त ने उसी शीघ्रता से घर ले जाकर कहा कि यह मेरा भगिनी पुत्र (भागिनेय- भानजा) है। यह सुनकर कुसुमदत्त की स्त्री ने यह मेरा जामाता होगा, ऐसा सोचकर उसके स्नान एवं भोजन आदि की समुचित व सन्तोषजनक व्यवस्था की। उसके पुष्पावती नाम की एक पुत्री थी, जो धन्यकुमार को देखकर उसके विषय में अतिशय आसक्त हो गई थी। एक समय उसने धन्यकुमार के आगे कुछ फूलों और धागे को लाकर रक्खा। धन्यकुमार ने उनकी एक अतिशय सुन्दर माला बना दीं उस समय राजगृह नगर में श्रेणिक राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम चेलनी था। उनके एक गुणवती नाम की पुत्री थी। उसके लिये पुष्पावती प्रतिदिन माला ले जाया करती थी। उस दिन पुष्पावती ध न्यकुमार के द्वारा बनायी हुई माला को ले गई। उस समय गुणवती ने उससे पूछा कि हे पुष्पावती! तुम दो तीन दिन क्यों नहीं आयी? इस पर पुष्पावती ने कहा कि मेरे पिता का भानजा आया है, पाहुनगति में घर पर ही रही। उस माला को देखकर हर्ष को प्राप्त होती हुई गुणवती ने पुनः उससे पूछा कि इस अनुपम माला को किसने गूँथा है? तब उसने सब यथार्थ स्थिति उसे बतला दी। इस पर गुणवती ने 'तेरे लिये उत्तम वर प्राप्त हुआ है' यह कहते हुए सन्तोष प्रगट किया।

एक समय धन्यकुमार किसी धनिक सेठ की चित्र-विचित्र (सुसज्जित) दुकान को देखकर वहाँ पर बैठ गया। उस समय सेठ को बहुत लाभ हुआ। सेठ ने यह समझ लिया कि इसके आने से ही मुझे

वह महान् लाभ हुआ। इसीलिए उसने धन्यकुमार से कहा कि मैं तुम्हारे लिए अपनी पुत्री देता हूँ। दूसरे दिन वह कुमार शालिभद्र नामक प्रसिद्ध वैद्य की दुकान पर जा बैठा। उसको भी उस समय उसी प्रकार से महान् लाभ हुआ। तब उसने भी धन्यकुमार से कहा कि मैं तुम्हारे लिये अपनी बहिन सुभद्रा को दूँगा। एक समय राजसेठ श्रीकीर्ति ने नगर के मध्य में यह घोषणा करायी कि जो वैश्यपुत्र एक कौड़ी के द्वारा एक दिन में हजार दीनारों को प्राप्त करके मुझे देगा, उसके लिये मैं अपनी पुत्री धनवती को दे दूँगा। उस घोषणा को धन्यकुमार ने स्वीकार कर लिया। तब वह अध्यक्ष के साथ जाकर उस कौड़ी को ले आया। उससे उसने मालाओं के रखने के साधनभूत तृणों को खरीदकर उन्हें मालियों के लिये दे दिया और उनके बदले में उनसे फूलों को ले लिया। फिर उन फूलों से धन्यकुमार ने अतिशय श्रेष्ठ मालाएँ बनाकर उन्हें वनक्रीड़ा के लिये जाते हुए राजकुमार को दिखलाया। उनको देखकर राजकुमारों ने उनका मूल्य पूछा। धन्यकुमार ने उनका मूल्य एक हजार दीनार बतलाया। तदनुसार उतना मूल्य देकर राजकुमारों ने उन मालाओं को खरीद लिया। इस प्रकार से प्राप्त हुई उन दीनारों को ले जाकर धन्यकुमार ने राजसेठ श्रीकीर्ति को दे दिया। तब श्रीकीर्ति ने कृत प्रतिज्ञा के अनुसार उसके लिये अपनी पुत्री को देना स्वीकार कर लिया।

धन्यकुमार की कीर्ति को सुनकर और उसे देखकर गुणवती उसके विषय में अतिशय आसक्त होने के कारण शरीर से कृश होने लगी। एक बार धन्यकुमार ने द्यूतक्रीड़ा में सब ही मन्त्रियों आदि के पुत्रों को जीत लिया था। तथा वहाँ जो श्रेणिक राजा का पुत्र अभयकुमार अपने विशिष्ट ज्ञान के मद से उन्मत था उसे भी उसने चन्द्रकवेध्य को वेधकर जीत लिया था। इसलिये वे सब वैरभाव के वशीभूत होकर उसके मार डालने के विचार में रहते थे। इधर गुणवती के दुर्बल होने का कारण जानकर राजा श्रेणिक ने अभयकुमार आदि के साथ विचार किया कि क्या धन्यकुमार के लिए पुत्री गुणवती को देना योग्य है या नहीं। उस समय अभयकुमार ने कहा कि उसके लिए गुणवती को देना योग्य नहीं है, क्योंकि, उसके कुल के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है। इस पर श्रेणिक ने कहा कि वैसी अवस्था में पुत्री मर जावेगी। यह सुनकर अभयकुमार

ने कहा कि जब तक वह जीता है तब तक कुमारी का दुःख अवस्थित रहेगा, उसके मर जाने पर उस दुःख मुक्त हो सकती है। परन्तु वह निरपराध है, अतः ऐसी अवस्था में वह मारने में नहीं आता। इसलिए उसे उपाय से मारना उचित होगा। और वह उपाय यह है– नगर के बाहर जो राक्षसभवन है उसमें प्रविष्ट होकर पूर्व समय में बहुत से मनुष्य मरण को प्राप्त हो चुके हैं। इसलिए 'जो कोई उस राक्षसभवन में प्रवेश करेगा उसके लिये मैं आधा राज्य और गुणवती पुत्री को दूँगा' ऐसी आप नगर में घोषणा करा दीजिये। उस घोषणा को स्वीकार करके वहीं अभिमानी उसके भीतर प्रवेश करेगा और मर जावेगा। तदनुसार राजा के द्वारा घोषणा कराने पर जब जनों के रोकने पर धन्यकुमार जाकर उस राक्षसभवन के भीतर प्रविष्ट हुआ। परन्तु उसको देखते ही राक्षस शान्त हो गया। तब उसने धन्यकुमार के सामने उपस्थित होकर उसे नमस्कार किया और दिव्य आसन के ऊपर बैठाया। फिर वह धन्यकुमार से बोला कि हे स्वामिन्! मैं इतने समय तक आपका भण्डारी होकर इस भवन की और इस धन की रक्षा करता हुआ यहाँ स्थित था। अब चूँकि आप आ गये हैं, अतएव इस सबको स्वीकार कीजिये। इस प्रकार कहकर उसने उस सब धन को धन्यकुमार के लिये समर्पित कर दिया। अन्त में वह यह निवेदन करके कि 'मैं आपका सेवक हूँ, आप जब मेरा स्मरण करेंगे तब मैं आकर उपस्थित हो जाऊँगा' यह कहते हुए अदृश्य हो गया। धन्यकुमार रात में वहीं पर रहा। गुणवती आदि उन कन्याओं ने उस समय प्रतिज्ञा कर ली थी कि जो अवस्था धन्यकुमार की होगी वही अवस्था हमारी भी होगी। उधर प्रातःकाल के हो जाने पर धन्यकुमार उस राक्षस भवन से निकलकर नगर की ओर आ रहा था। उसे देखकर राजा और नगर-निवासियों को बहुत आश्चर्य हुआ। तब राजा श्रेणिक अभयकुमार आदिकों के साथ उसके स्वागतार्थ आधे मार्ग तक आया। तत्पश्चात् श्रेणिक ने उसे अपने राजभवन के भीतर ले जाकर उससे अपने कुल के सम्बन्ध में पूछा। उत्तर में कुमार ने कहा कि मैं उज्जयिनी का रहने वाला एक वैश्यपुत्र हूँ और तीर्थयात्रा में प्रवृत्त हूँ। तब राजा ने गुणवती आदि सोलह कन्याओं के साथ उसका विवाह कर दिया और साथ में आधा राज्य भी दे दिया। तब धन्यकुमार उस भवन

के चारों ओर नगर की रचना कराकर राज्य करता वहाँ उस भवन में स्थित हुआ।

इधर उज्जयिनी में धन्यकुमार के अदृश्य हो जाने पर- उसके देशान्तर चले जाने पर- राजा आदिकों को बहुत दुःख हुआ। माता और पिता की अवस्था का तो पूछना ही क्या? उन निधियों की रक्षा करने वाले देवों ने पुत्रों के साथ उन दोनों को रात में बाहर निकाल दिया। तब वे वहाँ से जाकर अपने पहले के घर में रहने लगे। उस समय नगर-निवासियों को बहुत आश्चर्य हुआ। वे विचार करने लगे कि देखो यह धन्यकुमार का पिता (धनपाल) कितना कठोर हृदय है जो वैसे प्रभावशाली पुत्र के जाने पर भी जीवित है। कुछ ही दिनों के पश्चात् धनपाल के लिए भोजन भी दुर्लभ हो गया। तब वह राजगृह नगर में स्थित अपने भानजे शालिभद्र के पास कुछ अपेक्षा करके राजगृह नगर की ओर गया। वहाँ पहुँचकर वह धन्यकुमार के भवन के सामने स्थित होकर शालिभद्र के घर का पता पूछने लगा। उस समय धन्यकुमार राजा के सभाभवन में बैठा हुआ था। वह पिता को देखकर वह पहचान करके उसके पास में गया और पाँवों में गिर गया। तब सभाभवन में स्थित सब ही जन इस घटना को आश्चर्यपूर्वक देखने लगे। उस समय धनपाल बोला कि हे राजन्! तुम अखण्ड प्रताप के धारी होकर चिर काल तक पृथ्वी का पालन करो। मैं एक पुण्यहीन वैश्य हूँ और तुम राजा हो। इस कारण मेरे लिए नमस्कार के योग्य तुम ही हो। इस पर धन्यकुमार बोला कि तुम मेरे पिता हो और मैं तुम्हारा पुत्र धन्यकुमार हूँ। इसलिए तुम ही मेरे द्वारा नमस्कार करने के योग्य हो। उस समय वे दोनों एक दूसरे के गले लगकर रो पड़े। तब मन्त्रीगण दोनों को किसी प्रकार से शान्त करके राजभवन के भीतर ले गये। वहाँ धन्यकुमार ने अपना सब वृत्तान्त कहकर पिता से अपनी माता आदि की कुशलता का समाचार पूछा। उत्तर में पिता ने कहा कि जीते तो वे सब हैं परन्तु अब वह नहीं रहा है जो खाया जाय-उस जीवन-के आधारभूत भोजन का मिलना सबके लिये दुर्लभ हो गया है। यह जानकर धन्यकुमार ने सबको ले आने के लिये सवारी आदि को भेज दिया। तब प्रभावती आदि सब ही कुटुम्बी जन विभूति के साथ वहाँ जा पहुँचे। उनके आने का समाचार

को जानकर धन्यकुमार महती विभूति के साथ उन सबको लेने के लिए आधे मार्ग तक गया। वहाँ पहुँचकर उसने पहिले माता और तत्पश्चात् भाइयों को भी प्रणाम किया। उस समय उन सबने लज्जा से अपना मुख नीचे कर लिया। तब धन्यकुमार बोला कि हे भाइयों! आप लोगों की कृपा से मुझे राज्य की प्राप्ति हुई हैं इससे आप सब निश्चिन्त होकर रहें। इस स्थिति को देखकर धन्यकुमार के उन भाइयों को अपने कृत्य के ऊपर बहुत पश्चात्ताप हुआ। तत्पश्चात् धन्यकुमार ने सबको नगर के भीतर ले जाकर उनके लिये यथायोग्य गाँव आदि दिये। इस प्रकार वह सुख से कालयापन करने लगा।

एक समय धन्यकुमार ने सुभद्रा के मुख को मलिन देखकर उससे पूछा कि प्रिये! तेरा मुख मलिन क्यों हो रहा है? इस पर उसने कहा कि मेरा भाई शालिभद्र घर में स्थित रहकर वैराग्य का चिन्तन कर रहा है। इससे मैं दुःखी हूँ। यह सुनकर धन्यकुमार ने कहा कि हे प्रिये! मैं जाकर उसको सम्बोधित करता हूँ, तुम दुख का परित्याग करो। यह कहकर धन्यकुमार उसके घर जाकर बोला कि साले शालिभद्र! आजकल तुम मेरे घर पर क्यों नहीं आते हो? उत्तर में शालिभद्र बोला कि मैं तप का अभ्यास कर रहा हूँ, इसलिए तुम्हारे घर नहीं पहुँच पाता हूँ। इस पर धन्यकुमार ने कहा कि यदि तुम तप को ग्रहण करना चाहते हो तो फिर उसके अभ्यास से क्या प्रयोजन है? देखो! वृषभादि तीर्थंकरों ने अभ्यास के बिना ही उस तप को स्वीकार किया था। तुम उसका अभ्यास करते हुए यहीं पर स्थित रहे और मैं जाकर उस तप को ग्रहण कर लेता हूँ। ऐसा कहता हुआ धन्यकुमार उसके घर से निकलकर अपने घर आया। वहाँ उसने धनपाल नाम के अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य देकर श्रेणिक आदि जनों से क्षमा माँगी और फिर माता, पिता, भाइयों एवं शालिभद्र आदि के साथ श्री वर्धमान जिनेन्द्र के समवशरण में जाकर दीक्षा धारण कर ली। उसने समस्त आगम में पारंगत होकर बहुत समय तक तपश्चरण किया। अन्त में उसने नौ महीने तक सल्लेखना तप करके प्रायोपगमन संन्यास की विधि से शरीर को छोड़ दिया। इस प्रकार मरण को प्राप्त होकर वह सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ। धनपाल आदि भी यथायोग्य गति को प्राप्त हुए। इस प्रकार बछड़ों को चराने वाला वह

अकृतपुण्य भी जब एक बार मुनिराज को दिये गये आहारदान की अनुमोदना करने से ऐसी विभूति को प्राप्त हुआ है। तब क्या दूसरा विवेकी प्राणी वैसी विभूति को नहीं प्राप्त होगा? अवश्य होगा।।31।।

## 32. अग्निला ब्राह्मणी-कथा

*यासीत्सोमामरस्य द्विजकुलविदिता नारी पतिरता*
*दत्त्वान्नं भर्तृभीतापि सुगुणमुनये भक्त्या जिनपतेः*
*नेमेर्यक्षी बभूव प्रबलगुणगणा रोगादिरहिता*
*तस्माद् दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये॥32॥*

ब्राह्मण कुल में प्रसिद्ध व पति में अनुरक्त जिस सोमदेव की स्त्री ने पति से भयभीत होकर भी जिनेन्द्र देव की भक्ति के वश उत्तम के गुणों के धारक मुनिराज के लिए आहार दिया था। वह उसके प्रभाव से भगवान् नेमि नाथ जिनेन्द्र की यक्षी हुई। वह उत्तम गुणों के समूह से युक्त होकर रोगादि से रहित थी। इसलिए निर्मल गुणसमूह के धारक भव्य जीवों को उत्तम मुनिराज के लिए दान देना चाहिए।।32।।

**32. इसकी कथा इस प्रकार है-** इसी आर्यखण्ड में सुराष्ट्र देश के अन्तर्गत गिरिनगर में भूपाल नाम का राजा राज्य करता था। उसके यहाँ एक सोमशर्मा नाम का पुरोहित था। उसकी स्त्री का नाम अग्निला था। इनके शुभंकर और प्रभंकर नाम के दो पुत्र थे जो क्रम से सात व पाँच वर्ष की अवस्था वाले थे। वे सब सोमशर्मा आदि सुख से कालयापन कर रहे थे। एक समय सोमशर्मा के घर श्राद्ध का दिन आकर उपस्थित हुआ था उस दिन सोमशर्मा ने बहुत से ब्राह्मणों को भोजन के लिए निमन्त्रित किया। वे सब पिण्डदान करने के लिए जलाशय के ऊपर गये। इधर मध्यान्ह के समय में ऊर्जयन्त पर्वत के ऊपर रहने वाले वरदत्त नाम के महामुनि एक महीने के उपवास को समाप्त करके पारणा के दिन आहार के लिए गिरिनगर के भीतर प्रविष्ट हुए। परन्तु उन्हें किसी ने नहीं देखा। वे अग्निला को दिखायी दिये। वह जैनों के संसर्ग में रहने से आहारदान की विधि को जानती थी। इसलिए

वह सन्मुख जाकर उनके पाँवों में गिर गई और बोली कि हे स्वामिन्! मैं यद्यपि ब्राह्मणी हूँ, फिर भी मेरे माता-पिता आदि सब जैन हैं। इसलिए मेरे व्रतशुद्धि है और उसी से द्रव्यशुद्धि व पात्रशुद्धि भी है। अतएव हे परमेश्वर! मेरे ऊपर कृपा करके मेरे घर ठहरिये। इस प्रकार उसने शास्त्रोक्त विधि से उनका पड़िगाहन किया। वरदत्त मुनिराज दयालु थे, इसलिए वे उसकी भक्ति को देखकर सहर्ष वहाँ ठहर गये। तब सानन्द अग्निला ने पति की ओर से भयभीत होने पर भी उन्हें सात गुणों से युक्त होकर नवधा भक्तिपूर्वक आहारदान किया। इस अवसर पर उसने देवायु को बाँध लिया। मुनिराज आहार लेकर उसके घर से निकल ही रहे थे कि इतने में पिण्डदानादि को समाप्त कर वे ब्राह्मण जलाशय से आये और सोमशर्मा के घर में भीतर प्रविष्ट हुए उन सबने जाते हुए उन मुनिराज को देख लिया। तब उनके देखने से कुपित होकर सब ही ब्राह्मण बोले कि हे सोमशर्मा! तुम्हारे घर की रसोई को नंगे साधु ने जूठा कर दिया है, इसलिए वह ब्राह्मणों के खाने योग्य नहीं रही। इस प्रकार कहकर वे सब वापस जाने लगे। तब वह सोमशर्मा बोला कि हे स्वामी! मैं धनवान् हूँ, इसलिए आप लोग मुझे इच्छानुसार प्रायश्चित देकर श्राद्ध कार्य को पूरा कीजिये। इस प्रकार कहता हुआ वह उनके पाँवों में गिर गया। तब उसको अतिशय भक्त एवं धनवान् देखकर कुछ ब्राह्मण बोले कि ब्राह्मण के कहने से सब शुद्ध होता है। इसलिए उसे प्रायश्चित देकर भोजन कर लेना उचित है। यदि इस पर विश्वास न हो तो इस श्लोक को देख लीजिये।

बकरे और घोड़े मुख से पवित्र हैं, गायें पिछले भाग (पूँछ) से पवित्र हैं, ब्राह्मण पाँवों से पवित्र हैं, और स्त्रियाँ सब शरीर से पवित्र हैं।।17।।

इस स्मृति वचन के अनुसार इसको प्रायश्चित देकर बकरे और घोड़े के मुख के स्पर्श से रसोई को शुद्ध कराकर भोजन कर लेना चाहिये। यह सुनकर कुछ ब्राह्मण बोले कि अन्य दोषों का प्रायश्चित है, परन्तु यदि इस दोष का प्रायश्चित है तो उसे दिखलाया जाय। इस प्रकार से वे आपस में विवाद करते हुए पाँवों में पड़े हुए उस सोमशर्मा से रूठकर अपने-अपने घर चले गये। तब सोमशर्मा घर के भीतर जाकर अग्निला के सिर के बालों को खींचता हुआ बोला कि मुझ जैसे श्रेष्ठ

ब्राह्मण के लिए इस अतिशय पापिनी जैन लड़की के साथ विवाह करने से यह कुछ बहुत नहीं है- इससे भी यह अधिक अनिष्ट कर सकती है, ऐसा कहते हुए उसने उसे दण्डों से मारना प्रारम्भ किया। इस प्रकार से मारते हुए उसने उसे तब ही छोड़ा जब कि वह उसकी भयानक मार से मूर्छित हो गई। उपर्युक्त घटना से वह बहुत दुःखी रहा। उधर जब अग्निला की मूर्छा दूर हुई तब उसने लोगों से यह पूछा कि वे मुनिराज कहाँ पर स्थित हैं। इस प्रकार से जब उसे ज्ञात हुआ कि वे मुनिराज ऊर्जयन्त पर्वत के ऊपर विराजमान हैं तब वह छोटे लड़के का हाथ पकड़ कर्के और बड़े लड़के को पीछे करके उस ऊर्जयन्त पर्वत की ओर चल पड़ी। मार्ग में जाते हुए उसे एक भील स्त्री दिखी। उससे उसने पूछा कि हे माता! ऊर्जयन्त पर्वत का रास्ता कौन-सा है? इस पर उस भील स्त्री ने अग्निला से पूछा हे माता! तुम्हें उस पर्वत से क्या प्रयोजन है? इसके उत्तर में अग्निला ने कहा कि इस सबका विचार करने से तुम्हें क्या लाभ है, तुम तो केवल मुझे उस पर्वत का मार्ग बतला दो। इस पर उस भील स्त्री ने कहा कि तुम अकेली हो और तुम्हारे साथ ये दो बालक हैं, उधर वह पर्वत व्याघ्रादि हिंसक जीवों से परिपूर्ण है। उसके भीतर तुम कैसे प्रवेश कर सकोगी? यह सुनकर अग्निला बोली कि मेरे गुरूदेव वहाँ पर विराजमान हैं, उनके प्रभाव से मेरे लिए सब कुछ भला होगा। तुम मुझे वहाँ का मार्ग बतला दो। इस पर उसने अग्निला को वहाँ का मार्ग बतला दिया। तब वह उस मार्ग से जाकर ऊर्जयन्त पर्वत पर पहुँच गई। वहाँ जाकर उसने किसी भील से उन मुनिराज़ के रहने का स्थान पूछा। भील ने उसके साथ बच्चों को देखकर दयालुतावश उसे उस पर्वत के कटिभाग में स्थित एक गुफा के भीतर विराजमान उन मुनिराज को दिखला दिया। तब वह उनको नमस्कार करके पास बैठ गई और बोली कि हे स्वामिन्! यह स्त्री की पर्याय बहुत कष्टमय है, इसलिये मुझे इस पर्याय से छुटकारा दिला देने वाले तप को दीजिये। यह सुनकर मुनिराज बोले कि हे माता! तुम क्रोध के वश होकर आयी हो व इन अल्पवयस्क अबोध बालकों की माता हो, इसलिए तुम्हें दीक्षा देना योग्य नहीं है। इसके अतिरिक्त लोकनिन्दा के भय से तुम्हारा यहाँ स्थित रहना भी योग्य नहीं है। इसलिए जब तक तुम्हारा कोई सम्बन्ध

ी नहीं आता है तब तक के लिये यहाँ से जाकर किसी एक वृक्ष के नीचे ठहर जाओ। इस पर वह उन मुनिराज का आभार मानती हुई वहाँ से निकलकर किसी ऊँचे प्रदेश में स्थित एक वृक्ष के नीचे बैठ गई। वहाँ पर दोनों पुत्रों ने उससे जल माँगा। उस समय जो तालाब सूखा पड़ा था वह अग्निला के पुण्य के प्रभाव से अतिशय पवित्र निर्मल जल से परिपूर्ण हो गया। तब उसने उस तालाब से दोनों बालकों को जल पिलाया। तत्पश्चात् कुछ समय के बीतने पर दोनों बालक बोले कि माँ! हम दोनों भूखे हैं। उस समय वही वृक्ष उनके लिए कल्पवृक्ष बन गया। तब दोनों बालकों ने इच्छानुसार भोज्य वस्तुओं का उपभोग किया। इस आश्चर्य को देखकर अग्निला धर्म के फल के विषय में अतिशय हर्ष को प्राप्त हुई। इस प्रकार से वह वहाँ सुख से स्थित थी।

इधर उसी दिन राजभवन, अन्तःपुरगृह (स्त्रियों के रहने के घर) और सोमशर्मा के घर को छोड़कर शेष सारा गिरिनगर अग्नि में जलकर भस्म हो गया। उस समय सब ही जन भागकर नगर में बाहर स्थित होते हुए बोले कि आश्चर्य की बात है कि अग्नि की ज्वाला के बीच में पड़ करके भी सोमशर्मा का घर बच गया है– वह नहीं जला है। उसके घर पर जिसने भोजन किया था वह नग्न साधु नहीं, किन्तु विशिष्ट देव था। यदि ऐसा न होता तो वह सोमशर्मा का घर भस्म होने से क्यों बचा रहता? इसलिये उसके भोजन कर लेने पर शेष रही रसोई पवित्र है ऐसा विचार करते हुए उनमें से जिन ब्राह्मणों को पहले निमन्त्रित किया गया था वे तथा दूसरे भी ब्राह्मण सोमशर्मा के घर आकर बोले कि हे सोमशर्मा! तुम पुण्यशाली पुरूष हो, तुम्हारे यहाँ नग्न साधु के वेष में किसी देवता ने भोजन किया है। इसलिए तुम्हारे घर की रसोई पवित्र है। तुम उसे हमें खाने के लिए दो। तब सोमशर्मा ने उन सबको तथा और दूसरे ब्राह्मणों को भी अपने घर जाकर उन्हें इच्छानुसार भोजन कराया। वे मुनि परमेश्वर अक्षीणमहानस ऋद्धि के धारक थे, इसीलिए उस दिन उनके लिए दूध और दही को छोड़कर शेष जो सब रसोई परोसी गई थी वह सब अक्षय हो गयी थी– चक्रवर्ती के विशाल कटक के द्वारा भी भोजन कर लेने पर वह नष्ट नहीं हो सकती थी। उस दिन सोमशर्मा ने सब ही नगरनिवासियों को भोजन

कराया। इस घटना से उस समय सब ही जनों को आश्चर्य हुआ। इससे सब ही जन मुनिदान में अनुराग करने लगे।

दूसरे दिन सोमशर्मा को अपने उस दुष्कृत्य के ऊपर बहुत पश्चात्ताप हुआ। वह विचार करने लगा कि हाय! मुझ पापी ने उस पवित्रमूर्ति महासती को बिना किसी प्रकार के अपराध के ही मारा है, न जाने वह अब कहाँ चली गई है। इस प्रकार से पश्चाताप करता हुआ। वह उसे खोजने लगा। किन्तु जब वह उसे कहीं नहीं दिखी तब वह अतिशय करूणापूर्ण आक्रन्दन करने लगा। उस समय किसी ने उससे कहा कि तुम्हारी स्त्री ऊर्जयन्त पर्वत पर गई है। तब वह कुछ जनों के साथ ऊर्जयन्त पर्वत पर आया। उसे आता हुआ देखकर अग्निला ने सोचा कि अब यह मुझे फिर से भी कुछ दुःख देगा। बस, यही सोचकर उसने उन दोनों पुत्रों को तो वहीं छोड़ा और आप स्वयं उस पर्वत की दरी (?) में जा गिरी। सोमशर्मा उसके पास पहुँच भी नहीं पाया था कि इस बीच में वह मर गई और व्यन्तर लोक में दिव्य प्रासाद के भीतर उपपाद भवन में स्थित शय्या के ऊपर यक्षी उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त के भीतर ही नवीन यौवन से सम्पन्न हो गई। सात धातुओं से रहित होकर सुगन्धित व निर्मल शरीर को धारण करने वाली वह यक्षी स्वाभाविक वस्त्राभरणों के साथ माला से विभूषित, अणिमा-महिमादि आठ गुणों (ऋद्धियों) से परिपूर्ण, जैन जनों से अनुराग करने वाली; समस्त द्वीपों में स्थित अतिशय रमणीय नदी, पर्वत एवं वृक्ष आदि प्रदेशों में स्वभावतः क्रीड़ा करने में तत्पर; तथा अनेक परिवार देवियों से सहित होकर श्री नेमि जिनेन्द्र देव की शासन रक्षक देवी हुई। नाम उसका अम्बिका था। उसनें वहाँ जैसे ही भवप्रत्यय अवधिज्ञान से अपने देवगति में उत्पन्न होने के कारण को ज्ञात किया वैसे ही वह धर्म के विषय में अतिशय आनन्दित होती हुई जन के मन को आकर्षित करने वाले वेष के धारण करके अग्निला के रूप में आयी और अपने दोनों बच्चों के पास में स्थित हो गई। उस समय सोमशर्मा वहाँ आया और अपनी स्त्री समझकर उससे बोला कि हे प्रिये! मुझ पापी ने जो बिना बिचारे तुझे कष्ट पहुँचाया है उसके लिए तू क्षमा कर और अब अपने घर पर चल। इस पर वह बोली कि मैं तुम्हारी स्त्री नहीं हूँ, वह तो वहाँ पर स्थित है। यह कहते हुए उसने उसके निर्जीव शरीर को उसे दिखला

दिया। परन्तु उसने उसे देखकर भी विश्वास नहीं किया। वह बोला कि तुम ही मेरी स्त्री हो। यह कहते हुए वह उसके वस्त्र को पकड़ने के विचार से जैसे ही उसके बहुत निकट में आया वैसे ही वह यक्षी दिव्य शरीर के साथ ऊपर आकाश में जाकर स्थित हो गई और बोली कि मैं कैसे तुम्हारी स्त्री हूँ। इस दृश्य को देखकर सोमशर्मा को बहुत आश्चर्य हुआ। तब उसने उससे पूछा कि हे देवी! तो फिर तुम कौन हो? इस पर उसने अपना पूर्व वृत्तान्त कह दिया। अन्त में उसने कहा कि अब तुम इन दोनों पुत्रों को लेकर घर जाओ और सुख से स्थित रहो। यह सुनकर वह बोला कि अब मुझे घर जाने से कुछ प्रयोजन नहीं रहा है। जो अवस्था तेरी हुई है वही अवस्था मेरी भी होनी चाहिये, मैं भी गिरकर मरूँगा। इस पर यक्षी बोली कि ऐसा करने पर ये दोनों बालक भी मर जावेंगे। इसलिए तुम इन दोनों बालकों को लेकर घर जाओं। तब वह 'यह तो मैं भी जानता हूँ' कहकर अपने घर चला गया। वहाँ जाकर उसने उन दोनों बालकों को अपने कुटुम्बी जनों के लिए समर्पित करके जैन धर्म की बहुत प्रभावना की। साथ ही उसने धर्म के प्रभाव से अपनी स्त्री के यक्षी हो जाने के वृत्तान्त को सुनाकर बहुत से ब्राह्मणादिकों को अणुव्रत और महाव्रत ग्रहण करने के सन्मुख कर दिया। किन्तु वह स्वयं उसी ऊर्जयन्त पर्वत के ऊपर अज्ञानतावश उसी दरी में जा गिरा और इस प्रकार से मरकर उस अम्बिका देवी का वाहन देव सिंह हुआ। तत्पश्चात् वे दोनों शुभंकर प्रभंकर नामक पुत्र दृढ़ जैनी हुए। उस समय उन दोनों ने बहुत काल तक चार प्रकार के गृहस्थ धर्म का परिपालन करके भगवान् नेमि जिनेन्द्र देव के समवशरण में दीक्षा ग्रहण कर ली। इस प्रकार विशिष्ट तप करने से उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। तब वे केवली के रूप में विहार करके मोक्ष को प्राप्त हुए। इस प्रकार पराधीन और पति के भय से विकल भी वह ब्राह्मणी जब एक बार ही मुनिराज को दान देकर उसके प्रभाव से देवी हुई है तब भला स्वतन्त्र और निरन्तर दान देने वाला दूसरा भव्य जीव क्या अपूर्व वैभव को नहीं प्राप्त होगा? अवश्य होगा।।16।।

जो भव्य जीव ज्ञान की द्विगुणी संख्या {(5+3) +2} रूप सोलह पद्यों के द्वारा दान के फल की कथा का परमार्थ से विचार करते हैं वे संसार में लक्ष्मीवान्, कुलीन, शत्रुसमूह विजेता, अधिक बलशाली,

तेजस्वी, कामदेव के समान सुन्दर, उत्तम युवतियों के समूह से वेष्टित तथा ज्ञानविज्ञान में दक्ष होकर संसार के सुख भोगते हैं और तत्पश्चात् अन्त में मुक्ति को भी प्राप्त करते हैं।।16।।

**इस प्रकार केशवनन्दी दिव्य मुनिराज के शिष्य रामचन्द्र मुमुक्षु द्वारा विरचित पुण्यास्रव नामक ग्रन्थ में दान के फल को बतलाने वाले सोलह पद्य समाप्त हुए।।6।।**

यहाँ आचार्य कुन्दकुन्द की वंश परम्परा में दिव्य बुद्धि के धारक जो केशवनन्दी देव नाम के प्रसिद्ध यतीन्द्र हुए हैं वे भव्य जीवों रूप कमलों के विकसित करने के लिए सूर्य समान, संयम के परिपालक, कामदेवरूप हाथी के नष्ट करने में सिंह के समान पराक्रमी ओर अनेक दुःखों को उत्पन्न करने वाले कर्मरूपी पर्वत के भेद के लिए कठोर वज्र के समान थे। बड़े-बड़े ऋषि और राजा महाराजा उनके चरणों की वन्दना करते थे। वे विद्यारूप समुद्र के पार पहुँच चुके थे अर्थात् समस्त विद्याओं में निष्णात थे।।1।।

उनका भव्य शिष्य समस्त जनों के हित का अभिलाषी रामचन्द्र मुमुक्षु हुआ। उसने पद्मनन्दी नामक श्रेष्ठ मुनीन्द्र के पास में शब्द और अपशब्दों (अशुद्ध पदों) को जानकर- व्याकरण शास्त्र का अध्ययन करके- कथा के अभिप्राय को प्रगट करने वाले गिरि (7) और समिति (5) के बराबर संख्या वाले अर्थात् सत्तावन पद्यों के द्वारा भव्य जीवों के निमित्त इस पुण्यास्रव नामक ग्रन्थ क़ो रचा है। वे पद्मनन्दी मुनीन्द्र फैली हुई अतिशय निर्मल कीर्ति से विभूषित, वंदनीय एवं वादीरूप हाथियों को परास्त करने के लिए सिंह के समान थे।।2।।

साढ़े चार हजार 4500 श्लोकों प्रमाण यह पुण्यास्रव ग्रन्थ सत्पुरूषों के हृदय में निरन्तर इस प्रकार से स्थिर रहे जिस प्रकार कि आकाश में चन्द्र आदि निरन्तर स्थिर रहते हैं।।3।।

सुप्रसिद्ध आचार्य कुन्दकुन्द की वंश परम्परा में प्रसिद्ध श्रीमान् पद्मनन्दी त्रिरात्रिक (?) हुए। वे देशिगण में मुख्य और संघ के स्वामी थे।।4।।

उनके पश्चात् वे माघ {ध} वनन्दी पण्डित हुए जो महादेवी की उपमा को धारण करते थे - जिस प्रकार महादेव वृषभाधिरूढ़ अर्थात् बैल के ऊपर सवार हैं उसी प्रकार ये भी वृषभाधिरूढ़ - श्रेष्ठ धर्म में निरत

थे, महादेव यदि प्रमथादि गणों के स्वामी होने से गणप (गणाधिपति) हैं। तो ये भी मुनिसंघ के नायक होने से गणप (संघ के स्वामी) थे, महादेव जहाँ उन प्रमथादि गणों के विषय में उद्यत रहते हैं वहाँ ये भी संघ के विषय में उद्यत (प्रयत्नशील) रहते थे, जिस प्रकार महादेव की चित्तवृत्ति को विनायक (गणेशजी) आनन्दित करते हैं उसी प्रकार इनकी चित्तवृत्ति को भी विनायक (विघ्न) आनन्दित करते थे- विघ्नों के उपस्थित होने पर वे हर्ष के साथ उनके दूर करने में प्रयत्नशील रहते थे, तथा महादेव जैसे उमा (पार्वती) से आलिंगित थे वैसे ही ये भी उमा (कीर्ति) से आलिंगित थे। इस प्रकार वे सर्वथा महादेव के समान थे।।5।।

उक्त माधवनन्दी से सिद्धान्तशास्त्र रूपी समुद्र के पारंगत, महीने-महीने का उपवास करने वाले, गुणरूप रत्नों से विभूषित तथा पण्डितों में प्रधान श्री वसुनन्दी सूरि इस प्रकार से प्रादुर्भूत हुए जिस प्रकार कि शब्द से अर्थ प्रादुर्भूत होता है।।6।।

वसुनन्दी के शिष्य मौलि नामक गणी (आचार्य) हुए। वे निरन्तर भव्य जीवोंरूप कमलों के प्रफुल्लित करने में सूर्य के समान तत्पर रहते थे, देव जिस प्रकार मेरू पर्वत के पादों (साधुओं) की सेवा किया करते हैं उसी प्रकार वे (देव) इनके भी पादों (चरणों) की सेवा किया करते थे, तथा वे समुद्र के समान निरन्तर समस्त प्राणियों के ऊपर दयार्द्र रहते थे।।7।।

उनके शिष्य मुनिसमूह के द्वारा वंदनीय श्रीनन्दी सूरि आविर्भूत हुए। उनकी कीर्ति चन्द्र के समान थी- चन्द्र जहाँ सोलह कलाओं से विकसित होता है वहाँ वे श्रीनन्दी बहत्तर कलाओं से विलसित थे, जैसे पूर्णिका चन्द्र परिपूर्ण व वृत्त (गोल) होता है वैसे ही वे भी परिपूर्ण वृत्त (चारित्र) से सुशोभित- महाव्रतों के धारक- थे, तथा चन्द्रमा यदि दिगम्बर की- दिशाओं व आकाश की- शोभा का हेतुभूत है तो वे भी दिगम्बरों (मुनिजनों) की शोभा के हेतुभूत- उन सब में श्रेष्ठ थे।।8।।

चार्वाक, बौद्ध, जैन, सांख्य और शैवभक्त ब्राह्मणों को वागमित्व, वादित्व, गमकत्व और कवित्वरूप धन जैसे, तथा साहित्य, तर्क (न्याय) और परमागम के भेद से भेद को प्राप्त वे श्रीनन्दी सूरिरूप आकाश के मध्य में पूर्ण चन्द्रमा के समान थे।।9।।

**इस प्रकार पुण्यास्रव नाम का यह ग्रन्थ समाप्त हुआ।**